

उत्तराक्षरान

सूत्र

संपादक—रतनलाल डोशी

श्री

उत्तराध्ययन सूत्र



जे किर भवसिद्धिया, परित्त संसारिआ य भविआ य ।
ते किर पढंति धीरा, छत्तीस उत्तरज्झयणे ॥

—जो भवसिद्धि के जीव शोध हो मक्किर पाने वाले
हैं, जिनका समार भ्रमण बहुत थोड़ा रह गया है, ऐसे
भव्य आत्मा ही उत्तराध्ययन का भावपूर्वक पढ़ते हैं ।

—श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी

सम्पादक— रतनलाल डोशी

प्रकाशक~~

श्री अ भा साधुमार्गी जैन सस्कृति रक्षक सघ
सैलाना (म प्र)

मूल्य दो रुपया

वृत्तीयावृत्ति २०००

वीर संवत् २४८६

जैन तत्त्वज्ञान का मौलिक सूत्र



हमारे अनेक बन्धु कहा करने हैं कि हमारे समाज में जैन तत्त्वज्ञान का प्रकाशक, ऐसा एक भी स्वतन्त्र सूत्र नहीं है कि जिससे एक ही पुस्तक से जैन धर्म के उद्देश्य और उपदेश को सरलता से जान सकें। साधारण लोग विशाल भाग्यों के अभ्यासी नहीं होते। उनके लिये तो एक ही पुस्तक ऐसी हो कि जिसमें धर्म के मुख्य मुख्य विषयों का संकलन किया गया हो। अजैन सम्प्रदायों में गीता, बाइबल, कुरान आदि स्वतन्त्र शास्त्र हैं, वैसे जैन समाज में नहीं है। इस प्रकार की शिकायत जब सुनते हैं, तब यही विचार होता है कि शिकायती बन्धुओं को जैन साहित्य का विशेष पता नहीं है, इसीसे ऐसी शिकायत करते हैं। जैन साहित्य में श्री चमत्स्वाति रचित "तत्त्वार्थ सूत्र", स्व० पूज्यश्री अमोलकश्रद्धाविजी महाराज साहब का "जैनतत्त्व प्रकाश," पूज्यश्री आत्मारामजी महाराज साहब सम्पादित "जैन तत्त्वकलिकाविकास" + ऐसे ग्रन्थ हैं, जो भाग्यों में से तात्त्विक वस्तुओं का संकलन कर सम्पादित किये गये हैं। इनसे तात्त्विक जानकारी अच्छी मिल सकती है। यह तो हुई सम्पादित ग्रन्थों की बात, किन्तु जितागमों में एक "उत्तराध्ययन" नामका भूल भागम सूत्र ऐसा है कि जिसमें समस्त तत्त्वज्ञान भरा

+ तथा सध से प्रकाशित "मोक्ष मार्ग" ।

हुमा है। यदि इस एक ही सूत्र की अनुश्रुति पुरस्कृत स्वाध्याय की जाय तो पाठकों की अतीव आनन्द के साथ तात्त्विक ज्ञान मिल सकता है। श्रीमद् उत्तरारण्यसूत्र विविध तत्त्व ज्ञान का सरल प्रातिपादक और ब्रह्म साधना का प्रेरक है। पाठकों को इस विनायक के अध्ययनों का सक्षिप्त परिचय कराया जाता है—

१ विनययुक्त नामक प्रथम अध्याय में आत्माप्री के लिये सर्व प्रथम कर्तव्यकर्म विनयधर्म का उपदेश किया गया है। इस एक ही तत्त्व का बुझता से पालन करने वाले सब सयोगों से मुक्त भावक के नियमों और कर्तव्यों की विस्तृत विधि बताकर पूरी साधना—एक विनयधर्म में ही समावेश हो गई है। पृ. १ से १३

२ परीवहाध्याय में उन "सञ्जीवा विषमवकस्य" अस्मरणों के संयमी जीवन में आने वाली आवाधों—गरीबों को आनकारी कराकर ध्येय पर बृह रहने की शिक्षा दी गई है। पृ. १३-२३

३ दुर्जम तत्त्व कर्म की विविधता एवं जन्म मरण के कारण बताकर धर्म पालन करने का उपदेश दिया गया है। पृ. २३-३१

४ जीवन की अजन्तपुरता तथा समय फिर नहीं आता पाप-कर्म करने वाले को ही भुगतना पड़ता है जन और परिवार पाप कम से कम नहीं सकते यदि उपदेश। पृ. ३१-३४

५ मृत्यु विगाड़ने और सुखरने के कारण। मृत्यु—परलोक सुखरने के लिये जीवन सुखरने का उपदेश। पृ. ३४-४२

६ अज्ञान और अनाचार को त्यागकर सम्प्रज्ञान और सुज्ञान पालने का उपदेश। पृ. ४२-४६

७. बकरी के और मत्तन गीरा देनेवाले व्यापारी के अनाहृत से अचर्मी और काम भोग में आसक्त जीवों को होनेवाली दुर्बला का दिक्—

दर्शन कराकर धर्माचरण से होनेवाले सुन्दर फल का परिचय । पृ ४७-५४
 ८ कपिल केवली के द्वारा लोभ परित्याग कर सन्तोष वारण
 करने का बोध । पृ० ५४-५६

९ नमिराजर्षि का गरम वैराग्यकारी निष्क्रमण और इन्द्र के
 साथ संवाद । पृ० ५६-७३

१० जीवन की क्षणभंगुरता, प्रमाद की भयकरता । जब तक
 शरीर हव्य और सद्यत है, इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, तबतक प्रमाद छोड़कर
 धर्म आराधना करने का उत्तम उपदेश । पृ० ७३-८१

११ ज्ञान प्राप्ति में बाधक कारणों से बचकर बहुधृत होने का
 उपदेश । बहुधृत की पूजना । पृ० ८१-८८

१२ हरिकेशी मुनि के इतिहास से जाति कुल आदि को गौण
 रखकर, आत्म कल्याण साधने का उपदेश । भाव यज्ञ का कल्याणकारी
 विधान । पृ० ८८-१००

१३ भोगामय ब्रह्मवत् चक्रवर्ती का पतन और महासयती
 चित्तमुनि के उत्थान का प्रभावक इतिहास । पृ० १००-१०८

१४ भृगुपुत्र, इधुकार आदि के निष्क्रमण का वर्णन । वैराग्यो-
 त्पादक संवाद । पृ १०८-१२२

१५ मोक्ष साधक भिक्षु के लक्षण, आचार आदि । पृ १२३-१२७

१६ ब्रह्मचर्य समाधि के नियम और उसकी साधना का फल ।

पृ १२८-१३८

१७ पाप श्रमण की पहिचान । पृ १३८-१४३

१८ सयती राजर्षि का इतिहास । क्षत्रिय राजर्षि द्वारा सत्सर-
 त्यागी नरेशों की नामावली बताना । पृ १४४-१५६

१६. नृनायक का परम वीराम्भोत्पादक इतिहास । माता पुत्र का प्रभावधारी संवाद । सामुद्रा का सुन्दर रूप । पृ. १२७-१७६

१७. सनाथ धनाथ निर्भय में धनाधी मुनि और सनाथ धेनिक का संवाद । धेनिक का जिनोपासक बनना । पृ. १८ - १२४

१८. समुद्रपाल सेठी का चरित्र और मोक्ष प्राप्ति के दिग्गुप्त मार्ग का प्रतिपादन । पृ. १२४-२००

१९. जनबानू नैमिषाण और भयवती रात्रवती का चरित्र । रहुमैनि का विचलित होना । रात्रवती की कष्टकार । रहुमैनि का पुनः संयम में स्थिर होकर मोक्षप्राप्ति बनना । पृ. २१-२१९

२०. जनबानू भीमन स्वामी और कैलीकुमार जमन का सम्मिलन, प्रश्नोत्तर, श्री कैलीकुमार जमन का वीरघातन में प्रविष्ट होना ।

पृ. २१९-२३६

२१. मुनि जीवन की नूतन नूतिका, अष्ट प्रवचन माता का स्वस्व और विधि । पृ. २३२-२४७

२२. लक्ष्मी बाह्य का स्वस्व । पृ. २४८-२४८

२३. मुनि सनाथारी—मुनि जीवन की सारांश वैश्विक धार्मिक क्रिया का विधान । पृ. २४८-२५६

२४. नयीनार्थ के कुशिक्षों का वर्णन और ज्ञानती वीर का कदाचर । पृ. २६०-२६४

२५. मोक्ष मार्ग का स्वस्व और संक्षिप्त वीर तत्त्व ज्ञान ।

पृ. २६४-२७२

२६. धर्मोपनिषद्कारी उत्तम प्रश्नोत्तर । पृ. २७२-३१२

३०. तत्त्वचर्चा का स्वस्व और विधि । पृ. ३१३-३१३

३१ चारित्र्य की संक्षिप्त विधि । पृ ३११-३१५

३२ प्रभाव की विस्तृत व्याख्या और उससे अवसर मोक्ष प्राप्त करने का उपाय । पृ ३१६-३४४

३३ कर्मों के भेद, प्रभेद, गति, स्थिति आदि । पृ ३४४-३४६

३४. छ लेश्याओं का स्वरूप, फल और गति, स्थिति आदि ।

पृ ३५०-३६३

३५. मोक्ष प्राप्त करने का उत्तम मार्ग, साधु-आचार का प्रतिपादन ।

पृ ३६३-३६७

३६. जीव और जड़ रूपी ससार का विस्तृत स्वरूप ।

पृ ३६८-४२१ (विशेष में 'वीर्युर्द्ध' पृ० ४२२ से ४३० तक)

इस प्रकार उत्तराध्यायन सूत्र का प्रत्येक अध्यायन बड़ा ही महत्वपूर्ण और तत्त्वज्ञान का खजाना है । मुमुक्षुओं को धर्म भावना को बढ़ाने वाला और आत्मा को पवित्र करने वाला है । अर्थात्सर्व "मोक्ष भाग" नामक अध्यायन की ३६ गाथाओं में तो विश्वभर का तत्त्वज्ञान भर दिया गया है । "सम्यक्त्व पराक्रम" संज्ञक २६ वें अध्यायन में आत्मा को पवित्र बनाने वाले प्रश्नोत्तर बहुमूल्य वस्तु है । कहां तक बतावें, प्रत्येक अध्यायन भगवात्माओं के लिये महान् उपकारी है । स्वयं त्रिलोक पूज्य भ० महावीर प्रभु ने, निर्वाण प्राप्त करते समय हमारे जैसे पञ्चम काल के बुद्धों प्राणियों के हित के लिये, बिना किसी के पूछे, इस सूत्र का उपदेश किया । इसके नामसे ही इसकी विशिष्टता ज्ञात होती है । उत्तराध्यायन अर्थात्-अध्यायन करने योग्य उत्तमोत्तम प्रकरणों का संग्रह । निर्युक्तिकार तो यहा तक कहते हैं कि जो भवसिद्धि और परिमित संसारी जीव है, वे ही उत्तराध्यायन की भावपूर्वक स्वाध्याय करते हैं । जैसे कि—

जे किर मवसिद्धिया, परिससंसारिआ य मविआ प ।
 जे किर पढति घीरा, छत्तीसं उत्तरज्जयणे ॥१॥
 जे हुति अमवसिद्धिया, गंभीअमत्ता अणंतससारा ।
 ते सक्किलिहुक्कम्मा, अमविय उत्तरज्जयणे ॥२॥
 तम्हा जिणपण्णत्ते, अणंतगमपअवेदि मंजुत्ते ।
 अन्नमए अराजोगं; गुरुपसाया अदिज्झिअजा ॥३॥

अर्थात्—जो भवसिद्धि के बीच की ओर गति पावे के योग्य है
 जिनका लक्ष्य अमव बहुत ही बड़ा रह गया है ऐसे अभ्यास में
 श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्यायों की भाव पूर्णक पड़ते हैं । और जो
 अमवसिद्धि, प्रवित्तव तथा अमल संसारी बीच है वे अमल सिद्धि
 अमुक कर्तों के उद्देश्य है उत्तराध्ययन सूत्र का अध्याय करने में अयोग्य
 है । इसलिये विशेष प्रचीत धर्म तथा धर्म के अमल वर्णित होने इस
 उत्तराध्ययन के अध्यायों की विधि सङ्गित उपवादादि सब पूर्णक पुस्तकों
 की प्रसन्नता के साथ पढ़ना चाहिये ।

यह कथन सर्वथा सत्य है । इनकी भीषों की ही आत्मोद्धारण
 लक्ष्य अतः की वधि एवम् भावपूर्ण स्वाध्याय विज्ञता है । प्रत्येक धर्म
 प्रेमी को सर्वत्र इस सूत्र का स्वाध्याय आवश्यक करना चाहिये । प्रवित्त
 नहीं बन सके तो कम से कम एक अध्याय का स्वाध्याय ही साधना
 के साथ करना ही चाहिये ।



* अस्वाध्याय *

निम्न लिखित चौतीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये ।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	कालमर्यादा
१ बड़ा तारा टूटे तो	एक प्रहर
२ उदय अस्त के समय लालदिशा	जब तक रहे
३ अकाल में मेघ गर्जना हो तो	दो प्रहर
४ ,, बिजली चमके तो	एक प्रहर
५ ,, बिजली कड़के तो	दो प्रहर
६ शुक्ल पक्ष की १-२-३ की रात	प्रहर रात्रि तक
७ आकाश में यक्ष का चिह्न हो	जब तक दिखाई दे ।
८-९ काली और सफेद धूआँ	जब तक रहे
१० आकाश मण्डल धूलि से आच्छादित हो	॥

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३ हड्डी, रक्त और मांस, ये त्रियँच के ६० हाथ के भीतर हो । मनुष्य के हो तो १०० हाथ के भीतर हो । मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो तो १२ वर्ष तक ।

१४ अशुचि की दुर्गन्ध घाबे या दिलाई दे तब तक

१५ समस्तान भूमि-... सौ हाथ से कम दूर हा ता

१६ अमृतग्रहण-अमृत ग्रहण में ८ ग्रहर पूज हो तो १२ ग्रहर।

१७ सूर्य ग्रहण " १२ १६

१८ राजा का अमृतान होने पर। जब तक नया राजा बाधित न हो।

१९ युद्ध स्वाम के निकट... जब तक युद्ध चले।

२० उपाभय में पचेन्द्रिय का छब पड़ा हो। जब तक पड़ा रहे।

२१-२५ भावाह भावपव आश्विन कार्तिक और चतु की पूर्णिमा।... दिन रात

२६-३० इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा।

३१-३४ प्रातः मध्याह्न संध्य और अर्धरात्रि। १-१ मुहूर्त।

उपरोक्त अस्वाध्याय की टासकर स्वाध्याय करना चाहिए। भूसे भूह नहीं बोलना तथा दीपक के ज्वाले में नहीं बाँचना चाहिए।

नोट—अथ वर्षादि में अकाल आर्य नक्षत्र से शुभ और स्वाति के बाद का माना गया है।



यह तीसरी आवृत्ति

श्री उत्तराध्ययन सूत्र की यह तीसरी आवृत्ति है। पहली आवृत्ति अमणोपासक जैन पुस्तकालय सैलाना से प्रकाशित हुई थी। उसके बाद दूसरी आवृत्ति सघ की ओर से प्रकाशित हुई थी। यह भी थोड़े ही समय में निकल गई, और इसकी माँग बनी ही रही। हमारा विचार पुनरावृत्ति करने के बनिस्वत नये सूत्र प्रकाशित करने का था, किन्तु उत्तराध्ययन की विशेष माँग रहने के कारण तीसरी आवृत्ति छपवाना पड़ी। इस आवृत्ति में शुद्धि का विशेष ध्यान रखा गया, साथ ही अर्थ के शब्दों में भी थोड़ा परिवर्तन कर सरलता लाई गई। इस बार कामज भी २८ पौंड का काम में लिया गया है। पूर्वापेक्षा कलेवर में कुछ पृष्ठों की बृद्धि हो गई है। कन्हर भी पहले के बनिबस्त अच्छा लगाया है।

सघ के प्रकाशन, स्वाध्याय प्रिय धर्मबन्धुओं और बहिनों की रुचिकर और प्रिय लगे। इसका कारण भी है। सघ सरल अनुवाद सहित मूल आगमों और तबनुकूल धर्म साहित्य ही प्रकाशित करता है। सघ की ओर से प्रकाशित 'मोक्षमार्ग' ग्रन्थ का जिस धर्म-प्रेमी ने छव-सोकन किया, वही सुख हुआ। इसकी सामग्री बहुत ही उपयोगी रही। यह एक ही ग्रन्थ, धर्म के स्वरूप एवं विधि विधानों की जानकारी देने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक सघ का उद्देश्य सम्यग्ज्ञान के प्रचार द्वारा धर्म संस्कारों को जगाना, बढ़ाना और रक्षण करना है।

सघ की ओर से प्रकाशित सूयमहांग, दशवैकालिक, और अतगडसूत्र भी सिलक में नहीं हैं। इनकी माँग भी बहुत आ रही है—हमें इन का भी पुनर्मुद्रण करना है, किन्तु अभी हम उबवाई सूत्र को प्राथमिकता दे

रहे हैं। इसके साथ नृपवती पुत्र का मङ्गल प्रारम्भ करेंगे। हम बोड़े ही दिनों में ऐसी व्यवस्था करना चाहते हैं कि जितने नृपन प्रकाशन के साथ पूर्व प्रकाशित साहित्य की पुनरावृत्ति भी होनी रहे वर्तमान दोनों काम साथ साथ चलते रहें।

समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बहुत आवश्यक है। इस ओर उपाध्याय मुख्य श्रीहस्ताक्षरजी महाराज सा. छात्र बनिएर प्रयत्नशील हैं। स्वाध्याय के कल से नवम वर्ष में स्त्रिय रहकर उन्नत होता है। इतना होतै हुए भी स्वाध्याय के लिए पारिक साहित्य का खनन करने में छात्रवानी रखने की आवश्यकता है। स्वाध्याय में बही साहित्य उप-मोर्षी होपा-ओ नीलिक हो छात्र नीलिकटा के छात्र पर हो। संस्कृति रखक संघ ऐसे ही साहित्य का प्रकाशन करता है। अतएव ऐसे साहित्य का बाँचन ननन करके लाभ उठाना चाहिए।

समाज के ज्ञानवीरों से भी निवेदन है कि सम्प्रदाय के प्रचार में संघ के सहजक बनकर निरवय की प्रभावना करने में अपना योगदान करेंगे।

सचरीद-	
श्री क. भा. छात्रवानी क्षेत्र	मानकसाल पारबाड पृष्ठबाकेट
संस्कृति रखक संघ	-पद्यम
सैसाना	पाण्डित्यव मङ्गरी उपाध्यक्ष
मानसीव धु २ वीरल १४८६	अध्यापक काठारी
विजन ल २ १६	सम्प्रदाय बाडीबास "
दिनांक १-१२-१९९९	रतनसाल डोना प्रधान मंत्री
	बाबुमान पोरबाड मंत्री
	अवरध बाठिया "
	अध्यक्षसाल बाहू "

श्री उत्तराध्ययन-सूत्रम्

—: विणायसुयं पढमं अज्झयणं :—

—x—

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणुगारस्स मिक्खुणो ।

विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुण्वि सुणेह मे ॥१॥

हे शिष्य ! मे उन साधुओं के विनय धर्म को प्रकट करता हूँ जो बाह्य और आभ्यन्तर संयोग से रहित हैं । जिन्होंने धरवार तथा आरम्भ परिग्रह का त्याग कर दिया और जो भिक्षा से ही निर्वाह करते हैं । तुम अनुक्रम से सुनो ॥१॥

आणाणिदेसकरे गुरुणमुववायकारणं ।

इंगियागारसंपणणे, से विणीएत्ति वुच्चइ ॥२॥

वही विनीत कहलाता है—जो गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला हो, गुरु के निकट रहता हो, और गुरु के इंगित तथा आकार से मनोभाव जानकर कार्य करने वाला हो ॥२॥

आणाणिदेसकरे गुरुणमुववायकारणं ।

पडिणीए असंबुद्धे, अविणीएत्ति वुच्चइ ॥३॥

गुरु की आज्ञा नहीं मानने वाला, गुरु के समीप नहीं रहने वाला, उनके प्रतिकूल कार्य करने वाला, तथा स्वसिद्धि के लिए से रहित शिष्य, अविनीत कहलाता है ॥३॥

अहा सुखी पूरकण्णी, पिक्कसिञ्जश्च सम्भसो ।

एव दुस्सीलपडिस्सीए, सुहरी शिक्कसिञ्जश्च ॥४॥

जिस प्रकार सड़े कानवासी कुतिया सब जगह से निकाली जाती है उसी प्रकार दुष्ट स्वभाव वाला और गुरु-जनों से विपरीत आचरण करने वाला साधु भी समाज से निकाला जाता है ॥४॥

कण्णकुड्ढगं अइचायां, बिहु भुंज्ज, स्यरो ।

एव सील अइचायां, दुस्सील्ले रमइ मिए ॥५॥

जिस प्रकार सुधर, चाबस के पाव को छोड़कर बिछा लाना पसन्द करता है उसी प्रकार अज्ञानी साधु भी सवाचार का छोड़कर दुराचार में लग जाता है ॥५॥

सुखिया भावं साम्मस्स, सूरस्स चरस्स य ।

विषए ठविञ्ज अप्पायां, इप्पद्धो हियमप्पयो ॥६॥

कुतिया और सुधर के साथ अभिनयी मनुष्य की समानता के उदाहरण को सुनकर अपना हित चाहने वाला शिष्य आत्मा को विनय में स्थापित करे ॥६॥

तम्हा विज्जयमेसिञ्जा, सील पडिस्समेज्जओ ।

बुद्धपुत्त बियागड्डी, च शिक्कसिञ्जश्च कण्णहुइ ॥७॥

इसलिये विनय का आचरण करना चाहिये जिससे सवाचार की प्राप्ति हो । ऐसा मात्सर्यी और आचार्य-पुत्र (शिष्य) किसी भी स्थान से नहीं निकाला जाता ॥७॥

शिसन्ते सियाऽमुहरी, बुद्धाणां अन्ति ए सया ।

अद्वजुत्ताणि सिक्खिज्जा, णिरट्ठाणि उ वज्जए ॥८॥

सदैव शान्ति रखे, वाचालता का त्याग करे और ज्ञानियों के समीप रह कर मोक्षार्थ वाले आगमों को सीखे तथा निरर्थक-लौकिक विद्या का त्याग करे ॥८॥

अणुसासिओ ण कुप्पिज्जा, खांति सेविज्ज पंडिए ।

खुइदिं सह संसग्गि, हासं कीडं य वज्जए ॥९॥

कभी गुरु कठोर वचनों से शिक्षा दे, तो भी बुद्धिमान् शिष्य, क्रोध नहीं करके क्षमा ही धारण करे। छुद्र और अज्ञानी जनों की संगति नहीं करे तथा हास्य और क्रीड़ा का सर्वथा त्याग कर दे ॥९॥

मा य चंडालियं कासी, बहुयं मा य थालवे ।

कालेण य अहिज्जिचा, तथो भाइज्ज एगओ ॥१०॥

क्रोधादि के वश हो असत्य नहीं बोले, अधिक भी नहीं बोले, यथा समय शास्त्रों का अध्ययन करके एकान्त में चिन्तन मनन करे ॥१०॥

आहव्व चंडालियं कट्टु, ण णिएहविज्ज कयाइ वि ।

कडं कडे त्ति भासिज्जा, अकडं णो कडे त्ति य ॥११॥

यदि क्रोधादिवश कभी असत्य वचन निकल जाय, तो उसे छिपावे नहीं, किन्तु किये हुए को किया और नहीं किये को नहीं किया, इस प्रकार सत्य कहदे ॥११॥

मा गलियस्सेव कसं, वयसमिच्छे पुणो पुणो ।

कस वा दद्धमाइय्ये, पावर्ग परिवज्जरं ॥१२॥

जिस प्रकार अश्रियस छोड़ा बार-बार बाबुक की मार खाता है उसी प्रकार विनीत शिष्य को चाहिये कि गुरु को हर समय कहने का प्रसन्न नहीं रहे । विनीत छोड़ा बाबुक का देखकर ही उन्मार्ग का त्याग देता है उसी प्रकार विनीत शिष्य को सकेत मात्र से गुरु के मन के अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए और पाप का त्याग कर देना चाहिए ॥१२॥

अन्नासवा पुल्लया कुसीसा, मिउं पि च्छ वफरंति सीसा ।
विचाणुया हाहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयपि । १३।

गुरु की आज्ञा को नहीं मानने वाले कठोर वचन बोलने वाले बुद्ध तथा विनीत शिष्य, शान्त स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं । और गुरु की मनाबुत्ति के अनुसार बसने वाले गुरु आज्ञा का शीघ्र पालन करने वाले विनीत शिष्य निश्चय ही उग्र स्वभावी गुरु को भी शान्त कर देते हैं ॥१३॥

नापुट्ठो वागरे किंवि, पुट्ठो वा नासिय वए ।

कोह असर्षं हम्बिज्जा, धारिज्ज पियमप्पिय ॥१४॥

विनीत शिष्य बिना पूछे कुछ भी नहीं बोले और पूछने पर प्रसन्न नहीं बोले । यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो जाय तो उसे निष्कण्टक करदे । गुरु के वचन अश्रिय भी सगे तो उन्हें हितकारी प्रिय समझ कर धारण करे ॥ १४ ॥

अप्पा चेव दमेयव्यो, अप्पा हु खलु दुदमो ।

अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिलोए परत्थ य ॥१५॥

विपरीत जाने वाले मन का ही दमन करे, क्योंकि आत्म दमन बड़ा कठिन है । आत्म दमन करने वाला इस लोक में और परलोक में सुखी होता है ॥ १५ ॥

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।

माऽहं परेहिं दम्मंतो, वंधणेहि वहेहि य ॥१६॥

परवश होकर दूसरो से वध और बन्धनों द्वारा दमन किये जाने की अपेक्षा, अपनी इच्छा से ही सयम और तप से आत्म दमन करना श्रेष्ठ है ॥१६॥

पडिणीयं यं बुद्धाणां, बाया अदुव कम्मणा ।

आची वा जइ वा रहस्से, शेव कुज्जा कयाइ वि ॥१७॥

दूसरो के सामने अथवा एकान्त में अपने वचन या कर्म से कभी भी गुरु (ज्ञानियो) के विपरीत आचरण नहीं करे ॥१७॥

ए पक्खओ ए पुरओ, शेव किच्चाण पिट्ठओ ।

ए जुंजे उरुणा उरुं, सयखें ए पडिस्सुणे ॥१८॥

आचार्य से कन्घा मिठाकर बराबर नहीं बैठे, उनके आगे भी नहीं बैठे और पीछे भी अविनीतता से नहीं बैठे । इतना भी निकट नहीं बैठे कि अपने घुटने से उनके घुटने का स्पर्श हो जाय, तथा शय्या पर सोते या बैठे हुए ही उनके वचनों को नहीं सुने ॥१८॥

येव पन्हुतियय झुझा, पक्खपिण्ड च सअए ।

पाए पसारिए बाधि, च चिट्ठे गुरुपातिए ॥१६॥

गुरु के समस्त पाँव पर पाँव चढ़ाकर नहीं बैठे घुटने छाती के सपाकर भी नहीं बैठे और न पाँव फैलाकर ही बैठे ॥१९॥

आयरिएहिं वारितो, तुसिखीओ च कयाइ वि ।

पसायपेही शियागट्ठी, ठपचिट्ठे गुरु सया ॥२०॥

यदि आचार्य बुलावे तो कभी चुपचाप नहीं बैठा रहे किन्तु गुरु कृपा इच्छुक योक्षार्थी साधु, हमेशा उनके समीप बिलय से उपस्थित होव ॥२०॥

आसन्नो सवते वा, च विसीएवज कयाइ वि ।

~~वज्ज~~ आसणा पीरो, दओ अत्त पडिस्सुखे ॥२१॥

गुरु महाराज एक बार भबवा बार-बार बुलावे तो कभी बैठा नहीं रहे किन्तु धीरववान् साधु आसन छोड़कर यतना पूर्वक सावधानी से गुरु के वचनों का सुने ॥२१॥

आसयागओ च पुच्छिअआ, खेव सिअायओ कया ।

आमम्मुककुओ संतो, पुच्छिअआ पंजसीउओ ॥२२॥

यदि गुरु महाराज को कुछ पूछना हो तो आसन पर बैठे या धम्या पर रहे हुए नहीं पूछे, किन्तु गुरु के समीप आकर, उकड़ आसन से बैठकर और हाथ जोड़कर बिलय पूर्वक पूछे ॥२२॥

एवं विणयं जुत्तस्स, सुयं अत्थं च तदुभयं ।

पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुयं ॥२३॥

गुरु को चाहिये कि ऐसे विनयी शिष्य के पूछने पर सूत्र अर्थ और सूत्रार्थ दोनों—जैसा अपने गुरु से सुना हो उसी प्रकार कहे ॥२३॥

मुसं परिहरे भिक्खू, ण य ओहारिणीं वए ।

भासा दोसं परिहरे, मायं य वज्जए सया ॥२४॥

साधु को चाहिए कि वह असत्य वचन का सदा और सर्व प्रकार से त्याग करे । निश्चय कारिणी भाषा नहीं बोले । भाषा के दोषों को त्यागे और माया तथा क्रोधादि का त्याग करे ॥२४॥

ण लविज्ज पुट्ठो सावज्जं, ण गिरट्ठं ण मम्मयं ।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्संतरेण वा ॥२५॥

यदि कोई पूछे तो अपने, दूसरे अथवा दोनों के लिए सप्रयोजन या निष्प्रयोजन सावद्य वचन नहीं बोले, निरर्थक वचन नहीं बोले और मर्मभेदी वचन भी नहीं कहे ॥२५॥

समरेसु अगारेसु, संधीसु य महापहे ।

एगो एगित्थिए सद्धि, शेव चिट्ठे ण संलवे ॥२६॥

लोहार की शाला में, शून्य घर में, दो घरों के बीच की गली में और राज-मार्ग में, अकेला साधु, अकेली स्त्री के साथ न तो खड़ा रहे और न वासचीत ही करे ॥२६॥

ज मे मुदाणुसासंति, सीण्ण फल्लसेख वा ।

मम छासुत्ति पेहाण, पयम्भो त पडिस्सुखे ॥२७॥

गुरुजन वा मुक्त कोमल बचवा कठोर बचनों से शिक्षा लेते हैं—इसमें मेरा ही नाम है । इस प्रकार सोचकर सावधानी पूर्वक शिक्षा ग्रहण करे ॥२७॥

अणुसासखमोवाय दुक्कळस्स य बोयपां ।

हिय ते मण्यय पयखो, वेस्स होइ असाहुखो ॥२८॥

गुरुजनों की शिक्षा पापों का नाश करने वाली होती है । बुद्धिमान उसे हितकारी मानते हैं किन्तु असाधु के लिये बड़ी शिक्षा द्वेष का कारण हो जाती है ॥२८॥

हिय बिगयमया मुदा, फल्लं पि अणुसासणं ।

वेस्सं त होइ मूढापां, खंत्तिसोहिक्कं पय ॥२९॥

निर्भय और तत्त्ववेत्ता शिष्य गुरुजनों के कठोर शासन का भी हितकारी मानते हैं । किन्तु ऐसे क्षान्ति और आत्मसुखि करने वाले पर बड़ों भी मूर्ख बोध रूप का कारण बना लेते हैं ॥२९॥

आसखे ठवचिहेज्जा, अणुप्पेऽहुक्कण यिरे ।

अप्पुहाई खिरुहाई, पिसीएज्जऽप्यहुक्कण ॥३०॥

ऐसे शासन पर बैठे जो गुरु से डँचा नहीं है और स्थिर हो, बिना प्रयोजन उठे भी नहीं और प्रयोजन होने पर भी बार-बार नहीं उठे ॥३०॥

कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।

अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥३१॥

सांघु, समय पर भिक्षादि के लिए जावे और समय पर ही वापिस लौट आवे और अकाल को छोड़कर नियत समय पर ही उस काल की क्रिया करे ॥३१॥

परिवांडीए ण चिद्देज्जा, भिक्खू दत्तेसणं धरे ।

पडिरूवेण एसित्ता, भियं कालेण भक्खए ॥३२॥

जहाँ जीमणवार होता हो, वहाँ खड़ा भी नहीं रहे, किन्तु भिन्न-भिन्न घरों से दिया हुआ शुद्ध आहार ग्रहण करके उचित समय पर, परिमित भोजन करे ॥३२॥

णाइदूरमणासण्णे, णण्णसिं चक्खुफांसओ ।

एंगो चिद्देज्ज मत्तट्ठा, संविच्चात्तं णाइक्कमे ॥३३॥

गृहस्थ के घर अन्य याचक खड़े हो, तो उन्हें लाँघकर नहीं जावे। ऐसी जगह समभाव से खड़ा रहे, जो न अति दूर हो, न अति निकट हो और दाता व याचक की दृष्टि भी नहीं पड़ती हो ॥३३॥

णाइउच्चै वणीए वा, णासण्णे णाइदूरओ ।

फांसुय परकटं पिदं, पडिगाहिज्जं संजए ॥३४॥

दाता से अति ऊँचे, नीचे, अति दूर या अति निकट खड़ा रहकर भिक्षा नहीं लेवे, किन्तु उचित स्थान पर खड़ा रह कर गृहस्थ के लिये बनाया हुआ शुद्ध आहार ग्रहण करे ॥३४॥

अप्यपाणेऽप्यधीयन्मि, पठिच्छन्मि सधुदे ।

समये सत्रेण भुजे, अथ अपरिसादिय ॥३५॥

प्राणी घोर बीज रहित डरे हुए घोर भारों घोर स
भरे हुए स्थान में दूसरे साधुओं के साथ नीचे नहीं मिराते
हुए, यतना पूर्वक आहार करे ॥३५॥

सुकटिचि सुप्रकटिचि, सुन्निद्रयणे सुहरे मड ।

सुविट्टिए सुसट्टिचि, सायन्त्र बन्त्रेण सुखी ॥३६॥

अच्छा बनाया अच्छा पकाया ठीक कठरा धुंध
किया बुतादि जूब मिलाया यह भोजन प्रति स्वादिष्ट है—
इस प्रकार सावध बचन नहीं बाले ॥३६॥

रमए पटिए सासं हय मर व बाहए ।

बासु सम्मइ सासंतो, गलिअस्स बाहए ॥३७॥

जैसे उत्तम बोड़े का शिखर प्रसन्न होता है वैसे ही
बिनीत शिष्यों को ज्ञान देने में गुरु प्रसन्न होते हैं । किन्तु दुष्ट
बोड़े का शिखर घोर अविनीत शिष्य के मद में बानों सेदित
होत है ॥३७॥

५ सुहइया मे अवेडा मे, अकोसा य बहा य मे ।

अन्नाअमणुआसतो, पावदिट्टिचि मयणइ ॥३८॥

जो अविनीत घोर पाप दृष्टिवाला शिष्य होता है वह
हिंकारी शिष्या को भी बुरी बपड़ रूप घासी रूप और बल रूप
मानता है ॥३८॥

पुत्रो मे भाय णाङ्गि, साहू कल्लाण मण्णइ ।

पावदिङ्गि उ अप्पाणां, सासं दासित्ति मण्णइ ॥३६॥

विनीत शिष्य, गुरु शिक्षा को हितकारी मानता है । वह सोचता है कि गुरु मुझे पुत्र, भाई और अपना ही समझते हैं । इससे उल्टा पाप बुद्धिवाला शिष्य, अपने को दास के समान मानता है ॥३६॥

ण कोवए आयरियं, अप्पाणां पि ण कोवए ।

बुद्धोवघाई ण सिया, ण सिया तोत्तगवेसए ॥४०॥

सुशिष्य स्वयं क्रुद्ध नहीं होंगे, आचार्य को कुपित नहीं करे, आचार्य का उपघात भी नहीं करे और उनके दोष भी नहीं खोजे ॥४०॥

आयरियं कुवियं णच्चा, पत्तिएणां पसायए ।

विज्झविज्झ पंजत्तिउडो, वएज्ज ण पुणोत्ति य ॥४१॥

आचार्य को कुपित जानकर विनय से और प्रसीति कारक वचनों से उन्हें प्रसन्न करे तथा हाथ जोड़ कर कहे कि 'अब कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगा ॥४१॥

धम्मज्जियं च व्यवहारं, बुद्धेहिं आयरियं सया ।

तमायरंतो व्यवहारं, गरहं णाभिगच्छइ ॥४२॥

तत्त्वज्ञो ने सदा धार्मिक व्यवहार का सेवन किया है । उस धर्म व्यवहार का आचरण करने वाला कभी निन्दित नहीं होता ॥४२॥

मखोगय बभ्रुगय आगिताऽऽपरियस्स उ । ।

। य परिगिहम् वायाण, कम्भुवा उवषायण ॥४३॥

भाचार्य क मनोगत भाव जानकर या उनके बचन सुन कर अपना बचन से स्वाकार करे और कार्य द्वारा साधरण करे ।

विसे अघोइए बिष, खिप्प इवइ सुचोइए ।

अहोइइइ सुकप, किप्वाइ इव्वई सया ॥४४॥

बिमयी सिप्प, विमा प्रेरणा किय ही काम करता है और प्रेरणा करने पर तो वीर्य ही अच्छी तरह आत्मानुसार काम करता है ॥४४॥

खका कमइ महावी, सोण किधी से वापए । ॥

इवइ किष्वायां सरणां, भूयायां अगई देहा ॥४५॥

इस प्रकार विमय के स्वरूप को जानकर मग्न बनने वाले बुद्धिमान् को साक में प्रसन्न होती है । जिस प्रकार प्राणियों के लिए पुण्यो आचारमूल है, उसी प्रकार वह बुद्धिमान् भी सर्वपुण्यो का आधार रूप होता है ॥४५॥

हुँ पुज्जा 'वम्स' पसीयन्ति, सम्पुद्धो पुब्बसन्धुया ।

पसएणां सामइस्सन्ति, विउत्त अट्ठिय सुयं ॥४६॥

सुशिप्प के विमयादि वन से प्रसन्न हुए तत्त्वज्ञ पूज्य पुरुषों से मोक्षार्थ वाले विस्तृत भूतज्ञान का लाभ होते है ।

स पुञ्जमत्ये सुविणीयसंसण, मणोरुई चिद्धइ कम्मसंपया ।
तवोसमायारि समाहिसंवुडे, महज्जुई पंच वयाइं पालिया ।४७।

ऐसा शान्धज प्रशसनीय शिष्य, सशय रहित होता है ।
वह गुरु की इच्छानुसार, प्रवृत्ति करता हुआ, कर्मसमाचारी,
दण्ड समाचारी, और समाधि युक्त स्वरवान होकर तथा महा-
व्रतों का पालन कर महान् तेज वाला होता है ॥४७॥

स देवगंधर्वमणुस्सपूढए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं ।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिइइए ।४८। तिवेमि ।

देव, गंधर्व और मनुष्यों से पूजित वह शिष्य, मल मूत्र
से भरे हुए इस शरीर को छोड़कर, इसी जन्म में सिद्ध एवं
शाश्वत हो जाता है । यदि कुछ कर्म शेष रह जाय तो महान्
ऋद्धिगाली देव होता है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥४८॥

दुइयं परीसहज्जभयणां

७२६

सुयं मे आउसं तेणां भगवया एवमक्खायं इह खलु
वावीसं परीसहा समणेणां भगवया महावीरेणां कासवेणां पवे-
इया जे भिक्खु सुब्बा एब्बा जिब्बा अभिभूय भिक्खायरियाए
परिव्वयन्तो पुट्ठो,णो विणिहएणेज्जा । कयरे खलु ते वावीसं

परीसदा समयेषां भगवया महावीरेषां कासवेषां पवेइया जे
 भिक्षु सुष्वा शष्वा जिष्वा अभिभूय भिक्षायपरियाए
 परिष्कयन्तो पुहो यो विखिहपयेञ्जा । इमे खहु ते भावीसं
 परीसदा समयेषां भगवया महावीरेषां कासवेषां पवेइया जे
 भिक्षु सुष्वा शष्वा जिष्वा अभिभूय भिक्षायपरियाए
 परिष्कयन्तो पुहो यो विखिहपयेञ्जा । तज्जहा-१ दिगिंछा
 परीसहे, २ पिवासा परीसहे, ३ सीय परीसहे, ४ उसिण
 परीसहे, ५ दसमसग परीसहे, ६ अपेस परीसहे, ७ अरइ
 परीसहे, ८ इत्थी परीसहे, ९ चरिया परीसहे, १० विसीविहिया
 परीसहे, ११ सिन्धा परीसहे, १२ अहोस परीसहे,
 १३ बह परीसहे, १४ आयसा परीसहे, १५ अमम
 परीसहे, १६ रोम परीसहे, १७ ठाफास परीसहे,
 १८ जज परीसहे, १९ सककरपुरकार परीसहे, २० पयसा
 परीसहे, २१ अयसास परीसहे, २२ दत्तं परीसहे ।

हे आयुष्यमान् जम्बू । मैंने सुना है उन भगवान् ने
 इस प्रकार कहा है । जिन प्रवचन में कास्यपयोगीय भ्रमण
 जिनबान् महावीर स्वामी ने कावीस परीवह कहे हैं जिन्हें
 मुनकर उनके स्वर्ण को जानकर उन्हें जीते । परीवह धामे
 पर भिक्षु बिचलित नहीं होते । जम्बूस्वामी पूछते हैं कि वे
 परीवह कौन से हैं ? उत्तर-—१ क्षुधा परीवह २ व्यास का
 ३ सीत, ४ उज्ज ५ बांस मन्तरादि का ६ वस्त्र की कमी

या अभाव से, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ विहार, १० एकान्त में बैठने का, ११ शय्या, १२ कठोर वचन, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृण स्पर्श, १८ मैल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और २२ दर्शन परीषह ।

परीसहाणं पविमत्ती, कासवेणं पवेड्या ।

तं मे उदाहरिस्सामि, आणुपुब्बि सुणेह मे ॥१॥

हे जम्बू ! काश्यपगोत्रीय भगवान् ने परीषहों के जो विभाग बताये हैं, उन्हें क्रमशः कहता हूँ, तुम मुनो ॥१॥

दिग्गिच्छापरिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं ।

न छिदे न छिंदावए, न पए न पयावए ॥२॥

भूख से पीड़ित होने पर सयम बलवाले तपस्वी साधु को चाहिए कि वे फलादि को स्वयं भी नहीं तोड़े, न दूसरे से तुड़ावे, न छिंदावे, न स्वयं पकावे और न दूसरों से पकावावे ॥२॥

कालीपव्वंगसंकासे, किसे धमणिसंतए ।

मायसणे असणपाणस्स, अदीणमणसो चरे ॥३॥

भूख से सुखकर, शरीर कौवे की टांग जैसा दुबल हो जाय, नसें दिखने लगे, शरीर अत्यन्त कृश हो जाय, तो भी आहार पानी की मर्यादा को जानने वाला साधु, दीनता नहीं लावे और दृढ़ता से सयम मार्ग में विचरे ॥३॥

तओ पुट्ठो पिवासाए, दुगुंछी लज्जसंजए ।

सीओदगं न सेवेज्जा, वियडस्सेसणं चरे ॥४॥

अनाचार स बूणा करने वाला सज्जानाम् साधु व्याम से पीड़ित होम पर सन्धित पानी का सेवन नहीं करे किन्तु अग्नि आदि से प्राप्त कृत बने हुए पानी की गवेषणा करे ॥४॥

क्षिप्त्वावापसु पथेसु, आठरं सुपिदासिए ।

परिसुक्कमुद्देऽदीये, स तितिक्षसे परीसह ॥५॥

निर्जन मार्ग में जाते हुए व्यास से व्याकुल हो जाय तथा मुँह सूख जाय ता भी बीमता रहित होकर कष्ट सहन करे ॥५॥

शरंत विरय सुह, सीय कुमह एगया ॥ ॥१॥

आइयेत सुधी गच्छे, सुष्वायां शिष्यासयां ॥६॥

जिनद्वार को विद्या का मुनने वाले, आरम्भ से विरत और रुक घरीरी साधु को, समय पालते हुए कभी ठण्ड लमे वा मर्यादा का उल्लंघन न कर दूसरी जगह नहीं जावे ॥६॥

य म शिषारयां अत्थि, छनिषारयां य विज्जह ॥

अह तु अग्नि सेवामि, इह मिक्षु य चित्तए ॥७॥

दीप्त निवारण करने के साधन यकान कम्बलादि भरे पास नहीं हैं इसलिए मैं अग्नि का सेवन कर भूँ -ऐसा विचार भी मन में नहीं लावे ॥७॥

उत्तिष्ठ परिपाषेयां, परिदादेण उज्जिण ॥

पिमु वा परिपाषेयां, माय सा परिदवण ॥८॥

ओष्मादि श्रुतु म उष्ण स्पर्श वास पुष्पी आदि के ताप से दग्ध होने पर, मुग्ध के लिए विचार नहीं करे ॥८॥

उएहाहित्तो मेहावी, सिग्गायां णो वि पत्थए ।

गाय ण परिसिंचेज्जा, ख वीएज्जा य अप्पयं ॥६॥

बुद्धिमान् साधु, गर्मीं न पीडित होने पर भी स्नान करने की इच्छा नहीं करे, न शरीर को भिगोवे, न पखे से हवा करे ।

पुट्ठो य दसमसएहि, ममरे व महामुणी ।

णागो संगामसीसे वा, सरे अभिहणे परं ॥१०॥

जिस प्रकार मश्रम में आगे रहने वाले हाथी और योद्धा, शत्रु को मारते हैं, उसी प्रकार डास मच्छरादि का परीषह उत्पन्न होने पर शांत भाव से क्रोध को जीते ॥१०॥

ण संतसे ण वारिज्जा, मयां पि ण पओसए ।

उवेहे णो हणे पाणे, भुंजंते मंससोणियं ॥११॥

अपने रक्त मांस को चूसते हुए प्राणियों को मारे नहीं, सतावे नहीं, रोके नहीं, मन से उन पर द्वेष नहीं करे, किन्तु समभाव रखे ॥११॥

परिजुणोहि वत्थेहि, होक्खामि चि अचेलए ।

अदुवा सचेलए होक्ख, इह भिक्खू ण चितए ॥१२॥

वस्त्रों के जीर्ण होने पर 'मैं वस्त्र रहित हो जाऊँगा या वस्त्र सहित रहूँगा'—इस प्रकार विचार भी नहीं करे ।

एगया अचेलए होइ, सचेलो या वि एगया ।

एयं धम्महियं खच्चा, णाणी णो परिदेवए ॥१३॥

साधु कभी (जिनकल्प में) वस्त्र रहित होता है और

कभी वस्त्र मलिन । दोनों धनस्याओं को धर्म में हितकारी
प्राप्तकर्म सेव सही करे ॥१३॥

गामाणुगाम रीयस, अणुगामकिंघर्षा ।

अरई अणुप्यवेसुत्तमा, त तितिकसे परीसह ॥१४॥

ग्रामानुगाम विहार करते हुए अपरिग्रही धनगार को
कभी धरति (धरति) उत्पन्न हो तो उस परीपह का सहन
करे ॥१४॥

अरई पिद्वमो किञ्चा, विरए आयरविखए ।

धम्मारामे पिरारंमे, उवसंते मुणी चरे ॥१५॥

आरम्भ त्यागी विरत कपार्यों को प्राप्त करने वाले
आत्मच्छक मनि धरति को हटा कर धर्मरूपी उद्यान में
विचरे ॥१५॥

संगो एम मणुस्साया, जाओ लोणम्मि इत्थिओ ।

बम्प एया परियेसाया, सुखं वस्स सामयया ॥१६॥

जाक में स्त्रियाँ पुरुष के लिए आसक्ति का कारण हैं
मह जान कर जिसने स्त्रियों का त्याग किया है उसका सामुत्त
सफल है ॥१६॥

एवमादाय महावी, पक्रमूया उ इत्थिओ ।

यो ताहिं विविदिपिण्डा, चरन्धसगवसए ॥१७॥

वृद्धिमान् साधु स्त्रियों के संग को पीनकल्प मान
कर उनमें नहीं फँस और आत्म-गवयक हाकर संयम में
विचरे ॥१७॥

एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे ।

गामे वा खगरे वावि, यिगमे वा रायहाणीए ॥१८॥

प्रासुकभोजो, सयमी साधु, परीषहो को जीतकर ग्राम,
नगर, निगम (मण्डी) अथवा राजधानी में एकाकी भाव से
विचरे ॥१८॥

असमाणे चरे भिक्खू, खेव कुज्जा परिगहं ।

असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिक्खेओ परिव्वए ॥१९॥

साधु, निराश्रय होकर विचरे, परिग्रह-नमता नहीं
रखे और गृहस्थो से सम्बन्ध नहीं रखकर विचरता रहे ॥१९॥

सुसाणे सुणणगारे वा, रुक्खमूले व एगओ ।

अकुक्कुओ खिसीएज्जा, य य वित्तासए परं ॥२०॥

साधु श्मशान में, सूने घर में या वृक्ष के नीचे, शान्ति-
पूर्वक एकाकी होकर बैठे और किसी प्राणी को दुःख नहीं दे ।

तत्थ से चिद्धमाणस्स, उवसग्गाभिधारण ।

संकाभीओ य गच्छेज्जा, उट्ठिचा अणणमासयां ॥२१॥

श्मशानादि में बैठे हुए यदि उपसर्ग हो, तो दृढता से
सहन करे, किन्तु भयभीत हाकर वहाँ से अन्य स्थान पर नहीं
जावे ॥२१॥

उच्चावयाहिं सिज्जाहिं, तवस्सी भिक्खू थामवं ।

गाढवेलं विहरिणज्जा, पावदिट्ठी विहरणइ ॥२२॥

समर्थ तपस्वी को ऊँची नीची छय्या मिले तो हर्ष या बिपाद करके समय की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करे क्योंकि पाप दृष्टि वाले का समय भग होता है ॥२२॥

पश्चिमामुष्मय लक्ष्म, कम्पारां अद्भुत पावर्ग ।
किमेगराय करिस्सद्, एव हरथऽद्वियासए ॥२३॥

स्त्री आदि से रहित स्थान यदि भज्जा या बुरा भी मिले तो 'एक रात में मेरा क्या भला या बुरा हुआ होगा' - ऐसा सोचकर सममान से सुख दुःख का सहन करे ॥२३॥

अक्केसेज्जा पर भिक्खु ए तेसि पडिसज्जे ।
सरिसो होई बालायां, तम्हा भिक्खु ए संज्जे ॥२४॥

साधु को कोई यात्री दे और अपमान करे तो उस पर काव नहीं करे। श्रेष्ठ करने से वह स्वयं यज्ञानी के समान हो जाता है ॥२४॥

सोन्घायां फल्सा मामा, दारुणा गाम फट्ठा ।
तुसिन्हीओ उषेहेज्जा, ए ताओ मयासी करे ॥२५॥

साधु कानों में कांटों के समान चुभने वाली घत्यन्त कठोर भाषा को सुनकर भीम से उसकी उपेक्षा करे । उस मन में स्थान ही नहीं है ।

हओ ए संज्जे भिक्खु, मयां पि ए पओसए ।
तितिक्ख परम याणा, भिक्खु अम्म विचित्ठए ॥२६॥

साधु को कोई मारे तो साधु उस पर श्रेष्ठ नहीं करे

और मन से भी द्वेष नहीं करे, किन्तु 'क्षमा परम धर्म है'—ऐसा सोचकर धर्म का ही चिन्तन करे ॥२६॥

समणां संजयं दंतं, हसिञ्जा कोई कथइ ।

एत्थि जीवस्स णासुत्ति, एवं पेहेज्ज संजए ॥२७॥

इन्द्रियो का दमन करने वाले सयमी साधु को कोई मारे, तो "जांव का नाश नहीं होता"—इस प्रकार विचार करता हुआ समता भाव में रहे ॥२७॥

दुकरं खलु भो शिच्चं, अणगरस्स भिक्खुणो ।

सव्वं से जाइयं होइ, एत्थि किंचि अजाइयं ॥२८॥

हे शिष्य ! अनगर भिक्षु का जीवन निश्चय ही कठिन है, उसे आहारादि मांगने पर ही मिलते हैं, बिना मांगे कुछ भी नहीं मिलता ॥२८॥

गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी णो सुप्पसारए ।

सेओ अगारवासुत्ति, इइ भिक्खु ए चितए ॥२९॥

भिक्षा के लिए गृहस्थ के यहा गया हुआ साधु, सकोचवश इस प्रकार विचार नहीं करे कि—'मांगकर खाने की अपेक्षा तो गृहन्याश्रम में रहना ही ठीक है' ।

परेसु वाससेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए ।

लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, खाणुत्तप्पेज्ज पंडिए ॥३०॥

भोजन तैयार हो जाने के समय गृहस्थों के यहाँ

गवेयणा करे । आहार मिले या न मिले तो बुद्धिमान साधु
सब नहीं करे ॥३०॥

अन्वेष्टाह य सन्नामि, अवि क्षामो मुए सिया ।
ओ एव यदिसंचिक्खे, अन्नामो स य सज्जण ॥३१॥

मृक्त धात्र आहार नहीं मिलता तो संभवतः कम भिक्ष
आयगा—ऐसा सोचकर जो दीनता नहीं साता है उसे अन्नाम
परापह नहीं सजाता ॥३१॥

एषा उप्पइय दुक्ख, वेयखाए दुइहिण ।
अदीणो अण पपणां, पुट्ठो सत्थऽहियासए ॥३२॥

राग उत्पन्न होने पर दुःखी दुःखा साधु दीनता रहित
होकर अपनी बुद्धि को स्थिर करे और उत्पन्न हुए रोग को
समभाव से सहन करे ॥३२॥

वेगिच्छ याभिर्णादिज्जा, सचिक्खवगवेसए ।
एय सु तस्स सामयणां, अ य दुब्बा य कारणे ॥३३॥

धार्म शाश्वत मुनि चिकित्सा का अनुमादन भी नहीं
करे और रोग को समभाव से सहे । चिकित्सा नहीं करता
और न करवाना इसीमें उसकी साधुता है ॥३३॥

अवेसगस्स लुरस्स, सज्जयस्स तपस्सिणो ।
तथेसु सयमाबस्स, दुब्बा गायविराहया ॥३४॥

वस्त्र रहित और रक्त शरीर वाले सयमी तपस्वी को
तुम पर सोने से शरीर में पीड़ा होती है ॥३४॥

आयवस्स शिवाएणां, अउल्ला हवइ वेयणा ।

एवं शच्चा ण सेवन्ति, तंतुजं तण्णतज्जिज्या ॥३५॥

गर्मी और तृण स्पर्श से वेदना अधिक होती है । उस समय तरकादि दुखों का विचार करके अचेलक मुनि, वस्त्रादि का सेवन नहीं करे ॥३५॥

किलिएण्णगाए मेद्दावी, पंकेण व रएण वा ।

विंसु वा परियावेणां, सायं णो परिदेवए ॥३६॥

श्रीष्म आदि में पमाने से या मैल अथवा रज से शरीर लिप्त हो जाय, तो बुद्धिमान् साधु, सुख के लिए दीनता नहीं सावे ॥३६॥

वेएज्ज णिज्जरापेही, आरियं धम्मणुत्तरं ।

जाव सरीरमेशो त्ति, जल्लं काएण धारए ॥३७॥

निर्नरा का अर्थी साधु, सर्वोत्तम अर्थ धर्म को प्राप्त करके जीवन पर्यन्त इस शरीर द्वारा मैल परीषह को सहन करे ॥३७॥

अमिवायणमब्भुट्ठाणां, सामी कुज्जा णिमंतणां ।

जे ताइं पडिसेवन्ति, ण तेसिं पीहए मुणी ॥३८॥

यदि कोई स्वतीर्थी या अन्यतीर्थी साधु, राजा आदि द्वारा किये गये सत्कार, नमस्कार तथा विमन्त्रण आदि का सेवन करते हैं, तो साधु उनकी चाहना एवं प्रशंसा नहीं करे ।

अणुक्कमाई अपिच्छे, अण्णापसी अलोसुए ।

रससु खाणुगिग्मिन्ना, खाणुवपिन्ना पण्णयं ॥३६॥

अल्प कयायी अल्प इच्छावासा अत्रात कृता से मिठा लेने वाला और लोलुपता रहित बुद्धिमान् चाधु सरस भाजन में प्रासक्ति नहीं रखे और उसक न भिन्नने पर सब भी नहीं करे ॥३६॥

से राणां मए पुब्ब, कम्माऽयावफला कडा ।

जेणाई यामिआयामि, पुट्ठो केवइ कएहुई ॥४०॥

बिची के द्वारा पूछो हुई बात का उत्तर नहो दे सके तो इस प्रकार विचार करे कि मैंने पूर्व जन्म में अज्ञान कम वाले कर्म किये हैं इससे मैं पूछो हुई बात का ठीक उत्तर नहीं दे सकता ॥४०॥

अइ पच्छा उइन्नन्ति, कम्मायावफला कडा ।

प्यमस्सासि अप्पाण, खडा कम्मविभागाय ॥४१॥

‘इसके बाद ज्ञान कम देने वाले कर्मों का उदय होगा’ इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर आत्मा को आश्वासन दे ॥४१॥

खिरहगम्मि विरओ, मेहुयामो सुसंखुओ ।

ओ सकल यामिआयामि, यम्म कट्ठाखपावग ॥४२॥

धर्म में एका उत्पन्न होने पर ऐसा विचार नहीं करे कि मैं अब एक साक्षात् कल्याणकारी धर्म और पाप को भी नहीं

जानता, तो फिर मेरा मैथुनादि से निवृत्त और सयत होना व्यर्थ है” ॥४२॥

तवोवहाण मादाय, पडिमं पडिवज्जथो ।
एवं वि विहरओ मे, छउमं ण णियड्ढे ॥४३॥

“मे तप और उपधान कर रहा हू और प्रतिमा धारण कर विचर रहा हू, फिर भी मेरा छद्मस्थपन दूर नहीं हुआ” ।

णत्थि णूणं परे लोए, इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वंचिओ मि त्ति,इड्ढ भिक्खू ण चितए ॥४४॥

“निश्चय ही परलोक नहीं है और तपस्वी को किसी प्रकारकी ऋद्धि भी प्राप्त नहीं होती । मैं साधु बनकर ठगा गया,” इस प्रकार के विचार भी नहीं करे ॥४४॥

अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवावि भविस्सइ ।
मुसं ते एव माहंसु, इड्ढ भिक्खू ण चितए ॥४५॥

“भूतकाल में जिन हुए है, वर्तमान में है, और भविष्य में भी होंगे, ऐसा जो कहा है वह झूठ है”—साधु, ऐसा विचार भी नहीं करे ॥४५॥

एए परीसहा सन्वे, कासवेणं पवेडया ।
जे भिक्खू ण विहरिणज्जा, पुट्ठो केणई कणहुई ॥४६॥ त्ति वेमि
ये सभी परीषह भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाये हैं ।
यह जान कर किसी भी परीषह के उत्पन्न होने पर, समय से विचलित नहीं होवे ॥४६॥ ऐसा मे कहता हूँ । इति ॥

तद्वय चाउरगीयज्भयरा

चचारि परमगाणि, दुल्लहासीह वतुणो ।

माणुसध सुह सद्धा, सज्जमम्मि य वीरिय ॥१॥

इस जीव का मनुष्य जन्म भवभरण धर्मधर्मा और
सयम में स्थित लगाना इन चार उत्तम धर्मों की प्राप्ति
होना दुर्लभ है ॥१॥

समावयथास्य संसारं, खाण्णागोचामु माप्सु ।

कम्मा यथाविहा कहु, पुढो विस्समिपा पया ॥२॥

यह जीव संसार में नामा प्रकार के कर्म करके धनक
पान वाष्पी जातियों में उत्पन्न होकर सारे विषय में व्याप्त
हो चुका है ॥२॥

एगया देवसोएसु, थरएसु वि एगया ।

एगया आसुरे क्खये, महाकम्मेहि गच्छई ॥३॥

घपने कर्मों के अनुसार यह जीव कभी देवमाक में
कभी नरक में और कभी असुरकाय में उत्पन्न होता है ॥३॥

एगया सत्तिओ होइ, उओ चडालघुक्कसो ।

तओ कीडपयगो य, तओ कुंघुपिडीलिया ॥४॥

यह जीव कभी क्षत्रिय कभी चाण्डाल हो कभी बण्डूककर
जाति में और कभी कभी कीट पतंगे कुम्भुए और बीटी भी
हो जाता है ॥४॥

एवमावद्वृजोणीसु, पाणिणो कम्मकिञ्चिता ।

ए गिञ्चिज्जंति संमारे, मव्वद्वेसु व खत्तिया ॥५॥

जिस प्रकार सभी तरह की ऋद्धि होते हुए भी, क्षत्रियो को राज्य तृष्णा शान्त नहीं होती, उसी प्रकार अशुभ कर्म वाले जीव, अनेक योनियो में परिभ्रमण करते हुए भी विरक्त नहीं होते ॥५॥

कम्मसगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।

अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥६॥

कर्मों के सम्बन्ध से मूढ़ बने हुए दुखी और अत्यन्त वेदना वाले प्राणी, मनुष्य के सिवाय नरकादि योनियो में अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं ॥६॥

कम्माणं तु पहाणाए, आणुप्पवी कयाइ उ ।

जीवा सोहि मणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं ॥७॥

मनुष्यत्व में बाधक होने वाले कर्मों के क्रमशः नष्ट होने से हुई शुद्धि के कारण, जीव कभी मनुष्य जन्म पाता है ॥७॥

माणुस्सं विग्गहं लद्धं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।

जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खत्तिमहिंसयं ॥८॥

मनुष्य जन्म पाजाने पर भी उस सत्य धर्म का सुनना दुर्लभ है कि जिसे सुनकर जीव, तप क्षमा और अहिंसा को अंगीकार करते हैं ॥८॥

आइष मर्यां लब्धुं सदा परम दुष्प्रहा ।

सोषा खेयाउय मर्मा, बहवे परिमस्सइ ॥६॥

कषाचित् धम भी सुनसे किन्तु उस पर ध्या होना ता
प्रत्यत दुमम है क्योंकि भ्याय मार्ग को मुनकर भी बहुत से
मोग भ्रष्ट हा जाते हैं ॥६॥

सुइ च लब्धुं सद् च, वीरिय पुण दुष्प्रहा ।

बहवे रोयमासा वि, पो य र्मा पडिवज्जइ ॥७॥

धर्म मुनकर धीर अद्या पाकर भी संयम में उद्यमी
होना दुर्लभ है । कई मनुष्य अद्यान् हाते हुए भी आचरण
नहीं करते ॥७॥

माप्सुमत्तम्मि आयाओ, जो धम्म सोष सइह ।

तवस्सी वीरिय लब्धुं संवुडे विदुबे रयं ॥८॥

जा जोष मनुष्य जन्म पाकर धर्म का सुनता ह
अद्याम करता है धीर संयम में उद्यमी होता है वह संवृत्त
तपस्वी कर्मों का नाश कर देता है ॥८॥

सोही उज्जुपभूपस्स, धम्मो सुदस्स चिहुइ ।

विज्जायां परम जाइ, वपसिचि च पाणए ॥९॥

ऐसे सरण भाव वाले जाव की हो सुदि हाती है ।
शुद्ध धारमा में ही धर्म ठहरता है । वह धृत से सीधी हुई
अग्नि की तरह वैशिष्यमान् हाता हुआ निर्वाण प्राप्त करता है ।

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए ।

पाढवं सरीरं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥१३॥

उपर्युक्त परम अगो को रांकने वाले कर्मों के हेतु को दूर करो । जानादि धर्म से सयम रूप यश को बढाओ । ऐसा करने वाला इस पार्थिव शरीर को छोडकर ऊर्ध्व दिशा को प्राप्त होता है ॥१३॥

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरउत्तरा ।

महासुक्का व दिप्पंता, मएणाता अपुणञ्चव ॥१४॥

उत्कृष्ट आचार का पालन करने से जीव, उत्तरोत्तर विमानवासी देव होते हैं और सूर्य चन्द्र की तरह प्रकाशमान होते हुए वे मानते हैं कि हम यहां से नहीं चवेगे ॥१४॥

अप्पिया देवकामाणां, कामरुव विउन्विणो ।

उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुब्बा वाससया बहू ॥१५॥

देव सम्बन्धी कामभोगों को प्राप्त हुए और इच्छानुसार रूप बनाने की शक्ति वाले ये देव, सैकड़ों पूर्व वर्षों तक विमानों में रहते हैं ॥१५॥

तत्थ ठिच्चा जहाठाणां, जक्खा आउक्खए चुया ।

उवंति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायइ ॥१६॥

वे देव अपने स्थान की आयु क्षय होने पर वहाँ से चव कर मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं । वहाँ उन्हें दस अगो की प्राप्ति होती है ॥१६॥

खेस नृत्य शिरण्यां च, पसवो दासपोरुसं ।

चत्वारि क्षमस्वचाखि, सत्य से उववन्जइ ॥१७॥

एत वगोचे महस सोना चाँदी दासवासी घोर
पक्षु-ये चार काम के स्तब्ध है । जहाँ काम के ये चारों भग
हा वहाँ वे उत्पन्न हाते हैं ॥१७॥

मिसव खाइव होइ, उच्चागोए य बयखव ।

अप्यायके महापय्ये, अमिजाए असो वस्त्रे ॥१८॥

बहु मित्रवाला आतिवाला उच्च गोत्रवाला सुन्दर निरोग
महाबुद्धिवासी, सर्वप्रिय यक्षस्त्री और बलवान् होता है ॥१८॥

मोच्चा माणुस्यए भोए, अप्यहिरुवे अहाउय ।

पुंवि बिसुद सद्धम्मे, केवल मोहि पुंविभया ॥१९॥

बहु धायु के धनुवार मनुष्य के उत्तम भोगों को
भोगता है और पूबमव में सुद धर्म का आचरण किया हुआ
हाने से वहाँ सुद सम्पत्ति प्राप्त करता है ॥१९॥

चउरंगं दुव्वड शण्णा, सज्जम पडिबळिया ।

सपसा धुपकम्मस, सिद्धे हवइ सासर ॥२०॥ ति वेमि ।

किर वह चार भंगो का दुसम जानकर समय धारण
करता है और तन से कर्मों का दाय करके सादर सिद्ध हो
जाता है ॥२०॥

सीधरा अध्ययन समाप्त

चउत्थं असंखयं अज्झयणां

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणां ।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किएणु विहिंसा अजया गहिंति ॥१॥

हे, जीव, तू प्रमाद मतकर । एक बार टूटा हुआ आयुष्य फिर कभी नहीं जुड़ता, न वृद्धावस्था में ही कोई रक्षक होता है । तू विचार तो कर कि जो हिंसक, अविरत और प्रमादी बने हुए है, जो पाप में ही रचे हुए है, वे किसकी शरण में जावेगे ? ॥१॥

जे पावकम्मेहिं धणां मणूसा, समाययंति अमहं गहाय ।
पहाय ते पासण्याट्टिए णरे, वेराणुवद्धा णरयं उवेंति ॥२॥

जो मनुष्य, पाप से धन संचय करते है, वे मोह में फँसे हुए और घेर से बन्धे हुए है, वे धन को यही छोड़ कर नरक में जाते है ॥२॥

तेणे जहा संचिमुहे गहिण, सकम्मुणा किञ्चइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च इहं च लोण, कडाण कम्माण ख मुक्ख अत्थि ॥३॥

जैसे सेव लगाते हुए पकड़ा गया चोर, अपने पाप कर्म से ही दुख पाता है, वैसे ही जीव, अपने पापों का फल इसलोक और परलोक में पाता है । क्योंकि किसे हुए पाप कर्मों का फल भुगते बिना छुटकारा नहीं होता ॥३॥

संसारमात्रेण परस्व अहं, साधारणं अथ करोऽ कम्म ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, यं वचना वचनय उवेति ॥४॥

संसारी जीव अपने और दूसरों के लिये साधारण कर्म करता है । किन्तु उस कर्म का फल भोग्यत समय उसके स्वजन और वन्धुगण हिस्सा नहीं लेंते ॥४॥

विचेण तायां यं सुमे पमत्ते इमस्मि लोए अदुवा परत्था ।
दीवप्पस्यहे व अयांतमोहे, खेयाउय दुहुमदुहुमेव ॥५॥

धन के लिए जो जीव धनक पाप करता है किन्तु धन से न तो यहाँ रक्षा होती है न परलोक में ही । जिस प्रकार दीपक वृक्ष जाने पर धन्यारे में कुछ भी दिखाई नहीं देता उसी प्रकार धनस्त (धनस्तानुबन्धी) मोह के कारण जिस जीव का ज्ञानबीज मूट ही चुका उसे स्पष्ट दिखाई देने वाला न्याय मार्ग भी नहीं दिखाई देता ।

सुत्तेसु यावि पडिपुद्धजीवी, खो धीमसं पडिए भासुपण्ण्ये ।
पोरा मुहुत्ता अमसं सरीरं, भारदपक्खी व चरऽप्यमत्ते ॥६॥

माह में सोये हुए सायों के बीच भी जो प्रज्ञावान् मयमो और पण्डित ह उन्हें प्रमाद में बिदबास नहीं करन चाहिए क्योंकि वास भयानक है और घरीर निबल है । इसलिए भारद पक्षी की तरह अप्रमत्त हो कर बिचरे ॥६॥

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मरणमाणो ।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिणाय मलावधंसी ॥७॥

चारित्र्य में सदैव शक्ति (सावधान) रहे । लोक के थोड़े परिचय को भी बन्धनरूप मानता हुआ विचरे और ज्ञानादि का जब तक लाभ हो, तब तक जीवन की वृद्धि करे, बाद में ज्ञान पूर्वक शरीर का त्याग करदे ॥७॥

छंदं शिरोहेण ठवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खियवम्मधारी ।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽपमत्तो, तम्हा मुणीं सिप्पमुवेइ मोक्खं ॥८॥

जैसे सवार को शिक्षा में रहने वाला कबचधारी थोड़ा विजयी होता है, वैसे ही स्वच्छन्दता छोड़कर गुरु आज्ञा में रहने वाला साधु, पूर्व वर्षों तक अप्रमत्त होकर विचरे । इससे शिष्ट भुक्ति होती है ॥८॥

स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं ।
विसीयइ सिद्धिं आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स मेए ॥९॥

जिसने पहली अवस्था में धर्म नहीं किया, वह बाद में भी नहीं कर सकेगा । यदि कोई निश्चयवादी (आयु को जानने वाला) कहे कि पिछली अवस्था में धर्म कर लूंगा, तो उसका कहना किसी प्रकार ठीक भी हो सकता है । किन्तु जिनकी आयु का कोई भरोसा नहीं, वे भी यदि प्रमादी रहते हैं, तो जब आयु शिथिल हो जाती है और मृत्यु से शरीर नष्ट होने का समय आता है, तब उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है ॥९॥

खिप्प ख सकेइ विवेगमेउ, तम्हा समुद्राय पहाय कामे ।
समिब लोगं समया महेसी, आयाणुरपखी चरप्पमत्तो ॥१०॥

ऐसा विवेक (त्याग) शोध प्राप्त नहीं होता । इसलिए
धारम रक्षक मुनि समभाव धूबक साक का स्वरूप जान कर
काम मोर्षों का त्याग करे और सावधानी से धर्ममत हाकर
बिचरे ॥१०॥

सुहु सुहु मोहगुणे जयत, अखेगरुमा ममयां चरंत ।
फरसा फुसंती असमजस च, य तेसु भिक्खु मयसा पउस्से ॥११॥

निरन्तर मोह गुणों को खाते हुए मंथन में बिचरने
वाले साधु को अनेक प्रकार के प्रतिकूल विषय स्पर्श करते हैं
किन्तु साधु उन दुःखदायक विषयों पर मन से भी द्वेष नहीं
करे ॥११॥

महा य फरसा बहुसोइबिज्जा, तइप्पगारेसु मयां च कुज्जा ।
रक्खेज्ज कोहं विषएज्ज मायां, माय च सेवेज्ज वहेज्ज सोइ ॥

विवेक को मन्द करके भुभाने वाले विषयों में मन का
नहीं जाने दे क्रोध का शासन करे, मान का हटाने माया का
सेवन नहीं करे और साध का त्याग करे ॥१२॥

अ सखया तुप्प परप्पवाई, सं पिज्जदोसाणुगया परक्ख ।
एण अहम्मेति दुगुद्धमाणो, फल्लु गुणे जाव सरीर मेण । वि वेमि

ओ तुप्प नि सार दग्धादम्भरी और धर्मसावादी है

वे रागद्वेष युक्त होने से पराधीन हैं, और अधर्म के हेतु हैं ।
इनसे धृणा करता हुआ, जब तक शरीर का नाश न हो, तब
तक गुणों को बढ़ाने की ही इच्छा करे ॥१३॥

चौथा अध्यायन समाप्त

अकाममरणिञ्जं पंचमं अज्भयणं

अण्णवंसि महोहंसि, एगे त्रिण्णे दुरुत्तरे ।
तत्थ एगे महाण्णो, इमं पण्हमुदाहरे ॥१॥

इस महा प्रवाह वाले दुस्तर ससार समुद्र को कई
महापुरुष तिर गये हैं । इस विषय में जिज्ञासु के पूछने पर एक
महाज्ञानी ने कहा कि—

संतिमे यं दुवे ठाणा, अक्खाया मरणांतिया ।
अकाममरणं चेव, सकाममरणं तद्वा ॥२॥

मृत्यु के ये दो स्थान कहे गये हैं—अकाम मरण और
सकाम मरण ॥२॥

बालाणां तु अकामं तु, मरणां असदं भवे ।
पंडियाणां सकामं तु, उक्कोसेण सदं भवे ॥३॥

अज्ञानियों को बार बार अकाममरण मरना पड़ता है
और पंडितों का सकाममरण उत्कृष्ट (केवलियों की अपेक्षा)
एक ही बार होता है ॥३॥

तन्मिम पदम ठापा, महावीरस्य देसिय ।

कामगिद्वे बड़ा बाले, मिसं कूराइ कुन्वइ ॥४॥

पहले स्थान-धकाम मरण का बाणन करते हुए भगवान् महावीर स्वामी न फरमाया कि भक्तानी जीव बिपयासकत होकर अत्यन्त बुरे कर्म करता है ॥४॥

जे गिद्वे कामभोगेसु, एगे कूराप गन्वइ ।

य मे दिद्वे परे सोए, वक्सुदिह्वा इमा रह ॥५॥

बिपयासकत जीव भक्तानी ही नर्क में जाता है । वह सोचता है कि परसाक तो मेरे नहीं देखा किन्तु यहाँ का सुख तो अत्यन्त दिखाई देता है । इसे धाड़कर परसाक की प्राप्ति क्यों करूँ ॥५॥

इत्यागया इम कामा, कालिया जे अयागया ।

को जायइ पर सोए, अतिथि वा यातिथि वा पुथो ॥६॥

मे बिषय सुख तो पची मेरे हाथ में हैं और भविष्य में मिसने वाले सुख परोक्ष है । फिर कौन जानता है कि पर-लोक है भी या नहीं ॥६॥

अयेण सखि होखलामि, इइ बाले पगम्भइ ।

कामभोगाणुरापयां, कर्तं संपडिबउअइ ॥७॥

म क्यों चिन्ता करूँ । जो दूसरा का हास हागा वह मेरा भी होगा । भक्तानी जीव इस प्रकार कहता है । वह काम भोगानुरागी दुखी होता है ॥७॥

तश्चो से दंढं समारभइ, तसेसु थावरेसु य ।

अट्टाए य अणट्टाए, भूयगाम विहिंसइ ॥८॥

इस प्रकार वह अज्ञानी, त्रस और स्थावर जीवों को, अपने और दूसरों के लिये तथा अकारण ही हिंसा करता है ।

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुखे सढे ।

भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मण्णइ ॥९॥

वह अज्ञानी, हिंसा, झूठ, कपट, चुगली, धूर्तता और मांस मदिरा का सेवन करता हुआ, इन्हीं को श्रेयस्कर मानता है ॥९॥

कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।

दुइओ मलं संचिणइ, सिमुणागुच्च मड्डियं ॥१०॥

जिस प्रकार केचुआ, मिट्टी खाता भी है और शरीर पर भी लगाता है, वैसे ही कामी जीव, मन, वचन और काया से मदान्व बना हुआ और धन तथा स्त्रियों में आसक्त होकर राग-द्वेष से कर्मफल का सचय करता है ॥१०॥

तश्चो पुट्ठो आयंकेणां, गिलाणो परितप्पइ ।

पमीओ परलोगस्स, कम्माणुप्पेही अप्पणो ॥११॥

फिर उग्र रोगों से पीडित और परलोक से डरा हुआ जीव, अपने दुष्कर्मों को याद कर पश्चात्ताप करता है ॥११॥

सुपा मे शरणं ठाया, असीलायां च आ गई ।

बालायां कूरकम्मायां, पगगहा अत्य वेपक्खा ॥१२॥

हे अम्बू ! मैंने नरक स्थानों के विषय में सुना है और दुःखानों की गति भी सुनी है । नरक में कूरकर्मों पञ्चामियों का तीव्र वेदना होती है ॥१२॥

तत्थोववाइयं ठायां, बहा मेऽयमणुमुत्तुय ।

आहाकम्मेहि गच्छतो, सो पण्णा परितप्पइ ॥१३॥

मैंने सुना है कि अपने अनुम कर्मों के अनुसार नरक के दुःखमय स्थान में जाता हुआ जीव बाद में पश्चात्ताप करता है ।

अहा सागडिओ आयां, समं हिवा महापइ ।

विषम ममापोश्यओ, अक्खे ममाम्मि सोयइ ॥१४॥

जिस प्रकार जान बूझकर राजमार्ग को छोड़कर विषम मार्ग पर जानेवाला गाड़ीवान् गाड़ी को जरी के टूट जाने पर पश्चात्ताप करता है ॥१४॥

एव धम्मं विठक्खम, अहम्मं पडिबन्धिअया ।

बाले मच्छुप्पइ पत्ते, अक्खे ममो व सोयइ ॥१५॥

जसी प्रकार धर्म छोड़कर अधर्म का ग्रहण करने वाला मज्झानी मृत्यु के मुँह में जाने पर घाक करता है ॥१५॥

तणो से मरणातिम्मि, पात्ते संठस्सई मया ।

अक्खममरणां मरई, पुत्ते व कल्लिया जिण ॥१६॥

मृत्यु के समय वह अज्ञानी, नरक के भय से कापता है और हारे हुए जूझारी की तरह अकाम मरण मरता है ॥१६॥

एयं अकाममरणां, बालाणां तु पवेदयं ।

इतो सकाममरणां, पंडियाणां सुखेह मे ॥१७॥

यह अज्ञानी जीवों का अकाम मरण कहा । अब पण्डितों का सकाम मरण कहता हूँ सो सुनो ॥१७॥

मरणां पि सपुण्याणां, जहा मेऽयमणुस्तुयं ।

विष्पमण मणाघायं, संजयाणां वुसीमओ ॥१८॥

मैंने सुना है कि पुण्यवन्त, जितेन्द्रिय और सयमी पुरुषों का मरण, व्याघात रहित और प्रसन्नता से होता है ॥१८॥

ए इमं सव्वेसु भिक्खुसु, ए इमं सव्वेसुऽगारिसु ।

शाणासीला अगारत्था, विममसीला य भिक्खुणो ॥१९॥

यह पण्डित मरण न तो सभी भिक्षुओं को होता है और न सभी गृहस्थों को । गृहस्थ भी अनेक प्रकार का शील पालते हैं और साधु भी भिन्न आचार वाले होते हैं ॥१९॥

मन्ति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा ।

गारत्थेहि य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ॥२०॥

कई भिक्षुओं से गृहस्थ उच्च सयमी होते हैं और सभी गृहस्थों की अपेक्षा, सुमाधु उत्तम सयम वाले होते हैं ॥२०॥

चीराजिणां णगिणिणां, जडी संधाडि मुंडिणां ।

एयाणि वि ण तायंति, दुस्सीलं परियागयं ॥२१॥

धीवर मृगयम भग्नत्व पटा कंधा मोर मुण्डन आदि
भी दुराचारी की दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकते ॥२१॥

पिंडोत्थ ए व दुस्तीले, शरगाभो य मुञ्चह ।

मिक्षाए वा गिहत्वे वा, सुम्बणः कम्मई दिव ॥२२॥

यदि भिक्षु भी दुराचारी हो सा वह नरक से नहीं बच सकता ।
चाहे पृथ्व्य हा या साधु सुदुर्गों का पासन करने वाला वेव-
साक में जाता है ॥२२॥

अगारि सामादयगाह, सद्धी कायस फासए ।

पोसह दुहम्मो पक्ख, एगराय ष्च हावए ॥२३॥

मृहस्य भी सामायिक के धृत चारित्र्य रूप धर्मों का
अज्ञापूर्वक कामा से (मन बचन से भी) पालन करे । दानों
पक्ष में पौषध करे । इसमें एक रात्रि की भी हानि नहीं करे
अर्थात् प्रत्येक मास के दानों पक्ष में पौषध करे । यदि किसी
कारण से अधिक नहीं कर सके तो एक पौषध तो अवश्य करे ।
यदि दिनरात का पौषध नहीं कर सके तो रात्रि में तो करे ही ।

एव सिक्खासमावप्ये, गिहवासे वि सुम्बए ।

मुञ्चह छविपम्माभो, गण्ढे अक्खसल्लोगय ॥२४॥

इस प्रकार मृहवास में रहता हुआ ममुप्य भी सुदुर्गों
के पालने से भौवारिक शरीर को छाड़ कर देवसाक में जाता है ।

अह जे संबुद्धे मिक्खु, दुपहमपक्खरे सिया ।

सम्बहुक्खप्पहीमे वा, देवे वावि महिदिहए ॥२५॥

जो सबरवान् साधु है वह ममुप्यायु पूर्ण होने पर या
तो सिद्ध होता है या महाअदिभामी वेव होता है ॥२५॥

उत्तराहं विमोहाहं, जुहमंताणुपुण्यसो ।

समाइण्णाहं जक्खेहिं, आवासाहं जसंसिणो ॥२६॥

देवों के आवास उत्तरोत्तर ऊपर रहे हुए हैं । वे आवास स्वल्प मोहवाले द्युतिमान् यक्षस्वी देवों से युक्त हैं ।

दीहाउपा इद्दिमंता, समिद्धा कामरूविणो ।

अहुणोववणसंकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा ॥२७॥

वे देव, दीर्घ आयु वाले, अद्भिमन्त, तेजस्वी, इच्छा-
नुसार रूप बनाने वाले, नवीन वर्ण के समान और अनेक
सूर्यों की सी दीप्ति वाले होते हैं ॥२७॥

ठाणि ठाणाणि गच्छंति, सिक्खिच्चा संजमं तवं ।

भिक्षवाए वा गिहत्ये वा, जे संति परिणिव्वुढा ॥२८॥

गृहस्थ हो या भिक्षु, जिसने कषायों को शांत कर दिया
है, वह समय और तप का पालन कर देवलोक में जाता है ।

तेसिं सुच्चा संपुज्जाणां, संजयाणां वुसीमओ ।

ए संतसंति भरणांते, सीलवंता बहुस्सुया ॥२९॥

पूजनीय, सयमी और जितेन्द्रिय साधुओं का वर्णन
सुनकर, चारित्रवान् बहुश्रुत महात्मा मृत्यु के समय सतप्त नहीं
होते ॥२९॥

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए ।

विप्पसीइज्ज मेहावी, तहाभूएण अप्पणा ॥३०॥

बुद्धिमान् साधु दाम्नों मरणों को तुलना करके विशेषता वाले (सकाममरण) को ग्रहण करे । क्षमादि स दया, धर्म को बढ़ाकर तत्त्वमूत (धर्ममय) हाकर आत्मा को प्रसन्न करे ।

तस्मो काले अभिप्सेय, सद्दी तास्त्रिसमविष्ट ।

विषण्णश्च लोमहरिसं, मेय देहस्स कस्यए ॥३१॥

भयानकान् साधु जन्म मृत्यु का समय ध्यानाय सब मुहूर्तों के समीप मरण भय का दूर करे और आकांक्षा रहित हो कर पण्डित मरण को चाहे ॥३१॥

अह कालमि संपेक्षे, आधायाय समुत्सयं ।

सकाममरणां मरह, विषमयस्यरं मुष्ठी ॥३२॥ चि बेमि

यस्यु सपय में शरीर का मयत्त खादकर भवत प्रत्येक—
स्यान इमित और पादपापगमन इन तीन मरण में से किसी एक मरण द्वारा सकाममरण मरे ॥३२॥ ऐसा मैं कहता हूँ ।

पंचम अध्यायम समाप्त

खुद्वागनिर्याणिय त्रुट्ठ अज्झयणा

आवतज्जिज्जा पुरिमा, सम्भे ते बुद्धसंमथा ।

सुप्पति बहुसो मूढा, संमारम्मि अपांठए ॥१॥

जितने यज्जानी समुप्य हैं वे सभी दुःख भोगने वाले हैं ।
व मूर्ख जनसंघ संसार में बहुत दसते हैं ॥१॥

समिक्ख पंडिए तम्हा, पासं जाइपहे बहू ।

अप्पणा सचमेसेज्जा, मित्ति भूएहि कप्पए ॥२॥

इसलिए पण्डित जन, मोह जाल को दुर्गति का कारण जान कर स्वयं सत्य की खोज करे और सभी प्राणियों से मैत्री भाव रखे ॥२॥

माया पिया एहुसां भार्या, भज्जा पुत्ता यं ओरसा ।

यालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मणा ॥३॥

वह सोचे कि मेरे किये हुए कर्मों का फल भोगते समय मेरी रक्षा करने में माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू कोई भी समय नहीं है ॥३॥

एयमद्धं सपेदाए, पासे समियदंसणे ।

छिंद गेहिं सिणेहं च, ण कंखे पुण्वसंथवं ॥४॥

सम्यग्दृष्टि पुरुष, उपरोक्त बातें पर स्वयं सोचें और स्नेह वन्धन को तोड़ दे तथा पूर्व परिचय की इच्छा भी नहीं करे ॥४॥

गवासं मणिकुंडलं, पसवो दासपोरुसं ।

सज्जमेयं चइत्ताणां, कामरूवी भविस्ससि ॥५॥

मणि कुण्डलादि आभूषण, दासदासी, गाय घोडादि पशु, इन सब को छोड़कर जो समय पालेंगे, वे देव हों जावेगे ।

थावरं जंगमं चैव, धणां धरणां उवर्खरं ।

पच्चमाणस्स कम्मेहिं, यालं दुक्खाउ मोयणे ॥६॥

दुःख भोगते हुए प्राणी का अन्त अन्त सम्पत्ति इन
आन्य उपकरण आदि कोई भी वस्तु दुःख से मुक्त करने में
समर्थ नहीं है ॥६॥

अन्मृत्यु सख्यो सख्य, दिस्तु पाखे पियायण ।

य इमे पाखिणो पाखे, भयवेराभो उवरण ॥७॥

सभी आत्माओं को सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है ।
अपनी आत्मा सबका प्यारी है । ऐसा जानकर भय और डर
से निवृत्त होना हुआ किसी की हिंसा नहीं करे ॥७॥

आयायां शरणं दिस्तु, आयायन्त्र तथामवि ।

दोगुह्यो अप्यणो पाण, दिएयां मुजिन्त्र मोययां ॥८॥

परिग्रह को नरक का कारण जानकर तुम मात्र भी
नहीं रहते । दुःख सगमे पर आत्मा को अगुह्य करता हुआ
अपने पात्र में गृहस्थ का दिया हुआ आहार करे ॥८॥

इहमेगे उ मयणांति, अप्ययकन्त्राय पावर्ग ।

आपरिय विदिचायां, सख्यदुक्खा विमुच्यद् ॥९॥

कई साग मानते हैं कि पाप का त्याग किये बिना ही
मात्र धामे तत्त्व को जानकर आत्मा सभी दुःखों से छूट जाती
है ॥९॥

मयांता अकरिता य, यधमोस्त्वपदयिण्यो ।

बापाविरियमितयां, ममासासेति अप्यय ॥१०॥

वध और मोक्ष को मानने वाले य बाकी संयम का

आचरण नहीं करते । केवल वचनो से ही आत्मा को आश्वासन देते हैं ॥१०॥

य चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणां ।

विसएणा पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो ॥११॥

अनेक भाषाओ का ज्ञान आत्मा को शरणभूत नहीं होता और मन्त्रादि विद्या भी कैसे बचा सकती हैं ? जो पाप कर्मों में फँसे हुए भी अपने को पंडित मानते हैं, वे अज्ञानी हैं ।

जे केइ सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो ।

मणसा कायवक्केणां, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥१२॥

कई अज्ञानी, शरीर वणों और रूप में मन, वचन और काया से आसक्त हैं, वे सभी दुख भोगने वाले हैं ॥१२॥

आवएणा दीहमद्धाणां, संसारम्मि अणांतए ।

तम्हा सव्वदिसं पस्सं, अप्पमत्तो परिव्वए ॥१३॥

अज्ञानी जीव, इस अनेन्त ससार में अनादि अनन्त जन्म मरण करते हैं । इसलिये सभी दिशाओं को देखता हुआ और असयम से बचता हुआ अप्रमत्त होकर विचरे ॥१३॥

बहिया उड्ढमादाय, णावकंखे कयाइवि ।

पुव्वकम्मक्खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ॥१४॥

ससार से बाहर और सबसे ऊपर-रहे हुए मोक्ष को उद्देश्य बनाकर, विषयादि की इच्छा कभी नहीं करे किन्तु पूर्व कर्मों को क्षय करने के लिए ही इस शरीर को बनाये रखे ।

विविध कम्पुशो हेउ, कालकस्त्री परिभए ।

माय पिहस्स पासस्स, कइ लहुय भवखए ॥१५॥

मिथ्यात्व आदि कर्म के हेतुओं का दूर करने के समय और तप के अवसर को इच्छा रखता हुआ विचरे और गृहस्थों के अपने लिए बनाये हुए भोजन में से आइस पानी लेकर खावे ।

सयिणहिं प ख इविज्जा, लेवनायाय संजए ।

पक्खीपत्त समादाय, गिरवेस्सो परिभए ॥१६॥

साबू छेसमाण भी आहारदि का संन्यस नहीं करे और जैसे पक्षी अपने पंखों के साथ घना जाता है वैसे ही समासक्त हो अपने उपकरण लेकर विचरे ॥१६॥

एससासमिओ लक्खु, गामे अखियओ चरे ।

अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिहणायं पवेसए ॥१७॥

सबमी साबू अप्रमादी होकर एपका समिति का पालन करता हुआ ग्राम में अनियत वृत्ति से गृहस्थों से भिक्षा की अपेक्षा करे ॥१७॥

एव से उदाहु अणुत्तरसाखी, अणुत्तरदंसी, अणुत्तरवाय-
दसवपरे, करहा बापपुत्ते मयर्ब वेसालिए मियाहिए ।
॥१८॥ चि वेमि

इस प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमोत्कृष्ट ज्ञान दर्शन के धारक परिहृत ज्ञातपुत्र वैश्वामित्र भगवान् महावीर ने करमाया है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥१८॥

छठा अध्यायन समाप्त

एलयं सत्तमं अज्भयणां

जहाऽएसं समुद्दिस्स. कोइ पोसेज्ज एलयं ।

ओयणां जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि सयंगणे ॥१॥

जिस प्रकार पाहुने के लिए कोई बकरे को पालते हैं और भात, जौ आदि खिलाकर अपने ही घर में पुष्ट करते हैं ।

तओ से पुठे परिवूढे, जायमेए महोयरे ।

पीणिए विउले देहे, आएसं परिकंखए ॥२॥

वह बकरा खा पीकर पुष्ट, चर्बी युक्त, बड़े पेट और स्थूल देह वाला हो जाता है, तब पालक, पाहुने की प्रतीक्षा करता है ॥२॥

जाव ए एह आएसे, ताव जीवइ से दुही ।

अह पत्तम्मि आएसे, सीसं छेचुणं भुज्जइ ॥३॥

पाहुना नहीं आता तबतक बकरा जीता है और पाहुने के आने पर बकरे का सिर काटकर खाया जाता है, तब वह दुखी होता है ॥३॥

जहा से खलु ओरब्भे, आएसए समीहिए ।

एवं बाले अहम्मिडे, ईहई खरयाउयं ॥४॥

जिस प्रकार वह बकरा पाहुने के लिये ही निश्चित है, उसी प्रकार अर्घमिष्ट, अज्ञानी जीव की नरकायुही निश्चित है ।

हिंस बाले सुमात्रार्थ, अद्वाष्टमि विलोषण ।

अपणदचहरे तेस्ते, नार्ह कण्ठ्य हरे सदे ॥५॥

इत्थीविसयगिद्धे य, महारंमपरिग्गहे ।

मुजमाणे सुर मसं, परिवूढे परंदमे ॥६॥

अयकम्परमोर्ह य, तुदिले वियल्लोहिए ।

आउय खरए कस्से, अहाएसं व एल्लए ॥७॥

धन्यानी हिंसक मुपावारी भूटेरे बिना ही हुई वस्तु लेने बासे और कपटो बुष्ट धम्यबसाय बासे बुरे आचरण बासे स्त्री और विषयों में घातक महारम्भो महापरिग्रही महिरा पोन बासे मोक्ष भक्तक पुष्ट शरीर बासे वृद्धों का वसन करने बासे बड़ी हुई लोंव और प्रभुर रक्त बासे उसी प्रकार नरकायु चाहते हैं जिस प्रकार बकरे का स्वामी पाहुना को चाहता है ॥३-७॥

आसयां सपयां आयां, विच कामे य भुजिया ।

दुस्ताइह पयां हिबा, बहु संचिखिया रय ॥८॥

तथो कम्मगुरु ज्ज, पञ्चुपय्यपराधसे ।

अएव्व आगपाएसे, मरयांत्तम्मि सोयइ ॥९॥

वर्तमान काल का ही विचार करने वाला वह भारी-कमी प्राणी आसन शय्या मसन बाहुम धन और काम भोगों को तथा पुन से सचय किये हुए धन का छाड़कर मरते

समय आता है, तब कर्म मल के भार से बहुत ही दबा हुआ मनुष्य, उस बकरे की तरह शोक करता है ॥८-६॥

तश्चो आउपरिक्खीणे, चुयादेह विहिंसगा ।

आसुरियं दिसं वाला, गच्छन्ति अवसा तमं ॥१०॥

इसके बाद आयु क्षय होने से वह हिंसक अज्ञानी जीव, शरीर छोड़कर कर्म के बल होकर नरक गति में जाता है ॥१०॥

जहा कागिणीए हेउं, सहस्सं हारए णरो ।

अपत्थं अंबगं भोक्खा, राया रजं तु हारए ॥११॥

जिम प्रकार कोई मनुष्य, एक कागिणी के लिए हजार मुद्राएँ खो देता है और कोई राजा अपत्य आम खा कर (मृत्यु पा जाने से) राज्य खो देता है ॥११॥

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए ।

सहस्स गुणिया भुज्जो, आउं कामा य दिन्विता ॥१२॥

उसी प्रकार देवों के काम भोगों से मनुष्यों के काम भोग तुच्छ हैं । देवों के काम भोग और आयु, मनुष्यों से हजारों गुने अधिक हैं ॥१२॥

अणेग वासाणउया, जा सा पणवओ ठिई ।

जाइं जीयंति दुम्मेहा, ऊणे वाससयाउए ॥१३॥

प्रज्ञावान् को देव गति में अनेको नयुत • वर्ष की स्थिति

● चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वार्ग, चौरासी लाख पूर्वार्ग का एक पूर्व, चौरासी लाख पूर्व का एक नयुतार्ग और चौरासी लाख नयुतार्ग का एक नयुत होता है ।

होती है। उस स्थिति को दुःखि मनुष्य तो बर्षा की छाटी
मायु में ही हार जाते हैं ॥१३॥

महा य तियिष्य बाधिया, मूलं घेत्तुष सिग्गया ।

एगोऽत्थ सइह छाह, एगो मूलेंष आगम्भो ॥१४॥

जिस प्रकार तीन व्यापारी मूल पूजी लेकर व्यापार
करने निकसे। उनमें से एक ने लाभ प्राप्त किया और एक मूल
पूजी लेकर वापिस आया ॥१४॥

एगो मूलं वि हारिचा, आगम्भो उत्थ बाधिम्भो ।

बमहारे ठवमा एसा, एव भम्मे बियाशह ॥१५॥

उनमें से तीसरा मनुष्य मूल भग भो लो आया। यह
व्यावहारिक उदाहरण है इसे धर्म में भी समझो ॥१५॥

माणुसत्त मवे मूल, लामो देवगई मवे ।

मूलं देवगई जीवापा, शरगतिरिक्खत्तया पुब ॥१६॥

मनुष्य मूल मूल पूजी के समान है। देवयति लाभ के
समान है। मूल धर्मात् मनुष्य भग को लो लेने से जोब को
निश्चय ही तरक और तिर्यक-यति भिन्नती है ॥१६॥

“दुहम्भो गई बाहत्त, आगई वइप्पलिया ।

देवत्त माणुसत्त च, जं चिए लोत्तया सहे ॥१७॥

अज्ञानी को दो प्रकार की दुर्गति प्राप्त होती है जो
बल और बन्धन की मूल है। क्योंकि मूल एवं लोभुपि देव
और मनुष्यत्व को हार जाता है ॥१७॥

तथो जिए सई होइ, दुविहं दुगइं गए ।

दुल्लहा तस्त उम्मग्गा, अद्दाए सुइरादवि ॥१८॥

वह होरा हुआ जीव, नरक और तिर्यञ्च गति में बहुत लम्बे काल तक दुख पाता रहता है । वहा से निकलना अति दुर्लभ है ॥१८॥

एवं जियं सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं ।

मूलियं ते पविस्संति, माणुस्सं जोणिमिति जे ॥१९॥

इस प्रकार हारे हुए अज्ञानों की जीते हुए पण्डित पुरुष से तुलना करके जो जीव, मनुष्य योनि प्राप्त करते है, वे मूल पूजी पाते है ॥१९॥

वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे एरा गिहिसुच्चया ।

उवेति माणुस्सं जोणि, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥२०॥

जो मनुष्य, गृहस्थ होते हुए भी विविध प्रकार की शिक्षाओं द्वारा सुव्रत (प्रकृतिभद्रतादि गुण) वाले हैं, वे मनुष्य योनि प्राप्त करते है, क्योंकि प्राणिगो के कर्म ही सच्चे है ।

जेसिं तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया ।

सीलवेता सविसेसा, अदीणा जंति देवयं ॥२१॥

जो विस्तृत शिक्षा, विरति और उत्तरोत्तर गुणों वाले है, वे पुरुष, मूल को बढाकर और दीनता रहित होकर देवगति प्राप्त करते है ॥२१॥

एवमदीक्ष्वर मिस्तु, अगारिं च वियापिया ।

कश्यणु जिबमेतिक्त्तं, जिबमाणो य संविदे ॥२२॥

इस प्रकार देवगति रूप काम का प्राप्त करने वाला योगी सहित साधु और गृहस्थ को जानता हुआ भी किसी पुरुष किस प्रकार देवगति के काम का हार जाता है यह बात यह हारता हुआ भी नहीं जानता है ॥२२॥

अहा कुसमो, उदगं, समुदेख समं, मिथे ।

एव माणुस्सगा क्रमा, देवकामाश्च अतिथे ॥२३॥

कुशाग्र पर रही हुई पानी की बूझ समुद्र के सामने नगण्य है । तथा प्रकार देवों के काम मोक्षों के प्राप्ति मनुष्यों के काम योग कुछ है ॥२३॥

इसमामित्ता इमे कामा, सणियरुद्धम्मि आठए ।

कस्स हेठ पूरा आठ, ओगस्सेम च संविदे ॥२४॥

मनुष्याय भी संश्लिष्ट और विघ्नों से पूर्ण है और काम भोग भी काम पर रहे हुए जब बिन्दु के समान है । फिर किस लिए वह भी योग सेम (सामन्व) को नहीं जानता ॥२४॥

इह कामाखियहस्स, अत्तहे अव्वरज्जह ।

सोक्या खेपाठय ममां, अ सुज्जो परिमस्सह ॥२५॥

इस मोक्ष में अत्यादि विषय से निवृत्त नहीं होने वालों का धारम प्रयासन मष्ट हो जाता है जिससे न्याययुक्त मोक्ष मार्ग का सुमकर और पाकर भी पुन अष्ट हो जाता है ॥२५॥

इह कामणियदुस्स, अत्तद्वे णावरज्जइ ।

पूइदेहणिरोहेणां, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥२६॥

इसी भव में काम भोगों से निवृत्त होने वाले का आत्मार्थ नष्ट नहीं होता । वह अपवित्र देह को छोड़कर देव होता है—ऐसा मैंने सुना है ॥२६॥

इह्दी जुई जसो वण्णो, आउं सुहमणुत्तरं ।

भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जइ ॥२७॥

देव भव के बाद वह आत्मा, मनुष्य भव में—जहाँ सर्वोत्तम ऋद्धि, बुद्धि, यश, वर्ण, आयु और सुख हो वहाँ जन्म लेता है ।

वालस्म पस्स बालत्तं, अहम्मं पटिवज्जिया ।

चिच्चा धम्मं अहम्मिद्वे, णए उववज्जइ ॥२८॥

अज्ञानों की मूर्खता तो देखो कि वह अधर्म को स्वीकार करके धर्म का त्याग करता है । इससे वह अधर्म का आचरण करके नरक में उत्पन्न होता है ।

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सज्जधम्माणुवत्तिणो ।

चिच्चा अहम्मं धम्मिद्वे, देवेसु उववज्जइ ॥२९॥

क्षमादि दस प्रकार के धर्मों के पालन करने वाले की धीरता देखो कि वह अधर्म का त्याग कर धर्मात्म का आचरण करता है और देवों में उत्पन्न होता है ॥२९॥

तुल्यभाष्य बालभावे, अशक्तं चैव पंडित ।

चइत्थं बालभावे, अशक्तं चैव पंडित ॥१०॥ किं वेति

पण्डित मुनि, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की तुलना करके
मिथ्यात्व का त्याग करे और सम्यक् चारित्र्य का सेवन करे-
एमा मे कहता हू ॥१॥

सातवीं अध्याय समाप्त

काविलीयं श्रद्धम अज्मयणा

अपुवे आसासपम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए ।

किं भाम होज्ज ते कम्मय, जेसाह दुमाई अ गण्ठेज्जा ॥१॥

हे योगबन्धु! इस संसार अस्थिर अंशारबन्ध और प्रचुर
दुःख आळे संसार में ऐसा कौनसा कर्म है कि जिससे मैं पुनर्जि
में न जा सकूँ ॥१॥

विजहित्थ पुप्फसंजोगं, अ सिखेह कहिंणि कुम्बिज्जा ।

असिखेह सिखेहकरेहिं, दोसपप्पोसेहिं सुचए मिक्ख ॥२॥

पुष्प संयोग को त्याग कर किसी से भी स्नेह नहीं करे।
स्नेह करने वालों में भी स्नेह नहीं रखता हुआ साधु, शोकों से
मुक्त हो जाता है ॥२॥

तो खाण्णदंसणसमंगो, दिपणिस्ससाए सव्वजीवाणां ।

तस्मिं विमोक्खबद्धाए, मासह सुखिज्जो विगयमोहो ॥३॥

फिर पूर्ण ज्ञान और दर्शन से युक्त बीतरामी महामुनि

कपिलजी, सभी जीवों के मोक्ष के लिए—उन्हे कर्मों से छुड़ाने के लिये यो कहने लगे ॥३॥

सर्वं गथं कलहं च, विष्यजहे तदाविहं मिक्षू ।

सर्वेषु कामजाएसु, पासमाणो ण लिप्पइ ताई ॥४॥

साधु, कर्म बन्ध कराने वाले सभी प्रकार के परिग्रह और बलेश को छोड़ दे । जीवों के रक्षक मुनि, सभी विषयों को बन्धन कारक देखता हुआ उनमें लिप्त नहीं होता है ॥४॥

भोगाभिसदोसविसण्णे, हियणिसैयसबुद्धिवोच्चत्थे ।

बाले य मंदिए मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥५॥

भोग रूपी मांस के दोषों से लिप्त हुआ और हितकारी ऐसे मोक्ष के विपरीत बुद्धिवाले, आलसी, मूर्ख और अज्ञानी जीव, श्लेष्म में लिपटी हुई मक्खी की तरह ससार में फसते हैं ॥५॥

दुप्परिच्चया इमे कामा, णो सुज्झो अधीरपुरिसेहिं ।

अह सन्ति सुव्वया साहु, जे तरंति अतरं वणिया वं ॥६॥

कायर पुरुषों से इन काम भोगों का त्याग करना महा कठिन है, किन्तु जो सुव्रती साधु है, वे इन काम भोगों से पृथक् होकर ध्यापारी के जहाज की तरह तिरजाते हैं ॥६॥

समणा मु एगे वयमाणा, पाखेवहं मिया अयाणांता ।

मंदा गिरयं गच्छेति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं ॥७॥

“हम साधु हैं” इस प्रकार कहते हुए और प्राणिवध को नहीं जानते हुए व मृग जैसे मन्दबुद्धि वाले, कई अज्ञानी जीव, अपनी पाप दृष्टि से नरक में जाते हैं ॥७॥

य इ पाणवह अणुजाये, सुवेन्द्र। कयाह सम्म दुस्खायां ।
एवमारिण्हि अक्खाय, जेहि इमो साहुयम्मो पयसो ॥८॥

वीर्यसूरों में कहा है कि जो प्राणिवर्ग का अनुमोदन
भी करता है तो वह कभी दुस्खों से मुक्त नहीं हो सकता ।
उन्होंने यही साधु वचन कहा है ॥८॥

पाण्ये य आण्वाण्वा, से समिण्णि पुच्चहि ताहि ।
तम्मो से पावय कम्म, सिज्जाह उदगं बं यत्तामो ॥९॥

जो प्राणियों की हिंसा नहीं करता वह स्वकाय का
रक्षक और पांच समिति का धारक कहा जाता है । उससे पाप
कर्म उसी प्रकार निकस जाते हैं जिस प्रकार ऊँची जगह पर
गिरा हुआ पानी निकस जाता है ॥९॥

अमस्मिण्हि - भूण्हि, तस्यमेहि यावरेहि - च ।
जो तिस्रों में रह, मशसा वयसा कायसा पेप ॥१०॥

जगत् में रहे हुए वस और स्थावर जीवों की मन
बचन और काया से हिंसा का धारम्भ नहीं करे ॥१०॥

सुद्धेसणाप्पो अण्णा यां, तस्य ठ्वेल्ल मिक्खु अप्पायां ।
जायाण पासमेसिज्जा, रसगिद्धेण सिया मिक्खाए ॥११॥

साधु शुद्ध एवणा को जानकर उसमें अपनी आत्मा को
स्थापन करे और रसों में मूढ न होकर, संयम निर्बाह के लिए
मूढ आहार की अभ्यवसाह करे ॥११॥

पंताणि चैव सेवेज्जा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं ।

अदु बुक्कसं पुत्तागं वा, ज्वणट्ठाए णिसेवए मंथुं ॥१२॥

सयम पालनार्थं नीरस और ठण्डा आहार, पुराने उड़द के बाकले, कोरमा, नीरस चने और बोर आदि का चूर्ण मिले, तो भी सेवन करे ॥१२॥

जे लक्खणां च सुविणां, अंगविज्जं च जे पउंजंति ।

ए हू ते खमणा बुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥१३॥

जो साधु, लक्षण विद्या, स्वप्न विद्या और भग विद्या का प्रयोग करते हैं, वे निश्चय ही साधु नहीं कहे जाते । ऐसा आचार्यों ने कहा है ॥१३॥

इह जीवियं अणियमेत्तां, पञ्चमहां समोहिजोएहिं ।

ते काममोगरसगिद्धा, उववज्जंति आसुरे काए ॥१४॥

जो जीवन को अनियन्त्रित रखकर समोधि और योग से अष्ट हो गये हैं, वे काम भोग और रस में आसक्त होकर भसुरकाय में उत्पन्न होते हैं ॥१४॥

उत्तो वि य उवट्ठित्तां, संसारं बहुं अणुपरियंठंति ।

बहुकम्मलेवल्लित्तायां, बोही होई सुदुल्लहा तेसिं ॥१५॥

फिर, भसुरकाय से निकल कर संसार में बहुत ही परिभ्रमण करते हैं । कर्म लेप से अतिशय लिप्त हुए उन प्राणियों को सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति बहुत ही दुर्लभ है ॥१५॥

कसिपां पि सो इम सोय, पडिपुण्णं दनेज्ज एगस्से ।
तेषावि से षं संतुस्से, इह दुप्परए इमे-आया ॥१६॥

यन धान्यादि से मरा हुआ यह सारा सोक भी यदि कोई एक ही व्यक्ति को दे दे तो उससे भी संतोष नहीं होता। इस प्रकार आत्मा का वृत्त हमारा कठिन है ॥१६॥

अहा साहो उहा सोहो, साहा सोहो पवद्धइ ।
दो मासकय कज्ज, कोडीए वि।या सिट्ठिय ॥१७॥

ज्यों ज्यों नाम होता है त्यों त्यों नाम बढ़ता है। साम से सोम की वृद्धि होती है। दो मासा सोमे से होने वाला कार्य करोड़ मोहरों से भी पूरा नहीं। हुआ ॥१७॥

ओ रक्खसीसु गिन्नेज्जा, गंदवप्पसु जेगचिपासु ।
माओ पुरिसं पत्तोमिया, सेट्ठसि अहा व दासेहिं ॥१८॥

साम पीनस्तन वाली चंचल चित्त राक्षसी रूप स्त्रियों में मूर्च्छित नहीं होते। वे पुरुषों का लुभाकर उनके साथ शरद की तरह व्यवहार करती हुई कीड़ा करती हैं ॥१८॥

आरीसु, ओपगिज्जेज्जा, इत्थी विप्पज्ज अणगारे ।
अम्मं च पेसुत्तं आवा, तस्य ठवेज्ज मिक्खु अप्पायां ॥१९॥

यनगार मिछु स्त्रियों में आसक्त नहीं होने तथा स्त्री संग का त्याग कर अर्म को ही हितकारी जाने और उसीमें आत्मा को स्थापन करे ॥१९॥

इह एम धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्ध पण्णेणं ।
तरिहिति जे उ काहिति, तेहि आराहिया दुवे लोग । त्ति वेमि ।

इस प्रकार विदुद्ध प्रज्ञावाले कपिल मुनि ने यह धर्म कहा है । जो इस धर्म का पालन करेंगे, वे ससार से तिर जायगे । इस धर्म की आराधना करने वालों ने ही दोनों लोकों की आराधना की है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥२०॥

आठवां अध्यायन समाप्त

नमिपवज्जा नवमं अज्झयणं

चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुमम्मि लोगम्मि ।
उवसन्तमोहणिज्जो, सरइ योराणियं जाइं ॥१॥

नमिराज का जीव, देव लोक से चव कर मनुष्य लोक में उत्पन्न हुआ और मोहनीय कर्म के उपशान्त होने से जाति-स्मरण ज्ञान द्वारा पूर्व जन्म को साद करने लगा ॥१॥

जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।

पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अमिणिक्खमई शमी राया ॥२॥

भगवान् नमिराज ने पूर्व भव के स्मरण से स्वयं बोध प्राप्त किया और पुत्र को राज्य परस्थापित कर सर्व श्रेष्ठ धर्म का पालन करने के लिए गृहस्थाश्रम से निकले ॥२॥

सो देवसोगमरिसे, अतेउरपरगओ बरे मोए ।

भुमिचु धमी राया, बुद्धो भोगे परिष्वयइ ॥३॥

नमिराज ने थोड़ा देसपुर में रहकर देवसोक के सयान
उत्तम भोगों का मार्ग खीर बांध प्राप्त करके भोगों को छोड़
दिया ॥३॥

मिहिल सपूरबगबय, बलमोरोहं च परियणं सम्ब ।

षिष्वा अमिषिस्वतो, एगंतमहिहिओ भयब ॥४॥

नमरों पीर जन-पदों के साथ मिहिला सगरी सेना
रामिया और दास दासी इन सभी का त्याग कर मयबान्
नमिराज ने दीक्षा धारण की और एकान्त (माँ) का भाग्य
भिया ॥४॥

कोलाहलगभूय, भासी मिहिलाण पन्वयतम्मि ।

वप्रा रापरिसिम्मि, अमिम्मि अमिषिस्वमठम्मि ॥५॥

राजपि नमिराज के गृहत्याग कर दीक्षित होने पर
मिहिला नगरी में शर्वत्र कोसाहुल्य हुल्ले लगा ॥५॥

अम्मुट्टिय रापरिसिं, पम्बन्नाठासमुत्तमं ।

सकक्के माहयस्वेणां, इम वपयमम्बवी ॥६॥

सर्वोत्तम दीक्षा त्याग के लिए उद्यत हुए राजपि को
राष्ट्रेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में दाकर इस प्रकार कहा - ॥६॥

किएणु भो अज्ज मिडिलाए, कोलाहलगसंकुला ।

सुज्वंति दारुणा सदा. पाप्माएसु गिहंसु य ॥७॥

हे नमिराज ! आज मिथिला के महलों और घरों में
सँ कोलाहल से भरे हुए ये दारुण शब्द क्यों सुनाई देते हैं?

एयमद्वं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ णमी रायरिसी, देविदं इणमन्ववी ॥८॥

इन्द्र का प्रश्न सुनकर उसके हेतु और कारण से प्रेरित
हुए नमिराजवि, देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे ॥८॥

मिडिलाए चेइएँ वंच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।

पत्तपुष्पफलोवेए, बहूयां बहुगुणे सया ॥९॥

मिथिला नगरी के उद्यान में पत्र, पुष्प और फलों से
युक्त शीतल छाया वाला, बहुत से प्राणियों को सदा लाभ
पहुँचाने वाला और मन को प्रसन्न करने वाला एक वृक्ष था ।

वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।

दुहिया असरणा अत्ता, एएकंदंति भो ! स्वगा ॥१०॥

वह मनोरम वृक्ष अचानक वायु से उखड़ गया ।
इसलिये वे पक्षी आदि दुखी, अशरण और पीड़ित होकर
आक्रन्दन करने लगे ॥१०॥

एयमद्वं णिसामित्ता, हेउकारण चोइओ ।

तओ णमि रायरिसि, देविदो इणमन्ववी ॥११॥

नमिराजपि के शर्प को सुम कर हेतु शीर कारण से
प्रेरित हुआ इन्द्र नमिराजपि से यों कहने लगा ॥११॥

एस आगी य बाढ य, एय उज्ज्वल मन्दिर ।
मयव अतेवरं तेषां, कीत्त यां आवपेकसह ॥१२॥

हे भगवन् । बाधु से प्रेरित हुई यह अग्नि कापके
महत्ता का जमा रही है । बाधु अपने अन्तपुर की आर क्यों नहीं
देखते ? ॥१२॥

एयमहु खिसामिवा, हेउफ़रयथोद्भो ।
तमो शमी रायरिसी, देविंद इत्तमम्बयी ॥१३॥

साधा च वत् ॥१३॥

सुहं बसामो जीशामो, मेसि ओ अस्थि किंथयां ।
मिदिताए उज्ज्वलाखीए, अ मे उज्ज्वल किंथयां ॥१४॥

मैं कुछ पूर्वक रहता हूँ और कुछ से ही थोड़ा हूँ
मिथिता में मेरा कुछ भी नहीं है । इसलिए उसके जलने पर
मेरा कुछ भी नहीं जलता ॥१४॥

वत्तपुचकत्तवत्त, विम्बावारस्स मिक्खुयो ।
पिय य विज्जई किंथि, अप्पिय पि य विज्जई ॥१५॥

पुत्र स्त्रियाँ और सभी प्रकार के भौतिक व्यापार हैं
निवृत्त होने वाले साधु के लिए न तो कोई प्रिय है और न
कोई अप्रिय ही है ॥१५॥

बहु खु मुणिणो भदं, अणुगारस्स मिक्खुणो ।

सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ ॥१६॥

संमस्त बन्धनो से मुक्त होकर एकत्व भाव में रहने वाले अनगार मुनि को निश्चय ही बहुत सुख है ॥१६॥

एयमद्वं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमव्ववी ॥१७॥

। अर्थ-गाथा ११ के अनुसार ॥१७॥

‘पागारं’ कारइत्ताणां, गोपुरद्वालगाणि य ।

उस्सल्लग सयग्धीओ, तओ गच्छसि खत्तिया ॥१८॥

हे क्षत्रिय ! किले, दरवाजे, मोर्चे, खाई, शतघ्नी (तोप) आदि रक्षा के साधन बनवा कर, उसके बाद दीक्षित होवे ।

एयमद्वं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ णमी रायरिसिं, देविंदं इणमव्ववी ॥१९॥

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ॥१९॥

सदं णगरं किच्चां, तवसंवरमंगलं ।

खंति णिउणपागारं तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥२०॥

हे विप्र ! मैंने अपने लिए श्रद्धा रूपी नगर बनाया है उस नगर की रक्षा के लिए क्षमा रूपी कोट का निर्माण किया, (उपशमादि रूपी कोट के द्वार बनायें, जैन द्वारों के लिए) तप और सवर रूपी दृढ़ अंगला लगाई और त्रिगुप्ति रूप खाई

मुख और हाँपें तय्यार करके ऐसा प्रबन्ध कर लिया है कि जिससे दुर्बल ऐसे कर्म धनु का कुछ भी बल नहीं बल सके ।

धनु पराक्रम किञ्चा, जीव च ईरिय सया ।

धिह च केयया किञ्चा, सवेय पस्तिमयए ॥२१॥

मैंने पराक्रम रूपी धनुष की ईर्ष्यामिति रूपी शरीर बनाकर धैर्यरूपी केतन से शर के द्वारा उसे बाँध दिया है ।

तद्वारापशुतेया, मित्रया क्रमकशुय ।

शुयी विगयसगामो, मदाओ परिमुञ्चए ॥२२॥

जब धनुष पर तप रूपी बान बड़ा कर, कर्म का कबज का भेदन करता हूँ । इस प्रकार के संघाम से निवृत्त होकर मुनि, भव भ्रमण से मुक्त हो जाते हैं ॥२२॥

एयमहुं विसामित्ता, हेठकारवचोइओ ।

तओ वामि रापरिसिं, देविंदो इसमम्बवी ॥२३॥

धर्म-वाचा ११ के अनुसार ॥२३॥

पासाए करइचाया, बद्धमासगिहाणि य ।

वासगपोइयाओ य, तओ गच्छसि सत्तिया ॥२४॥

हे सजिये ! महस और धनेक प्रकार के बर तथा स्त्रीका स्वर्गों का निर्माण करता कर फिर-साधु बनो ॥२४॥

एयमहुं विसामित्ता, हेठकारवचोइओ ।

तओ वामी रापरिसिं, देविंदो इसमम्बवी ॥२५॥

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ॥२५॥

संसयं खलु सो कुण्ड, जो भग्ने कुण्ड घरं ।

जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुब्बेज्ज सासयं ॥२६॥

जिसके हृदय में मशय है, वही मार्ग में घर बनाता है, किन्तु बुद्धिमान् तो वही है, जो इच्छित स्थान पर पहुँच कर शाश्वत घर बनाता है ॥२६॥

एयमद्वं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ णमिं रायरिसीं, देविंदो इणमब्बवी ॥२७॥

अर्थ-गाथा ११ के अनुसार ॥२७॥

आमोसे लोमहारे य, गंठिमेए य तक्करे ।

णगरस्स खेमं काऊणां, तओ गच्छसि खत्तिया ॥२८॥

हे क्षत्रिय ! डाकुओं जान से मार कर लूटने वालों, गाँठकट्टों और चोरों को वश में करके और नगर में शान्ति स्थापित करके फिर त्यागी बने ॥२८॥

एयमद्वं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥२९॥

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ॥२९॥

असदं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंदो पउंजइ ।

अकारिणोत्थं वज्झंति, मुच्चइ कारओ जणो ॥३०॥

अज्ञान के कारण मनुष्यों से अनेक बार मिथ्यादण्ड

दिया जाता है । जिसमें निरपराधी वण्डित हो जाते हैं और अपराधी छूट जाते हैं ॥३०॥

एयमहु विप्रामिता, इतकारणचोइओ ।
तओ गमि रासरिसि, देविदो इयमण्वी ॥३१॥

अर्थ-११वीं गाथा के अनुसार ॥३१॥

जै कह पतियवा तुम्ह, साणमति खराहिया ।
वसे ते ठावइया यां, तओ गण्वसि सचिया ॥३२॥

हे क्षत्रिय ! जो राजागण तुम्हारे सामन नहीं झुकते हैं पहले उन्हें बख में करा उसके बाद वांछित हाम्रो ॥३२॥

एयमहु विप्रामिता, देउकारणचोइओ ।
तओ गमी रापरिसी, देविद इयमण्वी ॥३३॥

अर्थ-गाथा आठ के अनुसार ॥३३॥

जो सहस्स सहस्रायां, संगामे दुमए जिसे ।
एगं जिखेन्ज अप्पायां, एस स परमो जओ ॥३४॥

एक पुरुष दुमम सग्राम में वय साब सुमहों पर विजय प्राप्त करता है और एक महात्मा अपनी धात्मा का ही जीतता है । इन दोनों में धातम विजयी हो अच्छ है ॥३४॥

अप्पाबमेव सुन्हाहि, किं ते जुम्हए बन्हाओ ।
अप्पाबमेवमप्पास, जिणिचा सुहमेहए ॥३५॥

आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये । बाहर के

से क्या लाभ है ? आत्मा से ही आत्मा को जीतने में सच्चा सुख मिलता है ॥३५॥

पंचिदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोभं च ।

दुर्जयं चेव अप्पाणं, सब्बमप्पे जिए जियं ॥३६॥

पाँच इन्द्रिया, क्रोध, मान, माया, लोभ और दुर्जय आत्मा, ये सब एक आत्मा के जीतने से स्वतः जीत लिये जाते हैं ॥३६॥

एयमद्धं णिसामित्ता, हेउकारणचोद्धओ ।

तओ णमिं रायरिसि, देविंदो इणमब्बवी ॥३७॥

अर्थ-गाथा ११ के अनुसार ॥३७॥

जइत्ता विउल्ले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे ।

दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गन्धसि खत्तिया ॥३८॥

हे राजन् ! दड़े-बड़े महायज्ञ करवा कर, अमण ब्राह्मणों को भोजन करा कर तथा दान, भोग और यज्ञ करके फिर निवृत्त होना ॥ ३८॥

एयमद्धं णिसामित्ता, हेउकारणचोद्धओ ।

तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३९॥

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ॥३९॥

जो सहस्सं सहस्साणां, मासे मासे गवं दए ।

तस्सावि संजमो सेओ, अदितस्स वि किंचणां ॥४०॥

जा मनुष्य प्रति मास दसमास गावों का दान करता
ह उसकी अपेक्षा कुछ भी दान नहीं करने वाले मुनि का
सयम अधिक श्रेष्ठ है ॥४०॥

एयमहु पिसामिषा, इठकारश्चोइमो ।
तमो खमि रापरिसि, देविंदो इस्मग्गवी ॥४१॥

अर्थ—माषा ११ के अनुसार ॥४१॥

घोरामम चर्यायां, अययां पत्येसि आसमे ।
इहेव पोमहरमो, मवाहि मणुयाहिवा ॥४२॥

हे नराधिपति ! घाप चार गृहस्थाश्रम का त्याग करके
मन्याम आश्रम की इच्छा करते हैं किन्तु घापका सञ्चार म
ही रहकर उपायव में रत रहना चाहिये ॥४२॥

एयमहु पिसामिषा, इठकारश्चोइमो ।
तमो खमी रापरिसी, देविंदो इस्मग्गवी ॥४३॥

अर्थ—माषा ८ के अनुसार ॥४३॥

मास मासे उ ओ बालो, इयमोपां तु मुअए ।
अ सो सुअक्खायधम्मस्स, चरुं अग्गइ सोत्तसि ॥४४॥

जा अज्ञानी मास मासअमण का तप करते हैं और
कुछअ परिमाण आहार से पारणा करते हैं वे तीर्थङ्कर प्रवृ-
त्ति अर्म की सोसहृषी कला के बराबर भी नहीं हैं ॥४४॥

एयमद्वं णिमामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ णमि रायरिसि, देविंदो इणमव्ववी ॥१७॥

अर्थ-गाथा ११ के अनुसार ॥४५॥

हिरणं सुवणं मणिमुत्तं, कंसं दुसं च वाहणं ।

कोसं च वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥४६॥

हे क्षत्रिय । सोना, चाँदी, मणि, मोती कासी के वतन वस्त्र, वाहन तथा भण्डार की वृद्धि करके बाद में समार छोड़िये ॥४६॥

एयमद्वं णिमामित्ता, हेउकारणचोइओ ।

तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमव्ववी ॥१८॥

अर्थ-गाथा ५ के अनुसार ॥४७॥

सुवणं रूपस्स उ पव्वया भवे,

सिया हु कैलाससमा असंखया ।

णरस्स लुद्धस्स ण तेहि किंचि,

इच्छा हु आगाससमा अणसिया ॥४८॥

यदि कैलाश पर्वत के समान सोने चाँदी के असंख्य पर्वत हों जायें तो भी मनुष्य को संतोष नहीं होता । क्योंकि इच्छा तो आकाश की तरह अनन्त है ॥४८॥

पुहवी साली, जवा चेव, हिरणं पसुमिस्सह ।

पडिपुणं शालमेगस्स, इह विज्जा तवं चरे ॥४९॥

जावस जी स्वर्ण तथा पद्मों से परिपूर्ण पुष्पो किसी एक मनुष्य को द दो जाय ता भी 'उसको' इच्छा पूर्ण होता कठिन है । यह जानकर बुद्धिमान् पुरुष तप का आवरण करे।

एयमहु खिसामिच्छा, हेतुकारणचोद्भो ।
तभो धर्मि रापरिसि, उर्विदो इयमम्बवी ॥५०॥

अर्थ—माया ११ के अनुसार ॥५०॥

अच्छेरागमम्बुदय, भोग स्वयसि परिधवा ।
असते कामे पत्येसि, सकप्येय विहम्मसि ॥५१॥

हे राजन् ! आप्रचय है कि आप प्राप्त मायो को चाह रहे हैं और अप्राप्त काम भोगों की इच्छा करते हैं । किन्तु इससे आपको संकल्प विकल्प होया और परवास्ताप करना पड़ेगा ॥५१॥

एयमहु खिसामिच्छा, हेतुकारणचोद्भो ।
तभो असी रापरिसी, देविद इयमम्बवी ॥५२॥

अर्थ—माया ८ के अनुसार ॥५२॥

सह कामा विसं कामा, कामा असीविसोवमा ।
कामे पत्यमाया, अकामा जति दुग्गइ ॥५३॥

काम भोग शून्य रूप है विपर्यय है और आलोचि सर्प के समान है । काम माग की अभिलाषा करने वाले काम भागों का सेवन नहीं करते हुए भी दुर्गति में जाते हैं ॥५३॥

अहे वयइ कोहेएां, माणेएां अहमा गई ।
माया गइपडिग्याओ, लोहाओ दुहओ भयं ॥५४॥

क्रोध करने से जीव नरक में जाता है, मान से नीच गति होती है, माया से शुभगति का नाश होता है और लोभ से इस लोक और परलोक में भय होता है ॥५४॥

अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं ।
घंदइ अमित्थुणं तो, इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं ॥५५॥

देवेन्द्र ने ब्राह्मण का रूप त्याग दिया और वंशज से असली रूप बनाकर ओ नमिराज को मधुर वचनों से इस प्रकार वन्दना और स्तुति करने लगा ॥५५॥

अहो ते णिज्जिओ कोहो, अहो माणो पराइओ ।
अहो ते णिरक्किया माया, अहो लोहो वसीकओ ॥५६॥

हे नमिराज ! आश्चर्य है कि आपने क्रोध को जीत लिया, आश्चर्य है कि आपने मान को डरा दिया, माया को दूर कर दी और लोभ को बश में कर लिया ॥५६॥

अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं ।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥५७॥

मुनिवर ! आपकी सरलता श्रेष्ठ है, आपकी निरभिमानता श्रेष्ठ है, आपकी क्षमा और निर्लोभता उत्तम एवं आश्चर्यकारी है ॥५७॥

इहसि उत्तमो मते, पञ्चा होहिसि उत्तमो ।

सोऽगुप्तपुत्रम ठाण, सिद्धि गच्छसि खीरघ्नो ॥५८॥

हे भगवान् ! आप यहाँ भी उत्तम हे और परमात्म में
मो उत्तम होंगे । आप कर्म रज रहित होकर भाकात्म मित्र
स्वाम का प्राप्त करेंगे ॥५८॥

एव अमितपुत्रतो, रायसिंति उत्तमाए सुद्धाए ।

पायाहिण करेठो, पुखो पुणो बद्ध सक्को ॥५९॥

इस प्रकार उत्तम यज्ञा भक्ति पूर्वक राजादि नमिराज
की स्तुति और प्रशंसा करता हुआ इन्द्र बार-बार बन्धना
नमस्कार करने लगा ॥५९॥

तो बदिठ्य पाए, अक्ककुसलसक्खये सुणिबग्गस ।

आगासेणुप्पद्मो, छल्लियपससकुललठिरीही ॥६०॥

इसके बाद सुन्दर और अप्स कुण्डल तथा मुकुट धारण
करने वाला इन्द्र भुनीन्द्र नमिराज के चक्र एवं अंकुश बिज
बास चालों में बन्धना करके आकाश-मार्ग से देवसोक में चला
गया ॥६०॥

बमी एमेइ अप्पात्त, सुक्ख सक्केय पोद्दो ।

अद्दय गेइ बद्धही, सामएखे पञ्चुवद्धिओ ॥६१॥

गृह त्याग कर भ्रमण करने हुए विवेहाधिपति नमिराज
की साक्षात् इन्द्र ने पटौसा की । किन्तु वे समय से विविध

भी विचलित नहीं हुए श्रीर अपनी आत्मा को विशेष नम्र बनाया ॥६१॥

एवं करेति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।

विणियट्ठति भोगेसु, जहा से नमि रायरिसि ।६२।त्तिवेमि

जो तत्त्वज्ञ पण्डित एवं विचक्षण पुरुष हैं, वे नमिराजर्षि की तरह काम भोगों से निवृत्त होकर समय में निश्चल रहते हैं ।

। नोवा अध्ययन समाप्त

दुमपत्तयं दसमं अञ्जयणं

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवट्ठइ राइगणाण अच्चए ।

एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१॥

जिस प्रकार रात्रियों के बीतने पर वृक्ष का पत्ता पीला होकर गिर जाता है, उसी तरह मनुष्यों का जीवन है । अतः—
एव हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ॥१॥

कुसग्गे जह ओसत्तिदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणाए ।

एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२॥

जिस प्रकार कुश के अग्रभाग पर रही हुई ओस की बूंद थोड़े समय ही ठहरती है, उसी प्रकार मनुष्यों का जीवन है । इसलिए हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर ॥२॥

इह इत्तरियम्मि माठण, जीवियए बहुपक्कायए ।
विहुसाहि म्य पुरे कठ, समय गोयम ! मा पमायए ॥३॥

चोड़ी भाव और प्रमेकों बिध्न बाते इस जीवन म
पूर्वकृत कर्म रज को दूर करने में हे गौतम ! समय मात्र भी
प्रमाद मत कर ॥३॥

दुल्लहे खलु माणुसे मवे चिरकाक्षेण वि सम्मपासिया ।
गाढा य विवाग कम्ममुद्धो, समय गोयम ! मा पमायए ॥४॥

सभी प्राप्तिया के लिए मनुष्य जन्म बहुत सम्वे काल
में भी मिलना दुर्लभ है । क्योंकि दुष्कर्म का विपाक अत्यन्त
बुड होता है इसलिये हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत
कर ॥४॥

पुढविकायमइगग्गो, ठक्कोसं मीवो ठ संवसे ।
काल संत्ताईयं, समय गोयम ! मा पमायए ॥५॥

पृथ्वीकाय में गया हुआ जीव उत्कृष्ट अवस्थात काल
तक उसी में रहता है । इसलिये हे गौतम ! समय मात्र भी
प्रमाद मत कर ॥५॥

माठक्कयमइगग्गो, ठक्कोसं मीवो ठ संवसे ।
काल संत्ताईयं, समय गोयम मा ! पमायए ॥६॥

अपकाय में गया हुआ जीव उत्कृष्ट अवस्थात काल तक
रहता है, इसलिये हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर ।

तेउकायमद्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥७॥

तेउकाय में (पूर्ववत्) ॥७॥

वाउक्कायमद्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखाईयं, समयं गोयम मा पमायए ॥८॥

वायुकाय में. पूर्ववत् ॥८॥

वणस्सइकायमद्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालमणांतदुरंतयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥९॥

वनस्पतिकाय में गया दुआ जीव, इसी काय में दुख से भ्रन्त होने वाले उत्कृष्ट अनन्त काल तक रहता है । इसलिए हे गौतम ! समय. . ॥९॥

वेइंदियकायमद्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१०॥

दो इन्द्रिय वाली काया में गया दुआ जीव, उत्कृष्ट सख्यात काल तक रहता है । इसलिए हे गौतम ! समय. .

तेइंदियकायमद्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखिज्जमन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥११॥

तीन इन्द्रिय वाली काया में. पूर्ववत् ॥११॥

चउरिंदियकायमद्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१२॥

आर इन्द्रिय बाह्यो काया मे पूर्ववत् ॥१२॥

पश्चिदिमकायमश्मो, उक्कोस जीवो उ संबसे ।

सुत्तहुमवग्गाहये, समय गोयम ! मा पमायए ॥१३॥

पश्चिन्द्रिय (चिर्येव) जाति में गया हुआ जीव उत्कृष्ट
सात पाठ सब तक रहता है । इसलिए हे गौतम ! समय—

दूषे नेरइए य गम्भो, उक्कोस जीवो उ संबसे ।

इक्केमकमवग्गाहये, समय गोयम ! मा पमायए ॥१४॥

देव और नारक में गया हुआ जीव एक ही भव करता
है । इसलिये हे गौतम ! समय ... ॥१४॥

एव मवसांसार, संसार सुहासुहेहि कम्महिं ।

जीवो पमायवहुलो, समय गोयम ! मा पमायए ॥१५॥

इस प्रकार प्रमाद की अधिकता से जीव अपने सुभा
शुभ कर्मों से संसार में भ्रमण करते हैं । इसलिए हे गौतम !
समय ॥१५॥

तदूख वि माणुसत्तयां, आरियत्तयां पुब्बरावि दुल्लेह ।

बह्वेदसुया मिच्छस्सुया, समय गोयम ! मा पमायए ॥१६॥

मनुष्य जन्म मिल जाने पर भी धार्मिक पाना कठिन
है । क्योंकि मनुष्यों में भी बहुत से जोर और मत्तव्य होते हैं ।
इसलिए हे गौतम ! समय ... ॥१६॥

लद्वुण वि आरियत्तणं, अहीणपंचिदियया हु दुल्लहा ।
विगलिन्दियया हु दीसइ, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१७॥

मनुष्य भव और आर्यत्व पाकर भी पाचो इन्द्रियो का पूर्ण होना दुर्लभ है । क्योंकि बहुत से मनुष्यो में इन्द्रियो की विकलता देखी जाती है । इसलिए हे गौतम ! समय ॥१७॥

अहीणपंचिदियत्तं वि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा ।
कृतिथिनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१८॥

पाचो इन्द्रिया पूर्णरूप से मिलने पर भी उत्तम धर्म का सुतना निश्चय ही दुर्लभ है । क्योंकि बहुत से मनुष्य कुतीर्थी की सेवा करने वाले होते हैं । इसलिए हे गौतम ! समय

लद्वुण वि उत्तमं सुइं, सद्वृणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१९॥

यदि उत्तम धर्म का श्रवण भी मिल जाय, तो उस पर श्रद्धा होना अत्यन्त कठिन है । इसलिए हे गौतम ! समय

धम्मं पि हु सद्वृत्तया, दुल्लहया काएण फासया ।
इह कामगुणेहि मुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२०॥

धर्म पर श्रद्धा होने पर भी उसका काया से आचरण करना अत्यन्त दुर्लभ है । इसलिए हे गौतम ! समय ॥२०॥

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवन्ति ते ।
से सोयवत्ते य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२१॥

हे गौतम ! तेरा शरीर जीर्ण होता जा रहा है । केश सफेद हो रहे हैं और धोब बस जीर्ण हो रहा है । यत समय माम ... ॥२१॥

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पंडुरया इवति ते ।
से चक्षुबले य हापई, समय गोयम ! मा पमायए ॥२२॥

हे गौतम ! तेरा शरीर जीर्ण और केश सफेद हो रहे हैं और नेत्र व्याधि जीर्ण हो रही हैं, इसलिये समय ... ॥२२॥

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पंडुरया इवति ते ।
से घाघबले य हापई, समय गोयम ! मा पमायए ॥२३॥

तेरा शरीर जीर्ण और केश सफेद हो रहे हैं और घ्राण क्षीय भट्ट हो रहा है । इसलिये हे गौतम ! समय ... ॥२३॥

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पंडुरया इवति ते ।
से जिम्भबले य हापई, समय गोयम ! मा पमायए ॥२४॥

तेरा शरीर जीर्ण... जिम्भा बस जीर्ण हो रहा है ... ।
परिजूरइ ते सरीरय, केसा पंडुरया इवति ते ।

से फासबले य हापई, समय गोयम ! मा पमायए ॥२५॥

तेरा शरीर जीर्ण... स्पर्श बस जीर्ण हो रहा है ... ।
परिजूरइ ते सरीरय, केसा पंडुरया इवति ते ।

से सम्भबले य हापई, समय गोयम ! मा पमायए ॥२६॥

तेरा शरीर जीर्ण ... सभी प्रकार का बस जीर्ण हो रहा है इसलिये हे गौतम ... ॥२६॥

अरई गंडं विसृज्या, आयंका विविहा फुसंति ते ।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२७॥

अरति, फोडे, फुन्सी, अजीर्ण और विविध प्रकार के शोथ घात करने वाले रोग लगते हैं, जो शरीर को अशक्त और नष्ट कर देते हैं । इसलिए हे गौतम ! समय

बुच्छिद सिणोदमण्णो, कुमुयं सारइयं व पाणियं ।
से सन्वसिणोदवज्जिए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२८॥

जिस प्रकार शरद ऋतु का कमल, जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार अपने स्नेह भाव को त्याग देने में है गौतम ॥२८॥

चिच्चाण धरां च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं ।
मा वंतं पुणो वि आइए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२९॥

धन और स्त्री का त्याग करके तेने अनगर वृत्ति ग्रहण की है । अतः वर्मन किये हुए विषयो से दूर ही रहने में

अवउज्झिय मित्तबंधवं, विउलं चेव धणोहसंचयं ।
मा तं विडयं गवेसए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३०॥

मित्र, बान्धव तथा विपुल धन राशि को छोड़कर पुनः जनकी इच्छा मत कर । इनसे विरक्त रहने में है गौतम ।

ण हु जिणे अज्ज दीसइ, बहुमए दीसइ मग्गदेसिए ।
संपइ सोयाउए पढे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३१॥

वर्तमान समय में जिनेश्वर देव दिखाई नहीं देते, किन्तु

उनका बताया हुआ मोक्ष मार्ग दिखाई देता है इस प्रकार
नविष्य मे आरमार्थी सोच कहेंगे तो हे गौतम ! समय-
अवसोदिय कट्गापह, ओदयखो सिं पह महालय ।
गच्छसि मग्गं विसोदिया, ममय गोयम ! मा पमायए ॥३२॥

हे गौतम ! तू कुतोर्ध्व रूप कष्टकमय मार्ग को छोड़कर
मोक्ष के विज्ञान मान में आया है । इसलिए समय

अवसो अह मारवाइए, मा मग्गो विसमे वगादिया ।

यच्छ पच्छाणुताइए, समय गोयम ! मा पमायए ॥३३॥

जिस प्रकार निबल भार बाहुक विषम मान में भार
धर्म को देता है और भार को छोड़कर बाव में पछतावा
सही प्रकार प्रमादबल तुम्हें पश्चात्ताप करने का अवसर न
भाव इसलिए हे गौतम ! समय ॥३३॥

तियखो हु सि अण्णम मह, किं पुस पिडुसि तीरमागओ
अमितुस पारंगमितए, समय गोयम ! मा पमायए ॥३४॥

तुम निविचल ही संसार महासमुद्र से तिर गये हो कि
किनारे पहुँच कर क्यों रुक गये । संसार पार होने में ।
हे गौतम ! ॥३४॥

अकलेवरसेणिमूसिया, सिद्धि गोयम लोय गच्छसि ।

खेम च सिव अणुत्तर, समय गोयम ! मा पमायए ॥३५॥

हे गौतम ! सिद्ध पद की यणी पर बढ़ कर शान्ति
पूर्वक उक्त कल्याणकारी सर्वोत्तम सिद्ध लोक को प्राप्त करने
समय मान भी प्रमाद मत कर ॥३५॥

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए ।

संतिमग्गं च वूहए, ममयं गोयम ! मा पमाषए ॥३६॥

हे गौतम ! तू ग्राम नगर अथवा जंगल में गया हुआ तत्त्वज्ञान शास्त्र और मयन हाकर मुनि धर्म का पालन कर तथा माक्षमाग की वृद्धि करने में समय मात्र भी प्रमाद मत कर ।

बुद्धस्स-निमम्म भासिय, सुकहियमट्ठपओवसोहियं ।

राग दोस च छिंदिया, सिद्धिगडं गए गोयमे । त्ति वेमि ।

सबज्ञ प्रभु का फरमाया हुआ, अथ और पदों में सुशो-
भित माषण सुनकर श्री गौतम स्वामी, राग द्वेष का नाश
करके सिद्ध गति का प्राप्त हुए । ऐसा मैं कहता हूँ ॥३७॥

द्वन्द्ववा अध्ययन समाप्त

बहुसुयपुज्जं एगारसं अज्झयणां

सजोगा विप्पमुक्कस्म, अणुगारस्स भिरखुणो ।

आयार पाउकरिस्सामि, अणुपुण्वि सुणेह मे ॥१॥

अब मैं मयागो मैं मूकन, अनगार भिक्षु के आचार को
प्रकट करता हूँ सो अनुक्रम से सुना ॥१॥

जे यावि होड निव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अण्णिग्गहे ।

अभिक्षुणं उल्लवडं, अविणीए अबहुस्सुए ॥२॥

जो विद्या रहित है अथवा विद्या सहित है, किन्तु

अभिमानो विषयो मे गूढ अजितेन्द्रिय अविनीत और बार-बार
बिना विचारे बोलता है वह अकथ्युत है ॥२॥

अहं पचहिं ठायेहिं, जहिं सिक्खा न लम्बई ।

यमा कोहा पमाएय, रोगेबासस्तएय य ॥३॥

मान कोष प्रमाद राम धीर धामस्य इन पांच
कारणों से सिखा प्राप्त नहीं होती ॥३॥

अहं अकृहिं ठायेहिं, सिक्खासीले चि बुझई ।

अहस्तिरे सया दैते, न य भम्ममुदाहरे ॥४॥

नासीले न विसीले, न सिया अइलोक्षुए ।

अकोहये सवरए, सिक्खासीले चि बुझई ॥५॥

घाठ स्थानों से जोष शिक्षा के माध्य कहा जाता है
१ अधिक नहीं हसने बासा २ इन्द्रियों का सदा दमन करने
बासा ३ मामिक वचन नहीं बोलने बासा ४ सुझावारी
५ अलक्षित धाधार ६ विशेष सामुपता रहित ७ आब
रहित और ८ सत्यानुरागी शिक्षाशील कहा जाता है ॥४-५॥

अहं जोइसहिं ठायेहिं, पट्टमाये ठ संजय ।

अविणीए बुझई सो ठ, निम्बाय थ न गच्छई ॥६॥

इन जोबह स्थानों में वर्तता हुआ संयतो अविनीत
कहा जाता है । वह निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता ॥६॥

अमिस्वणां कोही इवइ, पचय थ पडुम्पइ ।

मेचिअमणो वमइ, सुय सद्दुय मजइ ॥७॥

१ बार-बार क्रोध करने वाला, क्रोध का प्रवन्ध करने वाला, ३ मित्र भाव छोड़ने वाला और ४ श्रुत ज्ञान का अहकार करने वाला ॥७॥

अवि पायंपरिकखेवी, अवि मिचेसु कुप्पइ ।

सुप्पियस्सावि मिच्चस्स, रहे भासइ पावगं ॥८॥

५ किसी प्रकार की स्खलना से आचार्यादि का तिरस्कार करने वाला, ६ मित्रों पर क्रोध करने वाला, ७ अत्यन्त प्रिय की भी उसके पाँछे निन्दा करने वाला ॥८॥

पइन्नवाई दुहिले, थइए लुइए अनिग्गहे ।

असंविभागी अवियत्ते, अविणीए त्ति बुच्चई ॥९॥

८ असम्बद्ध वचन बोलने वाला, ९ द्रोही, १० अभिमानी, ११ रसादि में गृद्ध, १२ इन्द्रियो को वश में नहीं करने वाला, १३ असंविभागी और १४ अप्रीति रखने वाला अविनीत कहलाता है ॥९॥

अह पत्तरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति बुच्चई ।

नीयावत्ती अचवले, अमाई अबुउहले ॥१०॥

इन पन्द्रह गुण वाला सुविनीत कहलाता है,—१ नम्रवृत्ति वाला, २ चपलता रहित, ३ माया रहित और ४ कुतूहल रहित ॥१०॥

अप्पं च अहिक्खवई, पवंधं च न कुण्वई ।

मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धं न मज्जई ॥११॥

अभिमानी विषयों में गूढ़ अचित्तेन्द्रिय अविनीत और बार-बार
बिना बिभारे बालता है वह अकथ्यत है ॥२॥

अह पचहिं ठायेहिं, जेहिं सिक्खा न लम्बई ।

धमा कोइ पमाएण, रोगशासस्मएण य ॥३॥

मान क्रोध प्रमाद राग और भालस्य इन पाँच
कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती ॥३॥

अह अहहिं ठायेहिं, सिक्खासीले पि बुचई ।

अहस्मिरे सया दंत, न य मम्मदुदाडरे ॥४॥

नासीले न विसीले, न सिया अहोसुए ।

अकोइये सयरए, सिक्खासीले पि बुचई ॥५॥

घाठ स्वामी से जोव शिक्षा के योग्य कहा जाता है
१ अधिक नहीं हसने वासा २ इन्द्रियों का सब दमन करने
वासा ३ भाषिक वचन नहीं बालने वासा ४ गुंथाचारी
५ अलङ्कित वाचारी ६ विषय सासुपता रहित ७ प्राण
रहित और ८ सत्यानुगामी शिक्षास्तीत कहा जाता है ॥४-५॥

अह ओइसहिं ठायेहिं, अहमाये उ संग्रण ।

अविणीण बुचई सो ठ, निष्वास च न गच्छई ॥६॥

इन बीसह स्थानों में वर्तता हुआ संमत्ती अविनीत
कहा जाता है । वह निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता ॥६॥

अमिहसुणं कोही इणइ, पइअ च पकुप्पइ ।

मेसिन्दमाणो इमइ, सुय सद्दम मज्झइ ॥७॥

१ बार-बार क्रोध करने वाला, क्रोध का प्रवन्ध करने वाला, ३ मित्र भाव छोड़ने वाला और ४ श्रुत ज्ञान का अहंकार करने वाला ॥७॥

अवि पावपरिवेखी, अवि मित्तसु कुप्पइ ।

सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं ॥८॥

५ किसी प्रकार की झूलना से आचार्यादि का तिरस्कार करने वाला, ६ मित्रों पर क्रोध करने वाला, ७ अत्यन्त प्रिय की भी उसके पीछे निन्दा करने वाला ॥८॥

पइन्नवाई दुहिले, थडे लुडे अनिग्गहे ।

असंविभागी अवियत्ते, अविणीए चि बुच्चई ॥९॥

८ असम्बद्ध वचन बोलने वाला, ९ द्रोहो, १० अभिमानी, ११ रसादि में गृह्य, १२ इन्द्रियो को वश में नहीं करने वाला, १३ असंविभागी और १४ अप्रोति रखने वाला अविनीत कहलाता है ॥९॥

अह पन्नरसहि ठाणेहि, सुविणीए चि बुच्चई ।

नीयावत्ती अचवत्ते, अमाई अकुऊहले ॥१०॥

इन पन्द्रह गुण वाला सुविनीत कहलाता है,—१ न अवृत्ति वाला, २ चपलता रहित, ३ माया रहित और ४ कुतूहल रहित ॥१०॥

अप्पं च अहिकिस्सवाई, पबंधं च न कुब्बई ।

मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धं न मज्जई ॥११॥

५ तिरस्कार नहीं करने बासा ६ क्राधानि का प्रवर्ण
नहीं करने बासा ७ मित्रता निभाने बासा ८ धन पहरे
प्रहकार नहीं करने बासा ॥११॥

न य पादपरिस्वशी, न य मित्तसु कुम्पई ।

अप्यिपस्यादि मित्तसु, गृह कल्लास भासई ॥१२॥

९ गृह प्राणि का स्पर्शना हान पर तिरस्कार नहीं करने
बासा १० मित्र पर काज नहीं करने बासा धार ११ अश्वि
मित्र का भी आ प ध से भला हुआ जाना है ॥१२॥

कल्लद्वन्द्वमरवज्जिण, पुद्गल्य अमित्राण्य ।

हिरिम पडिसंलीसे, सुविशीए सि बुज्जई ॥१३॥

१२ कल्ल और हिता का वजन बाला १३ सधम का
निर्बाह करने वाला १४ इन्द्रिया को बल में करने वाला और
१५ तत्त्वज्ञ सज्जाबन्धु हो वह सुविनात कहलाता है ॥१३॥

वसे गुरुकुले निब, योगस उपहास्यव ।

पियकर पियवाई, से सिक्ख लद्धुमरिई ॥१४॥

जो सत्ता गुरुकुल में रहने वाला समाधि भाव में रहने
वाला उपधान तप करने वाला प्रिय करने और प्रिय वासन
वाला हो वही शिक्षा प्राप्त करने का योग्य जाना है ॥१४॥

जहा संलम्भि पप निहिय, दुरभो वि विरायइ ।

एव बहुस्तुए भिक्खू, वम्मो किन्ही ठहा सुयं ॥१५॥

जैसे पान में रहा हुआ दूध का प्रकार से चामा पाठा

है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म कीर्ति और श्रुत शोभा पाते हैं ॥१५॥

जहां से कंबोयाणां, आद्वयणे कंथए सिया ।

आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१६॥

जैसे बम्बाज देश के घांड़ों में गृणयुक्त घाड़ा प्रवान होता है और गति-चाल में भी प्रवान होता है, वैसे ही बहुश्रुत में धर्म कीर्ति और श्रुत शोभा पाते हैं ॥१६॥

जहां आणसमारुढे, सुरे दढपरक्कमे ।

उभओ नदिचोसेणं, एव हवइ बहुस्सुए ॥१७॥

जिस प्रकार उत्तम अश्व पर चढ़ा हुआ दृढ़ पराक्रम वाला सुभट, दोनों तरफ नदिघाट से शाभा पाता है

जहां करेणुरिकियणे, ठुंजरे सद्धिहायणे ।

बलवते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१८॥

जिस प्रकार हथिनियो में, बिग हुआ साठ वर्ष का बलवान् और अपराजित हाथी शोभा पाता है, उसी

जहां से तिकखसिगे, जायक्खंधे विरायई ।

वसहे जूहादिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१९॥

जिस प्रकार तीक्ष्ण सींग और पुष्ट कन्धे वाला वृषभ अपने यूथ का अधिपति हाकर शाभा पाता है, उसी

जहां से तिकखदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए ।

सीहे मियाण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२०॥

जिस प्रकार तोखी दाढ़ों वाला और किसी से नहीं
दबने वाला प्रचण्ड सिंह मृगों में धाँधलाता है। उसी—

जहाँ से बामुदेवे, सुस्तचक्रगदाधरे।

अप्यदिह्यबन्धे ओहे, एव इवइ बहुस्तुए ॥२१॥

जिस प्रकार छस चक्र और गदा को धारण करने
वाले बामुदेव अप्रतिहत बलवान याता है उसी प्रकार—

जहाँ से पाठरते चक्रवर्ती महिद्विष्टि।

ओइसरयणादिर्बई, एव इवइ बहुस्तुए ॥२२॥

जिस प्रकार भरतसूत्र के चारों दिशाओं के अन्त तक
राज्य करने वाला चक्रवर्ती महा अद्विष्टासो और १४ रत्नों
का स्वामी होता है उसी प्रकार बहुमूढ ॥२२॥

जहाँ से सहस्त्ररुमे वरजपायी पुरन्दरे।

सफे देवादिर्बई, एव इवइ बहुस्तुए ॥२३॥

जिस प्रकार सहस्र नैऋताना अप्यपाटी पुरन्दर-पुर का
विवारण करने वाला देवाधिपति अन्ध सोमा पाता है—

जहाँ से तिमिरविद्धसे, उचिष्टते दिवायरे।

अस्तते इव तेएव, एव इवइ बहुस्तुए ॥२४॥

जिस प्रकार प्रम्बकार का गाय करने वाला सपता हुआ
सूर्य अपने छेब से सोमा पाता है उसी प्रकार बहुमूढ—

जहाँ से उद्वर्ध अरे, नक्कलपरिवारिए।

पडिपुपके पुपवनासीए, एव इवइ बहुस्तुए ॥२५॥

जिस प्रकार नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा, नक्षत्रों से घिरा हुआ पूर्णमासी को पूर्ण रूप से शोभित होता है । उसी जहा से सामाख्याणं, कोट्टागारे सुरक्खिए ।

नागाधन्वपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२६॥

जैसे सग्रह करने वालों के धान्यादि के कोठे सुरक्षित होते हैं । उसी प्रकार ॥२६॥

जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदंसणा ।

अणाढियस्स देवस्स, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२७॥

जिस प्रकार अनादृत देव से अविच्छिन्न सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत सावु भी सब नावुओं में श्रेष्ठ है ॥२७॥

जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरंगमा ।

सीया नीलवंतपवहा, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२८॥

जिस प्रकार नीलवन्त पर्वत से निकल कर, समुद्र में मिलने वाली सीता नदी, सब नदियों में श्रेष्ठ है ॥२८॥

जहा से नगाण पवरे, सुमहं मंदरे गिरी ।

नाणोसहिपज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२९॥

जिस प्रकार सभी पर्वतों से बहुत ऊँचा और नाना प्रकार की शीषधियों से देदीप्यमान् ऐसा सुमेरु पर्वत श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत ॥२९॥

अहा से सयभूरमये, उन्ही अकस्त्रओदए ।

नाणारयणपडिपुणसे, एव इवइ महस्सुए ॥३०॥

जिस प्रकार स्वयम्भूरमण समस्त अक्षय बस और मामा प्रकार के रत्ना में भरा हुआ है उसी प्रकार बहुयुग १ समुद्रगभीरसमा दुर्गमया, अचकिया कथाइ दुष्पद्मया । सुयस्म पुणया विउल्लस्य ताउणो, सुविचु कम्म गइसुत्तम गया ॥

बहुयुग समस्त के समान गम्भीर दुर्गम निर्मय किसी से नहीं बचने वाला विपुल श्रुतज्ञान से पूर्ण और स्वभाव के रत्नाक हाकर कमों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त हुए और हात है ॥३१॥

तम्हा सुयमहिद्धिञ्जा उत्तनदुग्घेमए ।

जेषप्पायां पर येव, सिद्धि संपाउयेज्जासि ॥३२॥ ति वेमि

इसलिए मोक्ष की गवयणा करने वाला साधक उस धतज्ञान का पद-जा अपनी धीरे वृत्ति की धारणा का निश्चय ही मोक्ष में पहुँचाने वाला है ॥ ३२॥

स्मार्हवा अध्यायम समाप्त

हरिएसिज्ज वाग्गह अङ्कयणा

मोवागकुलसंभूओ, गुणुदग्गरो सुणी ।

हरिण्यवलो नाम, धासि भिक्खू जिह्दिओ ॥१॥

चाण्डाल कुल में उत्पन्न होकर उत्तम गुणों के धारक
एव जितेन्द्रिय भिक्षुक-ऐसे हरिकेशबल नाम के मुनि थे ॥१॥

हरिएमणभासाए, उच्चारसमिईसु य ।

जओ आयाणनिक्खेवे, संजओ सुममाहिओ ॥२॥

वे ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-मण्डमात्र-निक्षेपणा
और, उच्चार-प्रस्तरण-खेल-सिंघाण-जत्तल-परिस्थापनिका ऐसी
पाँच समिति में यतना करने वाले, सयमवान् और श्रेष्ठ समाधि
वाले थे ॥२॥

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइदिओ ।

मिक्खट्ठा वंमइज्जम्मि, जत्तवाटमुवट्ठिओ ॥३॥

मन, वचन एव काय गुप्ति वाले, जितेन्द्रिय वे मुनि,
भिक्षा के लिए यज्ञशाला में-जहाँ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे-ध्राये ।

तं पासिऊणं एवजंतं, तवेण परिसोसियं ।

पंतोवहिउवगरणं, उवहसंति अणारिया ॥४॥

तप से जिनका शरीर शुष्क हो गया है, जिनके उप-
करण जीर्ण और मलीन हो गये हैं-ऐसे उन मुनि को आते
देखकर अनार्य के समान वे ब्राह्मण उनकी हसी करने लगे ॥४॥

जाईमयपडिथद्धा, हिंसया अजिइंदिया ।

अवंभचारिणो बाला, इमं वयणमन्ववी ॥५॥

वे जातिभेद से घमण्डी बने हुए, हिंसक, अजितेन्द्रिय,
अब्रह्मचारी एव अज्ञातो, उन मुनि के प्रति इस प्रकार बोलने
लगे ॥५॥

कयरे आगच्छद् दित्तरुवे, काले विक्राले फोकनासे ।

ओमचेस्तण पमुपिसायभूए, संकज्जुसं परिहरिय कठे ॥६॥

भुणित रूप काले रग का चपटी नाक वाला विकराल
पिशाच जैसा यह कौन था रहा है आ गले में धरपन्त बीछ
झोर गन्धे बस्म पहने हुए है ॥६॥

कयरे तुम इय अदससिज्जे, कए न आसाइहमागओ सि ।

ओमचेस्तगा पमुपिसायभूया, गच्छस्सुछादि किमिह ठिओ सि ॥

बीछ बस्म वाला पिशाच जैसा मन्त्रघनोय ऐसा तू
कौन है ? यहाँ क्यों पाया है ? निकल जा यहाँ से ॥७॥

अस्सो तदिं तिंदुगरुक्खवासी, अशुकपओ तस्स महामुत्तिस्स ।

पण्ढायइत्ता नियग सरीरं, इमाइ वयक्काइ मुदाहरित्था ॥८॥

उस समय तन्दुक बुझ पर रहने वाला उन महामुनि पर
अशुकम्पा रखने वाला यरा घपना शरीर छुपा कर इस प्रकार
कहने लगा ॥८॥

समसो अह संजओ बमपारी, विरओ धणपयसपरिगहाओ ।

परप्पविद्धस्स ठ भिक्खुक्काले, अमस्स अट्ठा इहमागओमि ॥९॥

मे श्रमण समसी न ब्रह्मचारा तू और धन परिग्रह
एवं पचन पाचन से निवृत्त तू । इस भिक्षावेला में दूसरों के
द्वारा ठमके निय बनाय हुए अन्न के लिए यहाँ पाया तू ॥९॥

वियरिज्जइ स्वज्जइ भुज्जइ य, अम पभूय मवपाणमय ।

आणादि मे आपम्पजीविणो ति, सेमावससं लद्धु तवसी ॥

यह बहुतसा अन्न बाटा जा रहा है, खाया और भोगा जा रहा है। आप जानते हैं कि मैं भिक्षा से ही आजोविका करने वाला हूँ। इसलिये मुझ तपस्वी को आहार देकर लाभ प्राप्त करो ॥१०॥

उक्खल्लं भोयण माहणाणां, अचट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वयं एरिसमन्नपासां, दादामु तुज्झं किमिहं ठिओसि ॥

ब्राह्मण बोले—उत्तम प्रकार से बनाया हुआ यह आहार, ब्राह्मणों के लिए ही है। इसलिए इस प्रकार का अन्न हम तुम्हें नहीं देंगे। तुम यहाँ क्यों खड़े हो ? ॥११॥

थंलेसु वीयाइ ववन्ति कासया, तहेव निब्बेसु य आससाए ।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्यमियां खु खित्तं ॥

यक्ष—जिस प्रकार फल की आशा से कृषक लोग ऊँची और नीची भूमि में खेती करते हैं, उसी प्रकार आप भी मुझे श्रद्धा से भिक्षा दो। आपको निश्चय ही पुण्य होगा ॥१२॥

खेत्ताणि अम्भं विइयाणि लोए, जेहिं पक्किण्णा विरुहंति पुण्णा ।
जे माहणा जाइविज्जोववेया, ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं ॥१३॥

ब्राह्मण—लोक में जो पुण्य क्षेत्र है, उन्हें हम जानते हैं, जिनमें बहुत ही पुण्य होता है। जो जाति और विद्या से सम्पन्न ब्राह्मण है, वे निश्चय ही उत्तम क्षेत्र हैं ॥१३॥

कोहो य माणो य वडो य जेसिं, सोसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइविज्जाविहणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥१४॥

यस्य—जिनमें क्रोध मायावि और हिंसा मया बदल
तथा परिग्रह है वे ब्राह्मण जाति और विद्या से हीन हैं। ऐसे
जन निश्चय ही पापकारी हैं ॥१४॥

तुष्मेत्य मो मारघरा गिरायां, अहु न आयाह अदिज्ज वेए।
उन्नामयाइ मुजिखो चरति, ताइ तु खेचाइ सुपेसलाइ ॥१५॥

अहो ! तुम क्षत्रियों के मारबाहुक हो। तुम वेव सीत कर
भी उसका धर्म नहीं जानते। आ मुनि ऊँच नीच कुल में से
मिक्षा लेते हैं वे ही राज के सुन्दर भव हैं ॥१५॥

अनम्मावयायां पबिक्खलमासी, पमाससे कियणु सगासि अम्ह।
अवि एय विवस्सउ अज्जपायां, न य यां वाहाहु तुम निर्यंठ ॥

छात्र बोले—तू हमारे सामन धम्मपापको के विवद्व क्या
बक रहा है ? हे निर्यन्त्र ! यह चाहार पानी भस्मे ही मल्ट हुआ
जाय पर हम तुम नहीं बचे ॥१६॥

समिद्धिं मन्म सुममादियस्स, गुचीहि शुचस्स जिहदियस्स।
ज्झ म न दादित्थ अहेसणिज्ज, किमिज्ज अभाण लहित्थ लाइ

यस्य बोला—ह भायों ! मुक्त और सुममादियस्त मूर्ख
बन्त जितेन्द्रिय को यह एवणीय चाहें नहीं दोमे ता तुम
मर्जों का क्या फल पा सकोगे ? ॥१७॥

क इत्थ सत्ता उवजोइया वा, अनम्मावया वा सइ सुद्धिणिं।
एय तु दहेस्स फल्लेण इता, कटम्मि पत्तण सल्लेज्ज ओ यां।

धम्मपाप ने कहा—धरे ! महा काई लज्जिय यत्र रसक

अथवा छात्र और अध्यापक हैं ? इस साधु को दण्ड या मृष्टि से भारकर और गरदन पकड़ कर बाहर निकाल दो ॥१८॥

अज्झावयाणां वयणां सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ वहू कुमारा ।
दडेहिं वित्तेहिं कसेहिं चेव, समागया तं इसि तालयंति ॥

अध्यापक की बात सुनकर बहुत से कुमार दौड़ आये और दड, बेंत और चावुक से मारने लगे ॥१९॥

रत्तो तहिं कोसलियस्स धूया, भद चि नामेण अणिदियंगी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणां, कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ ॥२०॥

उन सयती को मारते हुए देखकर कोशल नरेश की भद्रा नाम वाली सुन्दर राजकुमारी, उन क्रुद्ध कुमारों को शांत करने लगी ॥२०॥

देवामिओगेण निओइएणां, दिन्ना सु रत्ता मणसा न भाया ।
नरिंददेविंदमिवंदिएणा, जेणामि वंता इसिणा स एसो ॥२१॥

उसने कहा-देवाभियोग से प्रेरित हुए राजा द्वारा मे मुनि को दी गई थी, किन्तु उन मुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा । नरेन्द्र और देवेन्द्र से पूजित ये वे ही ऋषि हैं-जिन्होंने मुझे त्याग दिया था ॥२१॥

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिहंदिओ संजओ वंभयारी ।
जो मे तया नेच्छइ दिज्जमणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रत्ता ॥

ये वे ही उग्र तपस्वी, जितेन्द्रिय, सयती और ब्रह्मचारी

महात्मा हैं—जिन्होंने उस समय कोसल नरेश—मेरे पिता द्वारा दी जाती हुई मुक्त स्वीकार नहीं किया ॥२२॥

महाजसो एस महापुमानो, धोरप्वञ्जो धोरपरक्रमो य ।
मा एय इल्लेह अहीसखिज्ज, मा सम्भे तेएण मे निइहेजा ॥

ये धोर व्रजो धोर पराक्रमी महायशस्वी और महा प्रभावशाली महात्मा है । य निन्वनीय नहीं है इनकी निन्दा मत करा । कहीं अपने तब से ये पाप सब को भस्म नहीं कर दें ।
एयाइ तीसे बयणाइ सोया, पचीइ मइइ सुभासिपाई ।
इसिस्स वेयावडियट्टयाए, अरुता कुमारे विविधारयति ॥२४॥

उस ब्रह्मरत्नी भद्रा के इन सुभाषित वचनों को सुनकर ऋषि की बंधावट्य करने के लिए यक्ष कुमारों को राकने लगा ।
ते धोररुवा ठिय अतल्लिक्खे, असुरा वहिं व जणं ताक्षयति ।
ते भिन्नदेहे रुहिरं वमंते, पासिन्नु भइ इयमाहु सुज्जो ॥२५॥

तीव्र रूप भाकाष्ट में रहा हुआ यक्ष कुमारों को मारने लगा । भिन्न देह धीरे रक्त वमन हुए कुमारों का देखकर पुनः भद्रा ने कहा—

गिरिं नहेहिं खबरह, अय दत्तेहिं सायह ।

आयतेय पाएहिं इखह, जे भिक्खु अबमभइ ॥२६॥

तुम भिक्षु का जो अपमान कर रहे हो यह पर्वत को नहीं से तोड़ने साहे की दातो से बराम और धन्नि को पेटों से बुझाने की मूर्खता के समान ही है ॥२६॥

आसीविसो उगगतवो महेर्सा, घोरव्वओ घोरपरकमो य ।
अगणिं व पक्खंद पर्यगसेणा, जे भिक्षुयं भत्तकाले वहेह ॥

ये महर्षि आशीविष लब्धि वाले, घोर तप, दुष्कर व्रत
और घोर पराक्रम वाले हैं । तुम भिक्षा के समय भिक्षु को मार
नहे हो, सो अपने नाश के लिए, पतनों के समूह की तरह अग्नि
में गिर रहों हो ॥२७॥

सीसेण एयं सरणां उवेह, समागया सव्वजणेषु तुम्हे ।
जइ इच्छह जीविय वा धणां वा, लोगांपि एसो कुविओ ढहेज्जा ।

यदि तुम जीवन या धन की रक्षा चाहते हो, तो सभी
मिल कर मस्तक झुकाकर, इनकी शरण ग्रहण करो । क्रोधित
हुए महर्षि लोक का भस्म कर सकते हैं ॥२८॥

अवहेडिय पिड्डिसउत्तमंगे, पमारिया बाहु अकम्मचेट्टे ।
निम्मेरियच्छे रुहिरं वमंते, उद्धंमुहे निग्गयजीहनेत्ते ॥२९॥
ते पासिया खंडियकट्टभूए, विमणो विसरणो अह माहणो सो ।
इप्पिं पसाएइ सभारियाओ, हीलं च निंदं च खमाह भंते ॥

उन कुमारी का मुह पीठ की ओर झुक गया था,
भुजाएँ फैली हुई थी, निष्क्रिय, आँखें फटी हुई और मुह ऊपर
की ओर हो गया था । उनकी जीभ तथा आँखें निकल गई थी ।
उन्हे रक्त वमन करते हुए और काष्ठभूत देखकर वह ब्राह्मण खेद
करता हुआ अपनी भार्या के साथ उन ऋषि को प्रमत्त करने
के लिए कहने लगा—हे भगवन् ! हमने आपको अवज्ञा और निन्दा

की इसकी क्षमा प्रदान करें ॥२६-३०॥

बालेहि मूढहि अयावृणहि, ज हीलिया सस्त्र स्वमाह भते ।
महप्पसाया इसिणो इवति, न हु सुप्पी कोवपरा इवति ॥३१॥

हे भगवन् ! हम मड़ और अज्ञानी बालकों ने आपकी
अवहसमा की इसके लिए आप क्षमा करें । श्रुति का महा
कृपामु हाते हैं वे काप नहीं करता ॥३१॥

पुम्नि च इपिह च अखागप च, मयप्पदोसे य मे अतिथि केह ।
जक्खा हु वेयावडिय करेति, ठम्हा हु एए निहया कुमारा ॥

मनि ने कहा—मेरे मन में न तो पहले रूप था न अब
है और न भागे होगा । किन्तु यक्ष मेरी सेवा करता है उसीने
इन कुमारों को मारा है ॥३२॥

अरथ च चम्म च विपायमाया, तुम्मेन वि कुप्पह भूरपमा ।
तुम्म तु पाए सरपां उवेमो, समागया सम्भज्जेस अम्हे ॥

ब्राह्मण कहने लगा—बर्म और शास्त्रों को पानने वाले
उत्तम प्रजा वाले आप कभी काशित नहीं होते हैं । अतएव
हम सब आपके चरणों की शरण में आये हैं ॥३३॥

अप्पेसु ते महामाग, न तं किंचि न अधिमो ।

भुञ्जाहि सात्तिम कूरं, नाथावज्जसंसुय ॥३४॥

हे महाभाग ! हम आपकी पूजा करते हैं । आपका
कोई भी अवयव अपूर्य्य नहीं है । अनेक प्रकार के व्यजन सहित
सात्ति से बने हुए इस भात का आप भोजन कीजिये ॥३४॥

इमं च मे अतिथि पभूयमन्नं, तं भुंजसु अमह अणुग्राहका ।
बाढं ति पडिच्छह भत्तपाणं, मासस्स ऊ पारणए महप्पा ॥

महान्मन् । यह बहुतसा भोजन है । हम पर अनुग्रह करने के लिए आप भोजन कीजिये । "ठीक है"—कह कर ऋषि, मासखमण के पारणे में आहार पानी ग्रहण करते हैं ॥३५॥

तद्वियं गंधोदयपुष्पवासं, दिव्या तहिं वसुहारा य वुद्धा ।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्टं ॥

देवों ने वहा दिव्य सुगन्धित जल और पुष्पों की तथा घन की धाराबद्ध वर्षा की । दुदुभिया वजाई और आकाश में अहा दान । अहो दान । इस प्रकार की घोषणा की ॥३६॥

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसई जाइविसेस कोई ।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥३७॥

यह साक्षात् तप का ही माहात्म्य दिखाई देता है, जाति को कुछ भी विशेषता नहीं दिखाई देती । चाण्डाल पुत्र हरिकेश मुनि को देखो, जिनकी महाप्रभावशाली ऋद्धि है ॥३७॥

किं माहणा जोइसमारभंता, उदण्ण सोहिं बहिया विमग्गहा ।
जं भग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुदिट्ठं कुसला वयंति ॥

हे ब्राह्मणों ! तुम क्यों अग्नि का आरम्भ करते हो ? जल से ऊपरी शुद्धि क्यों चाहते हो ? बाह्य शुद्धि की खोज सुदृष्ट नहीं है, ऐसा तत्त्वज्ञों ने कहा है ॥३८॥

कुसं च जूवं तणकट्टमग्गि, सायं च पायं उदगं कुसंता ।
पाणाइं भूयाइं विहेइयंता, भुज्जो वि मंदा पगरेह पावं ॥३९॥

कुक्षं यूपं तूष्णं काष्ठं और अग्निं तथा प्रातः पायकं म
जस का स्पर्श करते हुए और प्राणियों की हिंसा करते हुए,
मन्वन्मुनि सौम्य पुनः-पुनः पाप का सन्निवेश करते हैं ॥१६॥

कइ चरे मिक्खु वयं जयामो, पासाइ कम्माइ पुणोन्नयामो ।
अक्खाहि णो संजय अक्खुपूइया, कइ सुजइ कुसला वयति ॥

हे मिक्खु ! हम क्या करें कैसा यज्ञ करें जिससे पाप
कर्मों को दूर कर सकें । हे महापूजित सपत्नी ! तत्त्वज्ञ पुरुषों
ने सुन्दर यज्ञ का प्रतिपादन किस प्रकार किया है ॥४॥

छज्जीवकायं असमारमता, मोर्तं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्गह इत्थिणो मायमार्यं, एव परियेखायं चरति दत्ता ॥

इन्द्रिया को दमन करने वाला छज्जीवकाय की हिंसा
नहीं करता भूया और अदत्त का सेवन नहीं करता और परिग्रह
द्विषा मान माया सोम क्रोध इन्हें ज्ञान से जानकर त्याग
दते हैं ॥४१॥

सुसंयुहो पचहिं संचरेहिं इह जीविय अन्नवकंखमायो ।
बोसहुकाओ सुवचठहो, महाजय वयति अन्नसिद्ध ॥४२॥

पांच स्रवर से संयुक्त अन्नयमी जीवन् को नहीं चाहत
बाला शरीर का त्याग करने वाला निमल वत बाला और
स्रवार के समस्त का त्याग रूप महान् जयवासे श्रेष्ठ यज्ञ का
अनुष्ठान करता है ॥४२॥

के ते जोई के य ते जोड़ठाणा, का ते सूया किं च ते कारिसंग ।
एहा य ते कयरा संति भिक्खु, कयरेण होमेण हुणासि जोडं ॥

हे भिक्षो ! आपके अग्नि कौनसी है, अग्निकुण्ड कौनसा है, कुडछी, कण्डा, लकड़िया कौनसी है ? शांति पाठ कौनसे है और किम होम से अग्नि को प्रसन्न करते हैं ॥४३॥

तवो जोई जीवो जोड़ठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्महा संजमजोगसंती, होमं हुणामि इसिण पमत्थ ॥४४॥

तप रूप अग्नि, जीव अग्नि का स्थान और मन, वचन, काया के शुभ व्यापार कुडछी रूप है । शरीर कण्डा रूप और आठ कर्म लकड़ी रूप है । समय चर्या, शान्ति पाठ रूप है । मैं ऐसा यज्ञ करता हूँ जो ऋषियों द्वारा प्रशंसित है ॥४४॥

के ते हरए के य ते संतितित्थे, जहिं सिणाओ व रय जहासि ।
आइक्ख नो संजय जक्खपूइया, इच्छामो नाउ भवओ सगासे ॥

हे यक्ष पूजित ! आपका जलाशय कौनसा है ? शांति तीर्थ कौनसा है ? मल त्यागने के लिए आप स्नान कहा करते हैं ? यह हम जानना चाहते हैं । आप बताइये ॥४५॥

धम्मे हरए वंमे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो, सुसिद्धूओ पजहामि दोसं ॥

अकलुषित, आत्मा को प्रसन्न करने वाली शुभ लक्ष्य रूप धर्म, जलाशय है और ब्रह्मचर्य रूप शांति तीर्थ है । जहाँ स्नान करके मैं विमल विसुद्ध और शीतल होकर पाप को दूर करता हूँ ॥४६॥

एष सिद्धायां कुमलेदि दिद्वं, महामिथार्या इतिषां पसत्थ ।
बर्हि मिथ्याया विमला विमुद्धा, महारिषी ठचम ठार्या पच ॥

तत्त्व ज्ञानियो ने यह स्नान देला है । मही वह महास्नान
है जिसकी ऋषियों ने प्रशंसा की है । जिस स्नान से महर्षि
साय विमल और विमुद्ध होकर उत्तम स्नान—भाक्ष का प्राप्त
हुए हैं ॥४७॥

बारहवीं अध्यायन समाप्त

चित्तसंभूज्ज तेरहम अज्झयया

आर्षपराह्मो त्वष्टु, कासि निषायां तु इतिथयपुरम्मि ।
पुलखीए बमदत्तो, उववभो पडमगुम्माभो ॥१॥
कपिल्ले संभूभो, पित्तो पुल्ल आभो पुरिमठासम्मि ।
सेट्ठिकुल्लम्मि विषासे, धम्म सोळ्ळ पव्वह्मो ॥२॥

समूत का जीव पूर्व भव में चाण्डाल जाति के कारण
अपमानित होकर साबु हुआ और हस्तिनापुर में निवास किया ।
फिर पद्मगुह्य विमान से व्यवकर काम्पिल्य नगर में ब्रह्मनी
रानी की कुक्षि से ब्रह्मदत्तपत्नी उत्पन्न हुआ और चित्त का
जीव पुरिमठास नगर के विद्यास अग्नि कुल में उत्पन्न हुआ ।
चित्तजीव बम सुनकर बोधित हुए ॥१-२॥

कंपिल्लम्मि य नयरे, समागया दो वि पित्तसंभूया ।
सुहदुक्खफलविमार्ग, कहिति ते एकमेवम्स ॥३॥

काम्पित्य नगर में चित्त और समूत दोनों मिले और
आपस में सुख दुःख रूप फल-विपाक की बातें करने लगे ॥३॥

चक्रवर्ती महिद्दिश्रो, बंभदत्तो महायसो ।

भायरं बहुमाणेयां, इमं वयणमब्रवी ॥४॥

महान् ऋद्धिशाली, महायशस्वी, चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त,
अपने पूर्वभव के भाई को बहुमान पूर्वक यो कहने लगे ॥४॥

आसिमो भायरा दो वि, अन्नमन्नवसाणुगा ।

अन्नमन्नमणुरत्ता, अन्नमन्नहिणसिणो ॥५॥

अपन दोनों भाई, एक दूसरे के वश में रहने वाले, एक
दूसरे से प्रेम करने वाले और एक दूसरे के हितैषी थे ॥५॥

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिजरे नगे ।

हंसा मयंगतीरे, सोवाणा कासिभूमिण ॥६॥

अपन दोनों दशाणु देश में दास थे कलिजर पर्वत पर
मृग, मृतगंगा के किनारे हम और काशी में चाण्डाल थे ॥६॥

देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिद्दिश्या ।

इमा णो छड्डिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा ॥७॥

अपन देवलोक में महान् ऋद्धिमत् देव थे । यह
अपना छठा भव है, जिसमें हम एक दूसरे से पृथक् हुए हैं ॥७॥

कम्मा नियाणप्पगढा, तुमे राय विचित्तिया ।

तेसिं फलविवागेयां, विप्पओगमुवागया, ॥८॥

राजन् । तुमने मन में निदान किया था । उस निदान
कर्म का फल उदय में आने पर अपना वियोग हुआ है ॥८॥

एय सिषायां कुमलेहि दिहं, महासिषायां इसिषां पसत्थ ।
अहि सिषाया विमला विसुद्धा, महारिषी उत्तम ठायां पत्त ॥

तत्त्व ज्ञानियों ने यह स्नान देखा है । यही वह महात्मान
हू जिसकी ऋषियों ने प्रशंसा की है । जिस स्नान से महर्षि
स्नान विमल और विसुद्ध होकर उत्तम स्थान—माया का प्राप्त
हुए हैं ॥४७॥

बारहवां अध्याय समाप्त

चित्तसंभूज्ज तेरहम अज्झययां

आइपराइओ सत्तु, कसि नियायां तु इत्थिणपुरम्मि ।
सुल्लणीए धमदत्तो, उव्वओ पठमगुम्माओ ॥१॥
कप्पिन्ने संमूओ, चित्तो पुस्य जाओ पुरिमतात्तम्मि ।
सेट्ठिक्कलम्मि विसाल्ले, धम्म सोत्तञ्च पम्बइओ ॥२॥

संभूत का जीव पूर्व भव में जाग्रदास जाति के कारण
अपमानित होकर राग हुआ और इत्थिनापुर में निवास किया ।
फिर पद्मकुल विमान से उड़कर काम्पिल्य नगर में भूममी
रानी की कुक्षि से ब्रह्मदत्तपत्ने उत्पन्न हुआ और चित्त का
जीव पुरिमतात्त नगर के विद्यालय अष्टि कुल में उत्पन्न हुआ ।
चित्तजी धर्म सुनकर दीक्षित हुए ॥१-२॥

कप्पिणम्मि य नयरे, ममायया दो वि चित्तसंमूया ।
सुइदुव्वत्तफल्लविवागं, कहिति से एक्कमेवस्स ॥३॥

उच्चोदए महु कक्के थ वंमे, पवेडया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्त धणप्पभुयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥१३॥

हे चित्त ! उच्चादय, मधु, कर्क, मध्य और ब्रह्म तथा
और भी रमणीय भवन, प्रचुर धन तथा पाञ्चाल देश के
रूपादि गुणो सहित इन महलो का तुम उपभोग करो ॥१३॥

नडेहि गीएहि थ वाइएहि, नारीजणाहि परिवारयतो ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्षू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥

हे भिक्षु ! नृत्य गीत और वादिन्त्रो से युक्त ऐसी
स्त्रियों के परिवार के साथ, इन भोगो का तुम भोग करो ।
यह प्रव्रज्या तो निश्चय ही दुःखकारी है ॥१४॥

त पुव्वनेहेण कयाणुरागं, जराहिवं कामगुणेषु गिद्धं ।
धम्मस्मिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था ॥

पूर्व स्नेह के बश होकर अनुराग करने वाले और काम गुणों
में आसक्त उस चक्रवर्ती की बात सुनकर, धर्म में स्थित और
उसका हित चाहने वाले चित्त मुनि यो कहने लगे ॥१५॥

सव्व विलवियं गीय, सव्वं नट्टं विहं वियं ।

सव्वे आमरणा मारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥

सभी गीत विलाप रूप है । सभी नृत्य विडम्बना है ।

सभी आभूषण भार रूप है और सभी काम दुःख दायक है ।

वालाभिरामेषु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेषु रायं ।

विरचकामाण तवोधणाणा, जं भिवसुणां सिलगुणे रयाणां ॥

सहसोयप्यगदा, कम्मा मए पुग कडा ।

ते अज्ज परिभुञ्जामो, कियणु चित्ते बि से तदा ॥६॥

हे बित्त ! मैंने पूव जन्म में सत्य और सौम्य भक्त कर्म किये थे उनका फल यहाँ भाग रहा हूँ । क्या तुम भी वसा ही उत्तम फल भोग रहे हो ? ॥६॥

सक्का सुविण्यां सफल नगर्यां, कडास कम्माण न भोक्ख अत्ति ।
अत्थेहि कामडि य उत्तमेहि, आया मम पुण्यफलोत्तरेण ॥१०॥

मनुष्यों का सवाचरण सफल होता है और किय हुए कर्मों का फल माये बिना मुक्ति नहीं होती । मेरी धारणा भी पुण्य के फल स्वल्प उत्तम द्रव्य और काम भावों से युक्त थी ।

आयाहि संभूय महारणुमार, मदिदिदय पुण्यफलोत्तरेण ।
चित्ते पि आयाहि तदेव राय, इह्दी शुद्धं तस्स त्रियप्पमूया ॥

हे समूह ! जिस प्रकार तुम अपने का महान् श्रद्धि वालों महाभाग्यवालों और पुण्य फल युक्त जानते हो उसी प्रकार बित्त को भी जानो । मेरे भी श्रद्धि और श्रुति बहुत थी ।

महत्वरूपा वयस्यप्पमूया, गाहासुगीया नरसंघमज्जे ।

अ भिक्खुणो सीलगुणोत्तरेणा, इह जयते समणो मि आओ ॥

मुनि जिस महान् धर्म वाली गाथा को सुनकर और ज्ञान पूर्वक चारित्र्य से युक्त होकर जिस धारण में यत्नबन्ध होते हैं उस धर्माक्षर और महान् धर्मवाली गाथा को परिवर्धन में सुनकर मैं भी श्रमण हुआ हूँ ॥११॥

उच्चोदए महू कक्के थ वमे, पवेडया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्त धणप्पभुयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥१३॥

हे चित्त ! उच्चादय, मधू, कर्क, मध्य और ब्रह्म तथा
और भी रमणीय भवन, प्रचुर धन तथा पाञ्चाल देश के
रूपादि गुणों सहित इन महलों का तुम उपभोग करो ॥१३॥

नडेहि गीएहि य वाडएहि, नारीजणाहिं परिवारयंतो ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्षू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥

हे भिक्षु ! नृत्य गीत और वादिन्त्रों से युक्त ऐसी
स्त्रियों के परिवार के साथ, इन भोगों का तुम भोग करो ।
यह प्रव्रज्या तो निश्चय ही दुःखकारी है ॥१४॥

त पुव्वनेहेण कयाणुरागं, नराहिवं कामगुणेषु गिद्धं ।
धम्मस्मिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था ॥

पूर्व स्नेह के वश होकर अनुराग करने वाले और काम गुणों
में आसक्त उस चक्रवर्ती की बात सुनकर, धर्म में स्थित और
उसका हित चाहने वाले चित्त मुनि यों कहने लगे ॥१५॥

सव्व विलवियं गीयं, सव्वं नट्ट विडंबियं ।

सव्वे आभरणं भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥

सभी गीत विलाप रूप है । सभी नृत्य विडम्बना है ।

सभी आभूषण भार रूप है और सभी काम दुःख दायक है ।

वालाभिरामेषु दुहावहेसु, न तं सुह कामगुणेषु रायं ।

विरचकामाण तवोधणाणं, जं भिवखुणं सिलगुणे रयाणं ॥

राजन् ! पञ्चानियों के प्रिय किन्तु घण्ट में तु सदाता
ऐसे काम गुणों में वह सुख नहीं है आ काम-विरत होकर
शील गुण में रत रहन वाले तपासनी भिक्षुओं का हाता है ।
नरिंद जाई अइमा नराणां, सोवागजाइ दुइओ गयाणां ।
जहिं थय सम्बज्जणस्स वेस्ता, वसिअ सोवगनिवसथेसु ॥१८॥

हे नरैन्द्र ! पूर्वजन्म में हम दोनों का मनुष्यों में सबसे
एसी चाण्डाल जाति प्राप्त हुई थी । वहाँ हम सभी लोगों के
द्वेष प्राप्त होकर, चाण्डालों की बस्ती में रहते थे ॥१८॥

तीसे य जाईइ उ पावियाए, पुच्छासु सोवागनिवसथेसु ।
सम्पस्स सोगस्स दुगंछयिजा, इह तु कम्माइ पुरे कथाइ ॥१९॥

उस पाप रूप जाति में हम दोनों चाण्डाल के घर में
रहते थे और सभी लोगों से निन्दनीय थे । किन्तु यहाँ हम
पूर्वजन्त शुभ कर्म के फल भाग रहे हैं ॥१९॥

सो दाखि सिं राय महाणुभाओ, पडिदिइओ पुण्यफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइ असासपाइ, आदाबहेठ अमिथिक्खमाहि ॥२०॥

हे राजन् ! चाण्डाल भव भ किये हुए वर्माचरण के
शुभ फल से यहाँ तुम महा प्रभावशाली ऋद्धिमत् और पुण्य
फल से युक्त हुए हो । अब इन नाणवान् भागों को त्याग कर
चारित्र्य के लिए निकसो ॥२०॥

इइ जीविए राय असासपम्मि, वसिय तु पुण्योइ अकुम्बमाणो ।
से सोयई मणुसुहोपणीए, वम्म अकाळ्ह परम्मिसोए ॥२१॥

हे राजन् ! जो इम नाशवान् जीवन में अतिशय पुण्य-
कर्म नहीं करता है, वह धर्माचरण नहीं करने से मृत्यु के मुह
में जाने पर, परलोक के विषय में शोक करता है ॥२१॥

जहेह सीढो व मियं गहाय, मरूचू नरं नेह हु अंतकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मंसहरा भवंति ॥

जिस प्रकार मृग को सिंह पकड़ कर ले जाता है, उसी
प्रकार अन्त समय में मृत्यु भी मनुष्य को ले जाती है । उस
समय माता, पिता, भाई आदि अशमात्र भी नहीं बचा सकते ।

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।
एको सयं पच्चण्होइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥२३॥

उसके दुख को ज्ञातिजन नहीं बँटा सकते, न मित्र
मण्डली, न पुत्र और न बान्धव ही भाग ले सकते हैं । वह स्वयं
अकेला ही दुख भोगता है । क्योंकि कर्म, कर्त्ता का ही अनुसरण
करते हैं ॥२३॥

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धण्णधणां च सव्वं ।
सकम्मवीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुंदर पावगां वा ॥२४॥

यह आत्मा, द्विपद, चतुष्पद, क्षेत्र, घर घन, धान्य
और वस्त्रादि सभी को छोड़कर, अपने कर्मों के बश होकर,
स्वर्ग या नर्क में जाता है ॥२४॥

तं इक्कं तुच्छसरीरं से, चिह्णं दहिउं पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य, दायारमन्नं अणुसंकमंति ॥

उसके निर्जीव शरीर को चिता में रखकर जला देते हैं। फिर ज्ञातिवाले तथा स्त्री पुत्रादि दूसरे वाता का अनुसरण करते हैं ॥२१॥

उवाचिज्जई जीवियमप्यमाय, वयणां सरा हरइ नरस्स राय ।
पथासराया वयणां सुखादि, मा कासि कम्माइ मइल्लयाइ ॥

राजन ! यह आत्म सतत मृत्यु के समीप आ रहा है। बुढ़ापा मनुष्य के बर्ण का हरण करता है। हे पाञ्चबासराज ! सुना तुम महान आरम्भ करनेवाले मत बनो ॥२६॥

अहं पि वाणामि जइइ साइ, ज मे तुम साइसि वक्कमय ।
मोगा इमे संगकरा इवति, जे दुग्गया अओ अम्हारिसेहिं ॥२७॥

हे साधु ! आप कहते हैं वह मे समझता हूँ किन्तु हे माय ! वे भगवन् ब्रह्मन बता रहा है और मेरे जैसे के लिए पुत्रम है ॥२७॥

इत्थिणपुरम्मि चित्ता, इट्ठ्ठां नरवई मइदिद्वय ।

काममोगसु गिद्वणां, नियायमसुई कइ ॥ ८॥

हे चित्त ! मैंने हस्तिनापुर में महाक्रुद्धिपाल नरपति (बीर रामो) का देसकर के काम भोग में प्राप्तकन हाकर प्रसुप्त निदान किया था ॥२८॥

तस्म मे अपदिक्कलस्म, इम पयारिसं फल ।

साणमाणो वि ज घम्म, काममोगेसु मुच्चिओ ॥२९॥

उस निदान का प्रतिफल नहीं करने से मुझे यह फल

मिला है । इससे मैं वर्म को जानता हुआ भी कामभोगों में मूर्छित हूँ ॥२६॥

नागो जहा पक्कजलावसन्नो, दड्डुं थलं नाभिसमेइ तीरं ।

एवं वयं कामगुणेषु गिद्धा, न भिक्षुणो मग्गमखुव्वयामो ॥

जिस प्रकार कीचड़ में फँसा हुआ हाथी, स्थल को देख कर भी किनारे नहीं आ सकता, उसी प्रकार कामगुणों में आसक्त हुआ मैं, साधु के मार्ग को जानता हुआ भी अनुसरण नहीं कर सकता ॥३०॥

अच्चेइ कालो तूरन्ति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा ।

उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥

समय बीत रहा है, रात्रियाँ शीघ्रता से जा रही हैं, पुरुषों के भोग नित्य नहीं हैं, ये भोग स्वतः ही आते हैं और स्वतः ही मनुष्य को छोड़ देते हैं, जैसा कि फल रहित वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं ॥३१॥

जइ तं सि भोगे चइउ असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं ।

धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी ॥

हे राजन् ! यदि तुम भोगों का त्याग करने में अशक्त हो, तो धर्म में स्थिर होकर सभी प्राणियों पर अनुकम्पा रखते हुए आर्य कर्म करो । इससे तुम वैशेष शरीरवारी देव हो जाओगे ।

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धो सि आरम्भपरिग्गहेसु ।

मोहं कओ इत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि राय आमंतिओ सि ।

राजन् ! तुम्हारी भोगों को छोड़ने की बुद्धि नहीं है ।
तुम धारम्म परिग्रह में आसक्त हो । मैंने व्यर्थ ही इतना
बकबाद किया अब मैं जाता हूँ ॥३३॥

पञ्चाक्षराया वि प बभदत्तो साहुस्स तस्स वयया अक्खउ ।
अणुत्तरे भुजिय कम्ममोगे, अणुत्तरे सो नरए परिवुट्ठो ॥३४॥

साहु के वचनों का पालन नहीं कर और उत्तम काम
भोगों को भागकर मह पाञ्चाक्षराय ब्रह्मवत्त प्रमाण नरक में
उत्पन्न हुआ ॥३४॥

चित्तो वि क्खमेहि विरत्तक्खमो, उदग्गाचारित्तवो महेसी ।
अणुत्तर संजम पासइत्ता, अणुत्तर सिद्धिगइ गम्भो । चि वेमि ।

महवि चित्तजी कामभोगों से विरक्त हो उदकृत
चारित्र्य और तप तथा सर्व अष्ट धर्म का पालन कर सिद्ध
गति को प्राप्त हुए । ऐसा मैं कहता हूँ ॥३५॥

— () तेरहवीं अध्याय समाप्त () —

उसुयारिञ्ज चोदह अज्झयणा

देवा भवितास्स पुरे भवम्मि, कई चुया पगविमासवासी ।
पुरे पुरासे उसुयारणाम, खाए समिद्ध मुरलोगरम्मे ॥१॥

पूर्व भव में एक विमान में बसता हाकर रहने वाले
कुछ भीष वहाँ से घबकर इपुवार' नगर में उत्पन्न हुए—आ
प्राचीन प्रसिद्ध और समद्विवन्ध था ॥१॥

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुल्लेसुदग्गेसु य ते पसूया ।
निव्वियण संसारभया जहाय, जिणिंदममां सरणं पवन्ता ॥२॥

वे शेष रहे पूर्व कर्मों को भोगने के लिए उत्तम कुल में उत्पन्न हुए । फिर संसार के भय से निर्वेद पाकर जिनेन्द्र के मार्ग की शरण ली ॥२॥

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालक्किती य तहेसुयारो, रायत्थ देवी कमलावई य ॥३॥

वे छ जीवये थे—विशाल कीर्तिकाला इपुकार राजा व उसकी कमलावती देवी, पुरोहित और उसकी यशा पत्नी तथा तो पुरोहित कुमार हुए ॥३॥

जाईजरामच्चुमयामिभूया, बहिं विहाराभिनिविट्ठचित्ता ।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दडूण ते कामगुणे विरत्ता ॥

जन्म जरा और मृत्यु में भयभीत, संसार से परे, मोक्ष के इच्छुक उन दोनों कुमारों ने जैन मुनियों को देखकर संसार चक्र से मुक्त होने के लिए कामभोगों से विरक्त हुए ॥४॥

पियपुत्तगा दोन्नि वि माइणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाई, तहा सुचियणं तवसंजमं च ॥

ब्राह्मण के योग्य कर्म करनेवाले उस पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्रों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ । जिससे वे पूर्व भव में भली प्रकार पाले हुए तप समय का स्मरण करने लगे ।

ते कामभोगेषु असन्त्रमाया, माणुस्सएसु अे यावि दिव्वा ।
मोक्खामिकखी अमिजायसद्दा, तातं उवागम्म इमं उदाहु ॥

वे देव और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में आसक्त
होते हुए माय को इच्छा और धर्म की धृष्टा वाले होकर अपने
पिता के पास आकर यों कहन लगे ॥६॥

असासय द्दु इम विहारं, बहुअंतराय न य दीहमाउ ।
तम्हा गिहसि न रइ सुमामो, अमत्तयामो अरिस्सामि मोषां ॥

यह जीवन अनिरम्य है । धाम्य बाड़ी और उसमें भी
बिघ्न बहुत है । इसलिये हम गन्धर्वस में आनन्द नहीं है । हमें
प्राज्ञा होजिए हम मुक्तिवृत्ति ग्रहण करेंगे ॥७॥

अइ तापगो तस्य सुखीस तेसिं, तवस्स बापायकरं बपासी ।
इम सयं वेयविओ बयंति, अहा न होइ असुपास लोको ॥

यह सुनकर उनका पिता उन भावमुनियों के तब समय
में बिघ्न उत्पन्न करने वाले बचन इस प्रकार कहने लगा—
वेदविद् कहते हैं कि पुत्र रहित मनुष्य की उत्तम गति नहीं
होती ॥८॥

अदिल धए परिविस्स विप्य, पुत्ते परिदुप्य गिहसि आया ।
मोवास मोए मइ इरिययाहिं, आरएणगा होइ सुखी पसत्था ॥

हे पुत्रों ! तुम वेदों को पढ़कर ब्रह्म भाज कराकर,
और स्त्रियों से भोग भागकर अपने पुत्रों का यह भार देने
के बाद बनबासी उत्तम गति हो जाना ॥९॥

सोयगिणा आयगुणिधरोणां, मोहाणिला पजलणाहिएणां ।
 संतत्तभावं परितप्पमाणां, लालप्पमाणां बहुहा बहुं च ॥१०॥
 पुरोहिंयं तं कमसोऽणुणांतं, निमंतयंतं च सुए धरोणां ।
 जहकमं कामगुणेहिं चैव, कुमारया ते पसमिक्ख वक्कं ॥११॥

पुरोहित शोक से सतप्त एवं परितप्त हो गया । लसकें
 बहिरात्म गुणरूप ईश्वर में, मोह रूपी वायु से, शोक रूपा
 अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित हो गई । वह पुत्रों को घर में ही रहने
 का अनुमति वित्त कर रहा हुआ घन तथा कामभोग का
 निमन्त्रण देने लगा । उससे कुमार इस प्रकार कहने लगे । १०, ११

वेया अहीया न हवंति ताणां, भुत्ता दिया निंति तमंतमेणां ।
 बाया य पुत्ता न हवंति ताणां, कोणाम ते अणुमच्चेज्ज एयं ॥

पिताजी ! वेद पढ़ने से वे क्षरणभूत नहीं होते ।
 पापियों को भोजन कगने से महान् अन्धकार में ले जाते हैं,
 और पुत्र भी क्षरण रूप नहीं होते, तब आपके कथन को कैसे
 माना जाय ? ॥१२॥

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा
 संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाखी अणत्थाण उ कामभोगा ।

काम भोग, क्षण मात्र सुख और बहुत काल तक दुःख
 देने वाले हैं । थोड़े सुख और महान् दुःख वाले को सुखरूप
 कैसे कहा जाय ? ये काम भोग ससार वर्षक, मोक्ष विरोधी
 और अनर्थों की खान के समान ही हैं ॥१३॥

से कामभोगेषु असन्त्रमाया, मायुस्सएसु अे यावि दिव्वा ।
मोक्खामिकंखी अभिप्रायसद्धा, ठातं उवागम्म इम उदाहु ॥

वे देव और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगा में प्राप्त
हाते हुए मोक्ष की इच्छा और धर्म की धृष्टा वाले होकर अपने
पिता के पास आकर यों कहने लगे ॥१॥

असासयं दहु इमं विहारं, बहुअठरायं न म दीहमाउ ।
तम्हा गिहंसि न रइ लमामो, आमंतपामो अरिस्सामि मोषां ॥

यह जीवन अनित्य है । धामु बोली और उसमें भी
बिघ्न बहुत है । इसलिये हमें पुनरावृत्ति में आनन्द नहीं है । हमें
प्राप्ता दीजिए हम मुनिवृत्ति ग्रहण करेंगे ॥३॥

अइ ठायगो तत्थ सुखीय तेसिं तवस्स बापायकरं बयासी ।
इमं वयं वेयविम्भो वयंति, अइ न होइ असुयास लोको ॥

यह सुनकर उनका पिता उन भावमनियों के तप समय
में बिघ्न उत्पन्न करने वाले बचन इस प्रकार कहने लगा—
'वेदविद् कहते हैं कि पुत्र रहित मनुष्य की उत्तम गति नहीं
होती ॥८॥

अदिळ बेए परिबिस्स विप्पे, पुत्ते परिवृप्प गिहंसि आया ।
मोवाअ मोए सह इत्थियादिं, आरएसगा होइ सुखी पसत्था ॥

हे पुत्रों ! तुम वेदा को पढ़कर ब्रह्म भाष्य कराकर
धीर स्त्रियों से भोग भागकर अपने पुत्रों का गह मार देने
के बाद बनबासी उत्तम मुनि हो आना ॥९॥

जहा य अग्नी अरणी असंतो, खीरे घयं तेल्लमहा तिलेसु ।
एमेव जाया सरीरंसि सत्ता, संमुच्छई नामइ नावचिठ्ठे ॥१८॥

पुत्रो ! जिस प्रकार अरणि में अग्नि, दूध में घी और तिल में तेल दिखाई न देने पर भी स्यांग से स्वत उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीर में जीव स्वत उत्पन्न होता है और शरीर नाश होते ही नष्ट हो जाता है, बाद में नहीं रहता । अर्थात् आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है, किन्तु शरीर और आत्मा एक ही है ॥१८॥

नो, इंदियेग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।
अज्झत्थहेउ निययस्स बंधो, संसारहेउ च वयंति बंधं ॥१९॥

पिताजी ! यह आत्मा अमूर्त होने के कारण इन्द्रियो से ग्रहण नहीं होती और अमूर्त होने से नित्य है । महापुरुषो ने कहा है कि आत्मा के मिथ्यात्वादि हेतु निश्चय ही बन्ध के कारण है और बन्धन ही मसार का हेतु है ॥१९॥

जहा वयं थम्ममजाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओरुममाणा परिरक्खयंता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो ॥

पिताजी ! मोहवश और धर्म को नहीं जानने से हम आपके रोके रुक गये और पाप कर्म करते रहे, पर अब हम पुन पाप सेवन नहीं करेंगे ॥२०॥

अन्माहयम्मि लोगम्मि, सच्चच्चो परिवारिए ।

अमोहार्हि पडतीहिं, गिहंसि न रइं लभे ॥२१॥

परिपश्यते अनियतकामे, अहो य राधो परितप्यमाद्ये ।
अभ्यप्यमत्ते धम्ममेसमाद्ये, पप्पोत्ति मच्छु पुरिसे अरं च ॥

काम भोगों से अभिवृत्त पुरुष दिन रात परितप्त होता हुआ परिभ्रमण करता है और स्वजनो के लिए इषित प्रवृत्ति से धन संग्रह करता हुआ जरा और मृत्यु को प्राप्त होता है ॥१४॥

इमं च मे अरिष इमं च नरिष, इमं च मे क्रिष इमं अक्रिष ।
त एवमेव सास्रप्यमायां, दरा इरंति चि क्खं पमाए ॥१५॥

‘मेरे पास यह है और यह नहीं है मैंने यह किया और यह करना है — इस प्रकार व्याकुल बने हुए पुरुष के प्राणों को काम हरण कर लेता है । ऐसी स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाय ?

धयां पभूय सह इत्थियाहिं, सयस्सा सहा कामगुत्था पमामा ।
तव कए तप्पइ अस्स सोगो, त सम्भसाहीणमिहन सुम्मं ॥

पुत्रों ! जिस धन और स्थितियों के लिए भाव उप जपादि करते हैं वे यहाँ बहुत हैं । स्वजन और काम भोग के साधन भी पर्याप्त हैं । फिर संयम क्यों सेते हो ? ॥१६॥

असेह किं धम्मपुराहिगारे, सपखेण वा कामगुत्थेहिं वेर ।
समया भविस्सामु गुणोहपारी, बहिरिहारा अभिगम्म भिक्खु ॥

पिताजी ! धर्माचरण में जब स्वजन और काम मोक्षों का क्या प्रयोजन है ? हम गुणवन्त भ्रमण एवं मिथु बनकर अप्रतिबद्ध बिहारी होये ॥१७॥

एगओ संवसिता एं, दुहओ सम्मत्तसंजुया ।

पच्छा जाया गमिस्सामो, मिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥

पुत्री ! पहले अपने गृहवास में ही सम्यक्त्व के साथ
आवक बनकर रहे । पीछे अनगार बनकर विभिन्न कुलो में
मिक्षाचरो करते हुए विचरेगें ॥२६॥

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणां ।

जो जाणइ न भरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

पिताजी ! जिसकी मृत्यु से मित्रता हो, जिसमें मृत्यु
से भागकर छूटने की शक्ति हो अथवा जो यह भी जानता हो
कि 'मैं नहीं मरूँगा,' वहो मनुष्य, कल की इच्छा कर सकता है ।

अज्जेव धम्मं पडियज्जयामो, जहिं पवना ए पुणब्भवामो ।

अणागयं नेव य अत्थि किंचि, सद्धास्समं ए विणइत्तु रागं ।

ससार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं—जो इस आत्मा
को पहले प्राप्त नहीं हुई हो । इसलिए हम आज से ही उस साधु
धर्म को हृदय से स्वीकार करेंगे, कि जिससे फिर जन्म ही नहीं
लेना पड़े । राग छोड़कर श्रद्धा से साधु धर्म पालना ही
श्रेष्ठ है ॥२८॥

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वासिद्धि मिक्खायरियाइ कालो ।

साहाहि रुक्खो लहई समाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥

अब पुरोहित, पत्नी से कहता है—हे वाशिष्ठि ! जिस प्रकार

यह शोक सभी प्रकार से पीड़ित और बिरा हुआ है।
अमोघ शस्त्र बाराए पड़ रही है। ऐसी अवस्था में सुहृदास
में कुछ भी सुख नहीं है ॥२१॥

केण अम्माहम्भो सोगो, केण वा परिवारिभ्यो ।

क्य वा अमोहा बुद्धा, ज्ञाया चिंतादरो हु मे ॥२२॥

पुत्रों ! शोक किससे पीड़ित है ? इसे किसने बेरा
है ? कौनसी शस्त्र बाराए पड़ रही है ? मैं यह जानने के
लिए चिन्तित हूँ ॥२२॥

मच्छुद्धाज्ज्माहम्भो सोगो, ज्ञराए परिवारिभ्यो ।

अमोहा रयसी बुद्धा, एवं ताय विपाणह ॥२३॥

पिताजी ! यह साक मुत्स्य से पीड़ित अरु से बिरा
हुआ है और रात दिन रूपो अमोघ शस्त्रमारु से आयुष्य दूट
रहा है ऐसा समझना चाहिए ॥२३॥

आ आ बच्चइ रयसी, न सा पढिखियचई ।

अहम्म कुण्णमायस्स, अफत्ता वत्ति राइभ्यो ॥२४॥

ओ ओ राजियाँ व्यतीत हो रही हैं वे बापिस सौटकर
नहीं आती। पाप करने वालों की राजियाँ निष्फल ही जाती हैं।

आ आ बच्चइ रयसी, न सा पढिखियचई ।

अम्म य कुण्णमायस्स, सफत्ता वत्ति राइभ्यो ॥२५॥

ओ ओ राजियाँ बीत रही हैं वे बापिस नहीं आती।
धर्म करने वालों की ये राजियाँ सफल ही होती हैं ॥२५॥

एगथ्रो संवसिता एां, दुहथ्रो सम्मत्तसंजुया ।

पच्छा जाया गमिस्सामो, भिक्खुमाणा कुले कुले ॥२६॥

पुत्रो ! पहले अपन गृहवास में ही सम्यक्त्व के साथ
आवक बनकर रहे । पीछे अनगार बनकर विभिन्न कुलो में
भिक्षाचरी करते हुए विचरेगे ॥२६॥

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणां ।

जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

पिताजी ! जिसको मृत्यु से मित्रता हो, जिसमें मृत्यु
से भागकर छूटने की वांछि हो अथवा जो यह भी जानता हो
कि 'मैं नहीं मरूँगा,' वही मनुष्य, कल की इच्छा कर सकता है ।

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवन्ना ए पुणब्भवामो ।

अणागयं नेव य अत्थि किंचि, सद्दाखमं ए विणइत्तु रागं ।

ससार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं—जो इस आत्मा
को पहले प्राप्त नहीं हुई हो । इसलिए हम आज से ही उस साधु
धर्म को हृदय से स्वीकार करेंगे, कि जिससे फिर जन्म ही नहीं
लेना पड़े । राग छोड़कर श्रद्धा से साधु धर्म पालना ही
श्रेष्ठ है ॥२८॥

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वासिद्धि भिक्खायरियाइ कालो ।

साहाहि रुक्खो लहई समाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥

अब पुरोहित, पत्नी से कहता है—हे वाशिष्ठि ! जिस प्रकार

शास्त्राओं से ही बुरा की सामा है । शास्त्राएँ कट जान पर वह दूठ कहसाता है । उसी प्रकार पुणों से रहित हाकर मेरा घर में रहना व्यर्थ है । अब मेरे लिए भी भिक्षुक बनने का समय आ गया है ॥२६॥

पश्चाद्विहस्यो ब्व अहेह पक्खी मिप्पव्विहस्यो ब्व रस्ये नरिंदो ।
विषमसारो ब्विम्भो ब्व पोए, पहीयपुत्तो मि तहा अहं पि ॥

जिस प्रकार बिना पंख का पक्षी सग्राम में समा रहित राजा और जहाज में द्रव्य रहित व्यापारी दुकी हाता है उसी प्रकार पुणों से रहित होकर मे भी दुकी हा रहा हूँ । ३ ।

सुसंभिया कम्मगुत्था इमे स, संपिडिया अगगरसप्पभूया ।
भुज्झासु ता कामगुत्थे पणाम, पन्था गमिस्सामु पहायममं ॥

यथा कहने लगी—प्रधान रस वाले ये उत्तम काम भोग हमें पर्याप्त रूप से मिले है । हम इन्हें पन्था प्रकार से भाग कर बाद में मोक्ष मार्ग में आवेग ॥३१॥

मुत्ता रसा मोह जहाइ से बभो,
न जीवियहा पब्बहामि मोए ।

लाम आलाम च सुह च दुक्ख,
संविक्खमाणो चरिस्सामि मोणा ॥३२॥

प्रिय ! हम रस भाग कर चुक । युवावस्था हमें छाड़ रही है । अब मैं स्वयं भागा का छोड़ता हूँ । जीवन क लिए

वही किन्तु लाभ अलाभ और सुख दुःख, इन सब को समझ
कर, मुनिपन स्वीकार करता हूँ ॥३२॥

मा हु तुमं सोयरियाणु संभरे,

जुण्णो व ढंसो पडिसोत्तगामी ।

भुंजाहि भोगाई मए समाणं,

दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो ॥३३॥

जिस प्रकार उल्टे पूर जानेवाला बूढ़ा हंस पछताता है,
उसी प्रकार अपने सद्विद्यों और भोगों को स्मरण करके पीछे
पछनाना नहीं पड़े। इसलिए आप मेरे साथ भोग भोगों।
क्योंकि निष्ठाचरी और अतिवृद्ध विहार बड़ा दुःखदायक है।

जहा य भोई तणुष भुयंगो, निम्भोयणिं दिच्च पत्तेइ मुत्तो ।

एमेव जाया पयइंति भोए, ते हं कइं नाणुगमिस्समेको ॥

भद्रे ! जिस प्रकार साँप काँचली छोड़कर भाग जाता
है, उसी प्रकार दोनों पुत्र, काम भोगों को छोड़कर जा रहे हैं,
ऐसी दशा में मैं अकेला क्यों रहूँ ? क्यों न उनके साथ ही
चला जाऊँ ॥३४॥

छिंदित्तु जाल अचलं व रोहिमा, मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।

घोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥

जिस प्रकार रोहित मच्छ, जीर्ण जाल को काटकर
निकल जाता है, उसी प्रकार ये पुत्र काम भोगों को छोड़कर

जा रहे हैं । जातिबन्त बंस की तरह जो उदार एवं नीर पुरुष
हैं वे मिथ्याचरि की स्वीकार करते हैं ॥३२॥

नहेन कुषा समरुक्मता,

तपासि मातासि इक्षितु इसा ।

पसेति पुषा य पर्ई य मन्त्रे,

ते ई कर्ष नायुगमिस्समेका ॥३६॥

जैसे कौश पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं और ज्यों
को काटकर हंस उड़ जाते हैं उसी प्रकार मेरे पति और पुत्र
भी जा रहे हैं, फिर मैं अकेली क्यों रहूँ । इनके साथ क्यों न
जाऊँ ॥३६॥

पुरोहिमं स सद्युयं सदारं, सोज्जाडमिनिक्कम्म पहाय भोय ।
हुदुबसारं बिठलुचम य, रायं अमिक्क सम्पुषाय देवी ॥३७॥

पुरोहित अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ योनों को
त्याग कर वीक्षित हो गये । उसकी सम्पत्ति राजा ले रहा है ।
यह सुनकर राजरानी राजा को बार बार समझाती है ॥३७॥

बंतासी पुरिसो राय, न सो होइ पसंसिओ ।

माइगेळ परिण्वध, धयां आदाठमिज्जसि ॥३८॥

राजन् । ब्रह्म किये हुए पदार्थ को खानेवासा पुरुष
प्रसन्न नहीं होता । आप ब्राह्मण द्वारा खाड़े हुए धन को
ग्रहण करते हैं यह बुरी बात है ॥३८॥

सर्वं जगं जइ तुहं, सर्वं वावि धरां भवे ।

सर्वं पि ते अपज्जत्तं, खेव ताणाय तं तव ॥३६॥

यह सारा जगत् और समस्त धन तुम्हारा हो जाय, तो भी तुम्हारे लिए अपर्याप्त है । यह धन तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥३६॥

मरिहिसि रायं जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय ।

एको हु धम्मो नरदेव तायां, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि ॥

नरेश ! जब कभी तुम मरोगे, तब इन काम भोगों को अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा । इस ससार में एक मात्र धर्म ही कारणरूप है । इसके सिवा कोई रक्षक नहीं है ॥४०॥

नाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा, संताणल्लिक्का चरिस्सामि मोखां ।

अकिंचणा उज्जुळ्ळा निरामिसा, परिग्गहारंभनियत्तदोसा ॥

राजन् ! जिस प्रकार पिंजरे में रही हुई पक्षिणी प्रसन्न नहीं रहती, उसी प्रकार मैं भी आनन्द नहीं मानती । मैं स्नेह को तोड़कर, आरम्भ परिग्रह से विरत होकर और विषय वासना से रहित, सरल समयी बनना चाहती हूँ ॥४१॥

दवग्गिणा जहा राणे, उज्झमाणेसु जंतुसु ।

अन्ने सत्ता पमोयंति, रागदोमवसं गया ॥४२॥

एवमेव वयं मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया ।

उज्झमाणां न बुज्झामो, रागदोसग्गिणा जगं ॥४३॥

जिस प्रकार जगत् में अग्नि जगत् में जलते हुए जीवों को देखकर दूसरे जीव राग द्वय के बन्ध हाकर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार काम भागों में मूर्च्छित बनकर हम मूर्ख यह नहीं समझते कि यह सत्कार है राग द्वय रूप अग्नि में जल रहा है ।

भोग मोक्षा वमिच्छा य, सद्भुभूयविहारिणो ।

आमोपमाया गच्छति, दिया कामकमा इव ॥४४॥

जो भिषकी है वे भोगों हुए भोगों को त्याग कर प्रसन्नता से प्रव्रजित होते हैं व पक्षी धीरे बाण के समान लक्ष्मण होकर अप्रतिबद्ध विहार करते हैं ॥४४॥

इमे य वद्धा फेदति, मम इत्यञ्जमागया ।

वय न सत्ता कामसु, मनिस्सामो खदा इमे ॥४५॥

हे धार्य ! प्राप्त कामभागों में हम गूढ़ बने हुए हैं । ये काम भाग अनेक उपाय करने पर भी स्थिर नहीं रहे । इसलिए जैसे भृगु आदि ने इन्हें त्याग कर समझ लिया वैसे हम भी समझ ॥४५॥

सामिसं कुल्लसं दिस्स, वन्ममाणा निरामिसं ।

आमिसं सम्भसुज्झिता, विहरिस्सामो निरामिसा ॥४६॥

एक पक्षी के मुँह में मांस का टुकड़ा देखकर, दूसरा उस पर झपटता है किन्तु मांस का टुकड़ा छाड़ने पर वह मुन्नी हो जाता है । उसी प्रकार में भी मांस के समान समस्त

परिग्रह को छोड़कर, निरामिष होकर विचलेंगे ॥४६॥

गिद्धोवमे उ नच्चा एं, कामे संसारवृद्धे ।

उरगो सुवणपासे ज्व, संक्रमाणो तणु चरे ॥४७॥

गृध्र पक्षी की उपमा को सुनकर और कामभोगों को ससार वृद्धि का कारण जानकर, उसी प्रकार त्याग दे, जैसे कि गहड़ के सामने शक्ति साँप धीरे धीरे निकल कर चला जाता है ॥४७॥

नागो ज्व बंधणां छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।

एयं पत्थं महाराय, उसुयारि त्ति मे सुयं ॥४८॥

हे महाराज । जैसे हाथी वनघन को तोड़कर अपने स्थान को चला जाता है, वैसे यह आत्मा भी मोक्ष पाती है । ऐसा मैंने जानियों से सुना है ॥४८॥

चट्ठा विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए ।

निज्विसया निरामिसा, निजेहा निप्परिग्गहा ॥४९॥

राजा और रानी, विपुल राज्य, दुर्जय काम भोग और समस्त परिग्रह को छोड़कर, स्नेह रहित हो गये ॥४९॥

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे ।

तवं पगिज्झहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ॥५०॥

उन्होंने सम्यग् धर्मों को जानकर, काम गुणों के त्यागी बनकर, तीर्थङ्कर उपदेशित घोर तप को स्वीकार किया और

चार पराक्रम करने समे ॥५॥

एवं ते कमसो बुद्धा, सन्धे धम्मपरायणा ।

अम्ममञ्जुमठध्विगा, दुक्खस्संतगवेसिणो ॥५१॥

इस प्रकार वे सब कमसों प्रतिबाध पाकर धर्म परायण हुए और जम मत्स्य के समय से उद्विग्न होकर दुःखों का नाश करने में लगे ॥५१॥

सासणे विगयमोहायां, पुंस्वि भावयभाविषा ।

अधिरेखेव फल्लेयां, दुक्खस्संतमुदागया ॥५२॥

बोतराग के शासन में पूर्व की (धर्मित्वादि) भावना से आविष्ट हुए सहों जीव बड़े ही समय में सभी दुःखों से मुक्त हो गये ॥५२॥

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ ।

माहणी दारगा येव, सन्धे ते परिनिम्बुओ । सि वेमि ।

राजा रानी के साथ पुरोहित ब्राह्मणों और दोनों कुमार ये सब जीव मोक्ष की प्राप्ति हुए। ऐसा मैं कहना हूँ ॥५३॥

— श्रीदुर्गा प्रणमन समाप्त —



समिक्खू पंचदहं अज्झयणं

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं,
सहिण्ण उज्जुकडे निपाणछिन्ने ।
संथवं जहिअ अकामकामे,
अन्नायएसी परिव्वए स मिक्खू ॥१॥

जिसने विचार पूर्वक मुनिवृत्ति अंगीकार की, जो सम्यग् दर्शनादि युक्त, सरल, निदान रहित, ससारियो के परिचय का त्यागी, विषयो की अभिलाषा से रहित और अज्ञात कुलो की गोवरो करता हुआ विचरता है, वही भिक्षु कहलाता है ।

राओवरयं चरेअ लाढे, विण्ण वेयवियायरक्खिण्ण ।
पणे अमिभूय सच्चदसी, जे कम्मि वि ण मुच्छिण्ण स मिक्खू ॥

राग रहित होकर समय में दृढता पूर्वक विचरने वाला, असयम से निवृत्त, शास्त्रज्ञ, आत्मरक्षक, बुद्धिमान्, परोपह-जयो, समदर्शी और किसी भी वस्तु में मूर्च्छा नहीं करने वाला, भिक्षु कहलाता है ॥२॥

अकोसवहं विट्ठु धीरे, मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते ।

अन्वग्गमणे असंपहिडे, जे कसिणं अहियासए स मिक्खू ॥

कठोर वचन और प्रहार को जो समभाव से सहे, सदाचरण में प्रवृत्ति करे, सदा आत्म गुप्त रहे, मन में हर्ष विषाद

नहीं माने और समय भाग में माने वाले कष्टों का समभाव से सहन करे वही भिक्षु कहलाता है ॥३॥

पतं सयथासुखां महात्मा, सीउपह विविह च दंसमसगं ।
अम्बमामये असंपदिहे, ज कसियां महियासए स भिक्षु ॥४॥

जो जीए चम्या और घासन के मिश्रण पर तथा पीठ उष्ण हाँस मञ्जर आदि अनेक प्रकार के परीयहों के उत्पन्न होने पर कष्टों का समभाव से सहन करता है वही भिक्षु है जो सुकामिच्छाई न पूय, जो य बंद्यगं कुम्भो पसंसं । से संवए सुम्बए तवस्सी, सहिए आयगवेमए स भिक्षु ॥५॥

जो पूजा उत्कार नहीं चाहता और बन्वना प्रशंसा का हृष्टुक भी नहीं है वह संयतो सुब्रती तपस्वी आत्म-गवेयी और सम्यग्ज्ञानी है, वह भिक्षु कहलाता है ॥६॥

जेय्य पुस अहाइ जीविय, मोहं वा कसियां नियच्छई ।
नरनारिं पज्जे सपा तवस्सी, न य कोऊल उवेइ स भिक्षु ॥

जिनकी संगति से संयमी जीवन का नाश और महा मोह का जन्म होता है ऐसे स्त्री पुत्रों की संगति को जो तपस्वी सदा के लिये छाड़ देता है और कुतूहल को प्राप्त नहीं होता वही भिक्षु है ॥७॥

क्षिप्तं स्रं मोममठल्लिख, सुमियां सवत्थं वद वत्थुविअ ।
अगवियारं सत्स विअय, ज विआहिं स जीवई स भिक्षु ॥

छेदन विद्या, स्वर विद्या, भूकम्पे, अतरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दण्ड, वास्तु अग्नविचार और पशु पक्षियों की बोली जानना, इन विद्याओं से जो अपनी आजोविका नहीं करता—वही भिक्षु है ॥७॥

मत्त मूलं विविहं विज्जितं, वमण-विरेयण-धूमणेत्त सिणाणं ।
आउरं सरणं तिगिच्छियं च, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

मन्त्र, जड़ी, बूटी, विविध बंध प्रयोग, वमन, विरेचन, धूम्रयोग, आँख का अजन, स्नान, आतुरता, माता-पितादि का शरण और चिकित्सा, इन सबको जो ज्ञान से हेय जानकर छोड़ देते हैं, वे ही भिक्षु होते हैं ॥८॥

खत्तियगणउग्गरायपुत्ता, माहण भोइय विविहा य सिप्पिणो ।
नो तेसिं वयइ सिलोमपूयं, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

क्षत्रिय, मल्ल, उग्रकुल, राजपुत्र, ब्राह्मण, भोगिक और विविध प्रकार के शिल्पी, इन सब की जो प्रशंसा और पूजा नहीं करता और इनके कार्यों को सदोष जानकर त्याग देता है, वही ० ॥९॥

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अपव्वइएण व संथुया इविज्जा ।
तेसिं इहलोइयफलट्ठा, जो संथवं न करेइ स भिक्खू ॥१०॥

दीक्षा लेने के बाद या पहले जिन गृहस्थों को देखे हो, परिचय हुआ हो, उनके साथ इहलौकिक फल की प्राप्ति के लिए जो विशेष परिचय नहीं करता हो, वही भिक्षु है ॥१०॥

सयसासणपाणमोपयां, विविह साहम-साहम परेसि ।
अदण पडिसेहिण निपण्हे, वे सय न पठस्सई स मिक्खू ॥

गृहस्थ के यहाँ आहार पानी शय्या आसन तथा
अनेक प्रकार के स्वादिम स्वादिम होते हुए भी वह नहीं दे
और इस्कार करदे तो भी उस पर द्वेष नहीं करे, वही ० ११

अ किंचि आहारपाण्यग विविह, साहमसाहम परेसि सद्ध ।
ओ त विविहेण नाणुक्कंये, मज्झवयकायसुसंयुद्धं ओ स मिक्खू

गृहस्थों के यहाँ से जो कुछ आहार पानी और अनेक
प्रकार के स्वादिम स्वादिम प्राप्त करके जो बात बूढ़ादि
छात्रों पर अनुकम्पा करता है व मन बचन धीरे काया को
बल में रक्ता है वही ॥१२॥

आयामग पेन अवोदयां च, सीय सोवीरं च अवोदग च ।
न हील्लए पिहं नीरसं तु, पक्खन्ताए परिम्वए स मिक्खू ॥१३॥

आसामग जो का बलिया ठण्डा आहार काँचो का
पानी जो का पानी और नीरस आहारादि के मिलने पर जो
निम्बा नहीं करता तथा प्राप्त कुल में गाबरी करता है वही ०

सवूदा विविहा भवन्ति श्लेण,

दिग्घा माणुस्सगा तथा विरिज्झा ।

मीमा भयमेरवा ठरात्ता,

ओ सोषा न विहिज्झई स मिक्खू ॥१४॥

लोक में देव मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी अनेक प्रकार के महान् भयोत्पादक शब्द होते हैं, उन्हें सुनकर जां विचलित नहीं होना वही भिक्षु है ॥१४॥

वादं विविहं समिच्च लोए, सहिए खेयांगुणए य कोवियप्पा ।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, उवसंते अविहेडए स भिक्खू ॥

लोक में प्रचलित अनेक प्रकार के वादों को जानकर जो विद्वान् साधु, अपने आत्महित में स्थिर रहकर समय में वृद्ध रहता है और परीषदों को सहन करता है तथा सब जीवों को अपने समान देखता हुआ उपशान्त रहकर, किसी को बाधक नहीं होता—वही भिक्षु है ॥१५॥

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते,
जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के ।

अणुक्कसाईं लहुअप्पमक्खी,
चिच्चा गिह एगचरे स भिक्खू । त्ति वेमि ।

अशिल्प जीवी, गृह रहित, मित्र और शत्रु से रहित, जितेन्द्रिय, सर्वथा मुक्त, अल्प कषायी, अल्पाहारो और परिग्रह त्यागी होकर एकाकी—राग द्वेष रहित विचरता है वही भिक्षु है ॥१६॥

—पन्द्रहवां अध्यायन समाप्त—

बभचेर समाहिठाण शाम सोलसम अज्मयण

सुय मे आतसं तेयां मगवया यममंस्त्राय । इह स्वह
दरेहिं मगवतेहिं दस बभचेरसमाहिठाण पमत्ता, जे मिक्स्
सोचा निसम्म संजमबहुले संबरबहुले समाहिबहुले गुचे
गुचिदिण गुचबंमयारी सया अप्पमचे विहरेन्ना ।

हे आमुम्मान् ! मेने सुना है बही कहता हूँ तन मम
बान् ने इस प्रकार कहाया कि-जिन शासन में स्वबिर
मयबन्तों ने बह्मचर्य समाधि के इस स्थान बताया है जिन्हें
सुनकर हृदय में धारण कर समय सबर और समाधि में
बहुत ही बृठ होकर मन बचन और काया से पुष्ट गुप्तेन्द्रिय
और गुष्ट ब्रह्मचारी होने और सर्वत्र अप्रमत्त रहकर निचरे ।

कयरे खलु ते येरहिं मगवतेहिं दस बभचेरसमाहि
ठाण पमत्ता, जे मिक्स् सोचा निसम्म संजमबहुले संबर
बहुले समाहिबहुले गुचे गुचिदिण गुचबंमयारी सया अप्प
मचे विहरेन्ना ॥

प्रबन्-स्वबिर मयबन्तों ने बह्मचर्यसमाधि के ये इस
समाधि स्थान कोनसे बताया है जिन्हें सुनकर समय सबर
और समाधि में बृठ गुष्ट गुप्तेन्द्रिय गुष्ट-ब्रह्मचारी होकर
अप्रमत्त निचरे ?

इमे खलु ते धेरेहिं भगवन्तेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा
पन्न स, जे भिखु से, चा निसम्म संजमवहुले संवरवहुले समाहि-
वहुले गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

उत्तर-स्यविर भगवन्तो ने निश्चय से ब्रह्मचर्य समाधि
के दस स्थान इस प्रकार फरमाये हैं, जिन्हे सुनकर धारण०

तंजहा—विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से
निग्गंथे । नो इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता
हवइ से निग्गंथे । तं कहमिति चे, आयरियाह । निग्गंथस्स
खलु इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभ-
यारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विदग्धिच्चा वा समुप्प-
ज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा दीह-
कालियं वा रोगायंके हवेज्जा, केवल्लिपसत्ताओ धम्माओ
भंसेज्जा । तम्हा नो-इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं
सेवित्ताहवइ से निग्गंथे ॥१॥

जैसे कि-जों एकान्त शयन-आसनादि करता है वह
निर्ग्रन्थ है । जो स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त स्थान का सेवन
नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ होता है । प्रश्न-ऐसा क्यों कहा ?
आचार्य उत्तर देते हैं कि-निश्चय ही स्त्री, पशु और नपुंसक
युक्त शय्या और आसनादि का सेवन करने वाले निर्ग्रन्थ ब्रह्म-
चारी के ब्रह्मचर्य में शका होती है । भोगेच्छा जगती है । ब्रह्म-
चर्य के फल में सन्देह उत्पन्न होता है अथवा समय का भंग

घोर उन्माद हो जाता है । दीर्घकाल तक रहने वाला राग होता है । वह किसी प्रकृति धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । इसलिए निश्चय ही निग्रहियों का स्त्री, पति और गुरुसक युक्त धर्म्या धासमादि का सेवन नहीं करना चाहिए ॥१॥

नो इत्थीणां कइ कहिषा हयइ से निगंवे । त कहमिति ये, आयरियाह । निगयस्स खलु इत्थीणां कइ कहमावस्स बभयारिस्स बभवेरे संका वा कला वा विहगिन्हा वा समुप्यज्जिज्जा, मेद वा समेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवल्लिपयक्काओ धम्माओ मंसेज्जा । तम्हा नो इत्थीणां कइ कुहेज्जा ॥२॥

जो स्त्रियों की कथा नहीं करता वह निग्रह होता है । प्रश्न—ऐसा क्यों कहा ? याचार्य उत्तर देते हैं कि (पूर्ववत्)

नो इत्थीहिं सद्धिं सभिसज्जागए विहरिषा हयइ से निगंवे । त कहमिति ये, आयरियाह । निगयस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सभिसज्जागएवस्स बभयारिस्स बभवर संका वा कला वा विहगिन्हा वा समुप्यज्जिज्जा, मेद वा समेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवल्लिपयक्काओ धम्माओ मंसेज्जा । तम्हा खलु नो निगवेत्थीहिं सद्धिं सभिसेज्जागए विहरेज्जा ॥३॥

जो स्त्रियों के साथ एक धासम पर नहीं बैठता है वह निग्रह कहलाता है । (उप पूर्ववत्) ॥३॥

नो इत्थीणां इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता
 निज्झाइत्ता हवइ से निग्गंथे । तं कहमिति चे, आयरियाह ।
 निग्गंथस्स खलु इत्थीणां इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं
 आलोएमाणस्स निज्झायमाणस्स वंभयारिस्स वंभचेरे संका
 वा कंखा वा विट्ठिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा,
 उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा , रोगायकं हवेज्जा,
 केवलिपन्नताओ धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु नो निग्गंथे
 इत्थीणां इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा निज्झा-
 एज्जा ॥४॥

जो स्त्रियो को मनोहर सुन्दर इन्द्रियो को नहीं देखता,
 उनका चिन्तन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है ॥४॥

नो, इत्थीणां कुड्डन्तरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा
 कूड्यसदं वा रुड्यसदं वा गीयसदं वा हसियसदं वा थणिय-
 सदं वा कंदियसदं वा विलवियसदं वा सुणेत्ता हवइ से
 निग्गंथे । तं कहमिति चे, आयरियाह । निग्गंथस्स खलु
 इत्थीणां कुड्डन्तरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूड्यसदं
 वा रुड्यमदं वा गीयसदं वा हसियसदं वा थणियसदं वा
 कंदियसदं वा विलवियसदं वा सुणेमाणस्स वंभयारिस्स वंभ-
 चेरे संका वा कंखा वा विट्ठिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा
 लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं
 हवेज्जा केवलिपन्नताओ धम्माओ भसेज्जा । तम्हा खलु नो

निर्माये इत्थीणां कुन्तरेसि वा इत्तरेसि वा मिचतरेसि वा
 कूयसरे वा रूयसरे वा गीयसरे वा हसियसरे वा
 यणियसरे वा विठवियसरे वा सुखेमाये बिहरेज्जा ॥५॥

जो टट्टी की झोट से धयबा पहले के पाँच से या भीत
 के धन्तर से स्त्रियों के मधुर सख्य विरह बिभाप गीठ हँसा
 सिस्कारी प्रेमानाप धादि को नहीं सुनता है वह निर्धन
 कहलाता है॥५॥

नो निर्माये इत्थीणां पुम्बरय पुम्बकीलिय अणुसरिचा
 इयई से निर्माये । तं कइमिति वे, आयरियाइ । निर्मायस्स
 खुल्लु इत्थीणां पुम्बरय पुम्बकीलिय अणुसरमाअस्स बंमया-
 रिस्स बमपेरे संका वा कत्ता वा विइगिण्हा वा समुप्पज्जिआ
 मेदं वा लमेज्जा, उम्माय वा पाउखिज्जा, दीहकालिय वा
 रोगायक इवेज्जा, केअलीपमत्ताओ पम्माओ मंसज्जा ।
 तम्हा नो इत्थीणां निर्माये पुम्बकीलिय अणुसरेज्जा ॥६॥

स्त्रियों के साथ पहले भोग हुए भोग जोर की हुई श्रीका
 को जो स्मरण नहीं करता है वह निर्धन होता है ॥६॥

नो पखीय आहारं आहारिचा इयई से निर्माये ।
 तं कइमिति वे, आयरियाइ । निर्मायस्स खुल्लु पखीय
 आहारं आहारमाअस्स बंमयारिस्स बमपेरे संका वा कत्ता
 वा विइगिण्हा वा समुप्पज्जिआ, मेदं वा लमेज्जा उम्माय

वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवल-
पन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा नो निग्गंथे पणीयं
आहारं आहारेज्जा ॥७॥

जो गरिष्ठ भोजन नहीं करता, वह निग्रन्थ होता है ।

नो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ से निग्गंथे ।
तं कहमिति चे, आयरियाह । निग्गंथस्स खलु अइमायाए
पाणभोयणं आहारेमाणस्स वंमयारिस्स वमचेरे संका वा
कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा,
केवलपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा, तम्हा खलु नो निग्गंथे
अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा ॥८॥

जो प्रमाण से अधिक आहार पानी नहीं करता, वह
निग्रन्थ है ॥८॥

नो विभूसाणुवादी हवइ से निग्गंथे । तं कहमिति चे,
आयरियाह । निग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसियसरीरे
इत्थीजणस्स अभिलसणिजे हवइ । तओ एं इत्थिजणेणं
अभिलसिजमाणस्स वंमचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा
समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीह-
कालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ धम्माओ
भंसेज्जा । तम्हा नो, विभूसाणुवादी हविज्जा ॥९॥

जो शरीर की विभूषा नहीं करता, वह निग्रन्थ है ॥९॥

नो सहस्रवरसगंधफासाण्वादी हवद् से निमाये । त
 फलमिति चे, ध्यायारियाह । निर्गन्धस्तु खलु सहस्रवरसगंध-
 फासाण्वादिस्तु धमयारिस्तु धमयेरे संकथं वा कला वा निर्द
 गिन्ध्या वा समुष्पज्जिन्ध्या, भेदं वा क्षमेज्जा, ठम्माय वा
 पाउचिन्ध्या, दीहकालियं वा रोगायैक इषज्जा, केवल्लिपफासा
 धम्माभ्यो भसेज्जा । तन्हा खलु नो सहस्रवरसगंधफासाण्वादी
 इषज्जा स निमाये । इसमे धमयैरसमोदित्यस्ये हवद् ॥१०॥
 इति य इत्य सिलोगा । तं अहा—

जो मन्त्र सत्य रूप, उत्तम गंध और मधु का सेवन
 नहीं करता वह निगन्ध है—इस वसुधा ब्रह्मण्य समाधि
 स्थान है ॥१०॥

अ विविचमयाइयणां, रहिय इतिधत्तेय य ।
 धमयेरस्तु रक्खइहा, आत्तय तु निसवण ॥१॥

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए धाम ऐसे ही स्थान का सेवन
 करे जो एकान्त और स्त्री धारि से रहित हो ।

मन्त्रपन्थायज्जण्णि, धमरागविवह्णि ।
 धमयेरभ्यो मिहसु, धीरुह तु विरज्जण ॥२॥

ब्रह्मचर्य में लीन भिक्षु, ऐसी स्त्री-कथा का त्याग
 कर दे—जो मन में बाल्याद उपबानेवासी धीर काम राज
 बढाने वाली हो ॥२॥

समं च संधवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं ।

वंमचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥३॥

ब्रह्मचर्य में प्रीति रखने वाला साधु, स्त्रियों का परिचय और साथ बैठकर वार्तालाप करना सदा के लिए त्याग दे । ३।

अंगपच्वंगसंठाणं, चास्सविषपेहिं ।

वंमचेररओ थीणं, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥४॥

ब्रह्मचर्य रत साधु, स्त्रियों के अंग, प्रत्यंग, सस्यान और उनके मधुर भाषण के ढग को विकारी दृष्टि से देखना त्याग दे ॥४॥

कुड्यं रुड्यं गीयं, हसियं थणियकंदियं ।

वंमचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए ॥५॥

ब्रह्मचर्य प्रेमी साधु, स्त्रियों के मीठे शब्द, प्रेम-तदन, गाना, हँसी, सिसंकारी, विलाप आदि श्रोत्रग्राह्य विषयों को सुनना त्याग देवे ॥५॥

हासं किट्ठं रइं दप्पं, सहसाविचासियाणिय ।

वंमचेररओ थीणं, णाणुचिते कयाइ वि ॥६॥

ब्रह्मचर्य का साधक भिक्षु गृहावस्था में स्त्रियों के साथ की हुई हँसी, क्रीडा, भोजन और भागादि का स्मरण कदापि नहीं करे ॥६॥

पणीयं भत्तमाणं तु, खिप्पं मयविट्ठणं ।

वंमचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥७॥

ब्रह्मचर्य प्रिय भिक्षु, स्त्रीश्च ही मय बड़ाने 'बास' ऐसे
स्निग्ध माजनादि को सदा के लिये त्याग देवे ॥७॥

धम्मसद्ध मिय कासे, जसत्थ पविहावर्य ।

नाहुमच तु भुजेज्जा, वमचेररओ सया ॥८॥

ब्रह्मचर्य प्राप्तक, सामु, भिक्षा वसा में शूद्र एषमा
द्वारा प्राप्त किया हुआ आहार स्वस्थचित्त से समयमाना के
निर्बाह के लिए परिमित मात्रा में लेवे । प्रमाण से अधिक
आहार नहीं करे ॥८॥

विमूसं परिवन्जेज्जा, सरीरपरिमहणं ।

वमचेररओ भिक्षु, सिंगारत्थं न धारय ॥९॥

ब्रह्मचर्य-रत भिक्षु शरीर की विमूढा और शोभा बढ़ाना
त्याग देवे तथा शृंगार करने को कोई भी किया नहीं करे ।

सहे रूपे य गंधे य, रसे कासे सहैव य ।

पंचविहे कामगुणे, निवसो परिवन्जय ॥१०॥

सज्ज रूप, रस गंध और स्पृश इम पांच प्रकार के
काम पुर्णों का सदा के लिए त्याग करे ॥१०॥

आलओ वीज्जद्वरणो, वीकहा य मसोरमा ।

संयओ वेव नारीणां, तासि इंदियदरिसणां ॥११॥

कूय रूपं गीय, हाससुचासियाणि य ।

पत्तीयं मत्तपायां य, अइमाय पावमोयणां ॥१२॥

गतभृसणमिदं च, कामभोगा य दुज्जया ।
नरस्सत्तगवेस्सिस्स, विसं तालउडं जहा ॥१३॥

१-स्त्रियो से व्याप्त स्थान, २-स्त्रियो की मनोरम कथा ३-स्त्रियो से परिचय, ४ उनकी इन्द्रियो का देखना, ५ उनके मोठे शब्द, रुदन, गीत, हँसी आदि सुनना, ६ पूर्व भोगे हुए भोगों का स्मरण करना ७ गरिष्ठ आहारादि करना ८ अधिक आहारपानी करना ९ शरीर की शोभा करना और १०-मनोज्ञ शब्दादि विषय एवं दुर्जय काम भोग, ये आत्म गत्रेष्ठी पुरुष के लिए तालपुट विष के समान हैं ॥११॥१२॥१३॥

दुज्जए कामभोगे य, निच्चसो परिवज्जए ।

संकाठाणाणि सन्नाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥१४॥

एकाग्र मन रखने वाला ब्रह्मचारी, दुर्जय काम भोगों को सदा के लिए त्याग देवे और सभी प्रकार के शकास्पद स्थानों को छोड़ देवे ॥१४॥

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिडमं धम्मसारही ।

धम्मारामेण दंते, बंभचेरसमाहिण ॥१५॥

धर्मरूप बगोचे में रमण करने वाला धर्मरथ का चालक, धर्मवान्, इन्द्रियो का दमन करने वाला और ब्रह्मचर्य समाधि का धारक साधु, सदैव धर्म रूप बगोचे में ही विचरण करे ॥१५॥

देवदाक्षवगवम्भा, जक्सुरक्सुसकिम्भा ।
 बंमयारिं नमसंति, दुष्करं अे करंति त ॥१६॥

जो दुष्कर व्रत का पालन करता है उस ब्रह्मचारी को
 देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस और किन्नरादि नमस्कार
 करते हैं ॥१६॥

एत धम्मं ध्रुवे निषे, सासणं जिणदेसिण ।
 सिद्धा सिद्धमंति चायेणां, सिद्धिंस्संति सहावरे । पिबेमि

यह धर्म ध्रुव नित्य धीर णाश्रित है । जिनेश्वर
 भगवान् से उपदेशित है । इसका पालन करके धनेक जीव
 सिद्ध हुए हैं सिद्ध हाते हैं और भविष्य में भी सिद्ध होंगे ।
 ऐसा मैं कहता हूँ ॥१७॥

ॐ साप्तहर्षा अध्ययन समाप्त ॥६॥

पावसमणिल्ल सत्तदहं अज्झयणा

अ केहं उ पम्भइणं निपठ, धम्मं सुखित्ता विण्णोववमे ।
 सुदुम्वदं संहितं वादिसारमं, विहरेज्ज पच्छा य म्हाम्वदं तु ॥

कहाँ कोई निपण्य पहल धर्म सुनकर धीर वित्त से वरत
 होकर दुर्मम धर्म से प्रवर्जित हाते हैं किन्तु बाद में वे
 स्वच्छन्दता पूर्वक विचरन लग जाते हैं ॥१॥

सेज्जा दढा पाउरणंमि अत्थि, उप्पज्जई भोत्तु तहेव पाउं ।
जाणामि जं वड्ढइ आउसुत्ति, किं नाम काहामि सुएण भंते ॥

वे गुरु से कहते हैं कि—भगवन् ! मुझे दूढ़ आवास मिल गया, वस्त्र भी मेरे पास है, और भोजन पानी भी मिल जाता है तथा जो हो रहा है उसे मैं जानता हूँ, तो फिर हे आयुष्यमान् ! मैं श्रुत पढ़कर क्या करूँ ? ॥२॥

जे केई उ पंक्वडए, निदासीले पगामसो ।

भोच्चा पेच्चा सुहं सुवड, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥३॥

जो दीक्षित होकर बहुत निद्रालु हो जाता है, और खा पीकर सुख से सो जाता है, वह पाप श्रमण कहलाता है ।

आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।

ते चेव खिसई बाले, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥४॥

जिन आचार्य, उपाध्याय से श्रुत और विनय प्राप्त किया है, उन्हीं की निन्दा करने वाला अज्ञानी, पाप श्रमण कहलाता है ॥४॥

आयरियउवज्झायाणां, संम्मं न पंडितेप्पई ।

अप्पंडिपूयाए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥५॥

जो घमण्डी होकर आचार्य, उपाध्याय की सुसेवा नहीं करता, और गुणीजनों की पूजा नहीं करता, वह पाप श्रमण कहाता है ॥५॥

संमदमस्यो पायासि, भीयासि हरियासि य ।

असंजय संजयमभमाये, पावसमये चि बुधई ॥६॥

प्राणियों बीज और हरी का भवन करने वाला और स्वयं प्रसमती होकर भी अपने का समता भानने वाला पाप समन कहलाता है ॥६॥

सवार फलम पीई, निसिन्ध पायकवस्त ।

अप्यमन्त्रियमादई, पावसमये चि बुधई ॥७॥

जा तुषादि का बिछीना पाउ घासन स्वाभ्यास भूमि पाँव पोंछने का वस्त्र इन्हें बिना पूँज बछा है—काम में सेठा है वह पाप भमन कहलाता है ॥७॥

द्वद्वस्य शरई, पमये य अमिक्स्वर्णा ।

उर्ध्वमये य चहे य, पावसमये चि बुधई ॥८॥

जा शीघ्रता पूर्वक-घबटना से जसता है प्रमादी होकर बालक भादि को उसजता है और कायो है वह पाप धमन कहलाता है ॥८॥

पडिलेई पमच, अउउमई पायकवस्त ।

पडिलेहा असाउसे, पावसमये चि बुधई ॥९॥

जो प्रतिशेकन म प्रमाद करता है पाव और कम्बलादि को इपर उधर बिछर रकता है और प्रतिभसना में उपयाग नहीं रकता वह पाप धमन कहलाता है ॥९॥

पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु गिसामिया ।

गुरुं पारिभावण निचं, पावसमणे चि वुच्चई ॥१०॥

जो प्रतिलेखना में प्रमाद करता है और विकथादि सुनने में मन लगाता है । और हमेशा शिक्षादाता के सामने घोलता है, वह पाप श्रमण कहाता है ॥१०॥

बहुमाई पपुहरी, थद्वे लुद्वे अणिग्गहे ।

असंविभागी अवियत्ते, पावसमणे चि वुच्चई ॥११॥

प्रति कपटी, वाचाल, अभिमानी, लुब्ध, इन्द्रियो-को खूली छोड़ने वाला, असंविभागी और अप्रतिकारी, पाप श्रमण०

विवायं च उदीरेइ, अवम्मे अत्तपन्नहा ।

बुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे चि वुच्चई ॥१२॥

शान्त हुए विवाद को पुनः जगाने वाला, सदाचार रहित, आत्मप्रजा को नष्ट करने वाला, लड़ाई और बलेश करने वाला पाप० ॥१२॥

अयिरामणे कुक्कुडए, जत्थ तत्थ निसीयई ।

आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे चि वुच्चई ॥१३॥

अस्थिर आसन वाला, कुचेष्टा वाला, जहाँ कहीं भी बैठजाने वाला और आसनादि के विषय में अनुपयोगी, पाप०

ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं न पडिलेहइ ।

संधारण अणाउत्ते, पावसमणे चि वुच्चई ॥१४॥

जो सञ्चित रख सें मरे हुए पौरो को बिना पूजे भी सो जाता है जो शय्या की प्रतिसेखना भी नहीं करता और संचारे के विषय में अनुपयानी रहता है वह पाप० ॥१४॥

दुग्धदहीविगर्भो, आहारेऽभिमिक्षणा ।

अरण य तबोकम्मे, पावसमणे सि पुण्ये ॥१५॥

जा दूध, दही और विषेयों का बार बार आहार करती है और जिसकी उप कर्म में प्रीति नहीं है वह पाप० ।

अटवतम्मि य छरम्मि, आहारेऽभिमिक्षणा ।

पोऽभो पडिचोए, पावसमणे सि पुण्ये ॥१६॥

जो सुष के अस्त होने तक बार बार खाता रहता है और ऐसा नहीं करने की शिक्षा देने वाले बर के सामने वासता है वह पाप० ॥१६॥

आपरियपरिण्वा, परेयासंडसेव ।

गायांगणिए दुग्धूए, पावसमणे सि पुण्ये ॥१७॥

आचार्य का छोड़कर पर पावण्ड में जाने वाला और छः छः मास में मर्ज बरलने वाला निन्दनीय साधु पाप०

सये गेई परिण्वज्ज, परगेइसि बायरे ।

निमित्तेय य बवइरई, पावसमणे सि पुण्ये ॥१८॥

जो अपना बर छोड़कर साधु हुआ फिर भी ब्रह्म पुहस्थों के यहाँ रहनासुप हाकन फिरता है और निमित्त बताकर, प्रयोपार्जन करता है वह पाप अमण है ॥१८॥

सन्नाहर्षिदं जेमेइ, नेच्छई सामुदाणियं ।

गिहिनिसेजं च वाहेइ, पावसमणे चि बुच्चई ॥१९॥

जो अपनी जातिवालों के आहार को ही भोगता है, किन्तु सामुदानिकी भिक्षा नहीं लेता और गृहस्थ की शय्या पर बैठता है वह पाप० ॥१९॥

एप्रारिसे पंचकुसीलऽसंबुडे, रूवंधरे मुण्णिपवराण हेड्डिमे ।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए, न से इइं नेव परत्थ लोए ॥

जो ऐसे पाँच प्रकार के कुशीलों (पावसंस्थ, उसन्न, कुशील, ससक्त और स्वच्छन्द) से युक्त, सेंबर से रहित और वेशधारी है, वह श्रेष्ठ मुनियों की अपेक्षा नीच है। वह इस लोक में विष को तरह निन्दनीय है। उसका न तो यह लोक सुषरता है न परलोक ही ॥२०॥

जे वज्जए एते सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्जे ।
अयंसि लोए अमयं व पूइए, आराहए लोगमिणं तढा परं ॥

जो मुनि, इन दोषों को सदा के लिए छोड़ देता है, वह मुनियों में सुव्रती होता है। वह इस लोक में अमृत के समान पूजनीय होकर इस लोक और परलोक की आराधना कर लेता है।

—सतरहवाँ अध्यायन समाप्त—

सजद्वल अठारहम अज्भयणा

कपिले नयरे राया, ठदिप्पवत्तवाहणे ।

नामेणां संघण नाम, मिगम्भ ठवखिमाए ॥१॥

कंपिलपुर का सजद नामवाला राजा बहुतसी सेना
और बाहनों से सज्जित हाकर भुगमा के लिये नगर के बाहर
निकला ॥१॥

इयाखीए गयाखीए, रहाखीए तहेव य ।

पायचाखीए महया, सम्भओ परिवारिए ॥२॥

मिए सुमिथा इयगओ, कपिल्लुज्जाव केसरे ।

भीए सति मिए तत्थ, बहेइ रसमुच्छिए ॥३॥

वह छोटे पर सवार हांकर काइ हाथी तथा दलों के
समूह और पायदल—इन चार प्रकार की बड़ी सेना से घिरा
हुआ कम्पिलपुर के केसर उद्यान में पहुँचा और रस मुच्छित
होकर हिरण्यो को अमित करता हुआ भयभीत और बड़े हुए
भूतों को मारने लगा ॥२-३॥

अइ कसरम्मि उज्जावे, अल्लगारे तबोधवे ।

सन्मज्जपन्मज्ज संहुत्ते, पम्पन्मज्जणी भियायइ ॥४॥

उस केसर उद्यान में एक तपोवनी धनवार स्वाध्याय
और ध्यान से युक्त होकर धर्मध्यान ध्याते थे ॥४॥

अप्फोवमंडवम्मि, भायइ खवियासवे ।

तत्सागए मिगे पासं, वहेई से नराहिवे ॥५॥

वे महात्मा आश्रमों का क्षय करते हुए, वृक्ष लताओं के मण्डप में ध्यान कर रहे थे । राजा ने उनके पास आये हुए मृगों को मारा ॥५॥

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं ।

हए मिए उ पासिचा, अणगारं तत्थ पासई ॥६॥

घाड़े पर चढ़ा हुआ राजा, शीघ्र ही वहाँ आया और अपने मृगों को देखा, साथ ही अनगर को भी देखा ॥६॥

अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणाहओ ।

मए उ मंदपुण्णेणं, रसगिद्धेण घत्तुणा ॥७॥

मुनि को देखकर राजा भयभीत हुआ । वह सोचने लगा कि मैं रसलोलुप, हतभागी हूँ । मेने निरपराध जीवों को मारा और अनगर को भी दुखित किया ॥७॥

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो निवो ।

विणएण वंदए पाए, भगवं एत्थ मे खमे ॥८॥

राजा घाड़े से नीचे उतरा और मुनिराज के चरणों में विनय पूर्वक नमस्कार करता हुआ कहने लगा—“हे भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा करे, ॥८॥

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे भाणमस्सिए ।

रायाणं न पडिमंतेइ, तओ राया भयहुओ ॥९॥

मुनिराज ध्यान में मग्न थे इससे मीन रहे और राजा का कुछ भी उत्तर नहीं दिया । इससे राजा अधिक भयभीत हुआ ॥१८॥

संजयो अहमस्मीति, भगव पाहाराहि म ।

कृत्तेण्य अरुगारे, इदं नरकोडिओ ॥१९॥

हे भगवन् ! मैं संजय राजा हूँ । आप मुझसे जानिये क्योंकि कृत्तु हुआ अन्याय अपने तप से सब कराओं मनुष्यों को भस्म कर सकता है । मुनिराज ध्यान पालकर बाल- ॥१९॥

अमओ पत्थिवा ! तुम्ह, अमयदाया मवाहि य ।

अविधे जीवलोगमि, किं हिंसाए पयञ्जसि ॥२०॥

हे पाथिव ! तुम्ह अन्याय है । जब तू भी अन्याय बाला बन । इस नाशवान् ससार में जीवों की हत्या में क्यों घासकट्ट हो रहा है ॥२०॥

अपा सम्भ परिष्पञ्ज, गतम्भमसस्स ते ।

अविधे जीवलोगमि, किं रज्जमि पसञ्जसि ॥२१॥

जब सब कुछ यही छोड़कर कर्मों के बंधा होकर पर भ्रातृ में जाना है तो इस अनित्य ससार और राज्य में क्यों लुब्ध हो रहा है ॥२१॥

जीविय पेव रुव च, विज्जुसंपाय चपस ।

अत्थ त म्भसि राय, पेत्थत्थं नावमुत्थस ॥२२॥

राजन् ! तुझे परलोक का बाध नहीं है । अरे तू जिस पर मोहित हो रहा है, वह भोगमय जीवन और रूप, बिजली के चमत्कार की तरह चञ्चल है, नाशवान् है ॥१३॥

दाराणि य सुया चैव, मित्रा य तद् बन्धवा ।
जीवंतमणुजीवंति, मयं नाणुव्वयंति य ॥१४॥

राजन् ! स्त्री, पुत्र, मित्र और बान्धव, जीते जागते हुए के ही साथी हैं । मरने पर ये कोई साथ नहीं चलते ॥१४॥

नीदरंति मयं पुत्रा, पितरं परमदुक्खिया ।
पितरो वि तद्वा पुत्ते, बंधू रायं तवं चरे ॥१५॥

राजन् ! मरे हुए पिता को पुत्र अत्यन्त दुखी होकर निकाल देता है, इसी प्रकार पुत्र के मरने पर पिता, बन्धु के मरने पर भाई, मुर्दे का निकाल देता है । इसलिए तुझे तप का ही आचरण करना चाहिये ॥१५॥

तस्यो तेणज्जिए दच्चे, दारे य परिरक्खिए ।
कीलंतिऽन्ने नरा राय, दद्धतुद्धमलं किया ॥१६॥

मरने के बाद उसके उपाजंन किये हुए धन का और रक्षा की हुई स्त्रियों का, दूसरे हृष्ट पुष्ट और विभूषित जन उपभोग करते हैं ॥१६॥

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मणा तेण संजुत्तो, गच्छइ उ परं भवं ॥१७॥

मत्तात्मा उन दुम फस खाता या दुःसप्रव कर्मों को
छात्र लेकर परमेश में जाता है जिसका उपासन उसने अपने
जीवन में किया है ॥१७॥

सोऽस्य सस्य सो धम्म, अश्वगारस्स अतिण् ।

मइया संवेगनिब्बेदं, समारम्भो नरादिवो ॥१८॥

उन मुक्तिराज से धर्म सुनकर वह नराधिपति महान्
संवेग और निर्वेद को प्राप्त हुआ ॥१८॥

संजम्भो चइठ रत्तं, निक्खतो जिणसाससे ।

गह्मालिस्स भगवम्भो, अश्वगारस्स अतिण् ॥१९॥

समधि राजा राज्य को छोड़कर भगवान् गर्वभासी
धनधार के पास जिन शासन में शोभित हो गया ॥१९॥

विवा रइ पम्भइए, सुत्तिण परिमामइ ।

जहा से बीसई रुबं, पसस से उहा मणो ॥२०॥

राष्ट्र का त्याग कर प्रसजित हुए क्षत्रिय राजाधि ने
संजय राजाधि से कहा कि जैसा आपका कप सुन्दर है वैसा
ही आपका मन भी प्रसन्न है । उन्होंने पूछा- ॥२०॥

किं नामे किं गोत्थ, कस्मिद्वाए य माइणे ।

कइ पडिपरसि बुद्ध, कइ दिस्सीर चि बुद्धसि ॥२१॥

प्रश्न-आपका नाम क्या है ? गोत्र क्या है ?
आप किस निय माह्व हुए ? आप मुद्गजनों की सेवा

किस प्रकार करते है ? और किस प्रकार विनयवान् कहलाते है ? ॥२१॥

संजओ नाम नामेणं, तदा गोत्तेण गोयसो ।

गदभाली ममायरिया, विज्ञाचरणपारगा ॥२२॥

उत्तर—मजय मेरा नाम और गौतम गोत्र है । गदभालो मेरे आचार्य हैं—जो विद्या और चारित्र के पारगामो हैं ॥२२॥

किरियं अकिरियं विखयं, अन्नाणां च महासुणी ।

एणहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासइ ॥२३॥

हे महामुनि ! क्रियावाद, अक्रियाद, विनयवाद और अज्ञानवाद, इन चारवादो में रहकर वे वादी क्या बोलते है ?
मर्थात् वे एकान्त प्ररूपणा करते है ॥२३॥

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिणिव्वुए ।

विज्ञाचरणसंपन्ने, सन्त्वे सन्त्वपरक्कमे ॥२४॥

विद्या और चारित्र सम्पन्न, सत्यवादी, सत्य पराक्रम वाले और परिनिवृत्त सर्वज्ञ ऐसे अ० महावीर ने इन वादो का कथन किया है ॥२४॥

पडंति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो ।

दिब्बं च गइं मच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं ॥२५॥

पाप कर्म करने वाले घोर नरक में पडते है और आर्य धर्म का आचरण करने वाले दिव्य गति में जाते है ॥२५॥

मायासुइयमेय तु मुया माया निरत्यया ।
सज्जममाशो वि अह, वत्तामि इरियामि य ॥२६॥

ये बादी माया पूर्वक जानते हैं । इसलिए उनकी बाणी मिथ्या एवं निरर्थक है । उनके मिथ्या कथन को सुनकर भी मैं नयम न स्थित हूँ और यतनापूर्वक भसता हूँ ॥२६॥

मज्जे ते विइया मज्झ, मिञ्जदिह्मी अकारिया ।
विज्जमाशो परे सोए, सम्म आसामि अप्पग ॥२७॥

मने उन सब बाहों को जान लिया है । वे सब मिथ्या बुद्धि और धनार्थ है । मैं परसोक और धारणा की बिद्यमानता सम्मक प्रकार से जानता हूँ ॥२७॥

अहमासि महापासे, छुर्मं वरिससओवमे ।
वा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमे ॥२८॥

मैं महाप्राण विमान में धुतिमान् देव था । यहाँ की सौ वर्ष की पूर्णायु के समान वहाँ देवों की पत्योपम आनन्दोपम जैसा मेरी वर्षशतायम आयु थी ॥२८॥

से जुए वमसोगाओ, माणुसं मयमामए ।
अप्पसो य परेसिं च, आउ आसे जहा उहा ॥२९॥

ब्रह्मात्मक से व्यदकर मैं मनुष्य अब न थाया । अब मैं अपर्णा और दूसरों की प्रायु का यथावध्य जानता हूँ ॥२९॥

नाणरुदं च छंदं च, परिव्रजेज्ज संजए ।

अणुद्धा जे य मव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ॥३०॥

क्षत्रिय राजर्षि ने कहा—साधु, विविध प्रकार की रुचि और अभिप्राय तथा समस्त धनर्थों का सर्वथा त्याग कर दे । और सम्यग्ज्ञान पूर्वक समय पाले । ३०॥

पडिक्कमामि पसिणाणां, परमंतेहि वा पुणो ।

अहो उट्ठिए अहोराय, इइ विज्जा तवं चरे ॥३१॥

मे सावद्य प्रश्नों और गृहकार्यों से निवृत्त हो गया हूँ । विद्वानों को इस प्रकार तपाचरण करना चाहिए ॥३१॥

जं च मे पुच्छसि काले, सम्मं सुद्धेण चेषसा ।

ताडं पाउकरे बुद्धे, तं नाणां जिणसासणे ॥३२॥

हे मुनि । घाप मुझ से शुद्ध चित्त से सम्यक् प्रश्न पूछो । ऐसा ज्ञान जिन शासन में विद्यमान है, जो सर्वज्ञों का कहा हुआ है ॥३२॥

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिव्रजए ।

दिट्ठिए दिट्ठिसंपन्ने, धम्मं चरसु दुचरं ॥३३॥

धीर पुरुष को चाहिए कि क्रिया में विश्वास करे और अक्रिया को त्याग दे और दृष्टि से सम्यग्दृष्टि सम्पन्न होकर दुष्कर धर्म का आचरण करे ॥३३॥

एव पुण्णपयं सोच्चा, अत्यधम्मोवसोहियं ।

भरहो वि मारहं वासं, चिच्चा कामाइ पव्वए ॥३४॥

इस माता रूप धन के देने वाला बर्म से धामित पुष्प
पक्षों को सुनकर 'भरत चक्रवर्ती' ने भारतवर्ष और काम भागों
को छाड़कर दाक्षा सी ॥३४॥

सगरो वि सापरंत, भरद्वाज नरादिवो ।

इत्सरिय केवल द्विष्वा, दयाद परिनिन्मुदे ॥३५॥

सगर 'चक्रवर्ती' ने सागर पर्यन्त भारतवर्ष और ऐश्वर्य
को छाड़कर दया से (समय प्राप्तकर) मुक्त हुए ॥३५॥

अज्ञा भारद्वासं, अक्षरही महद्द्विषो ।

पञ्चजमप्युवगमो, मयव नाम महाब्रह्मो ॥३६॥

महान् मधरबी और महान् अद्विषाली 'मयवा' नाम
के चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को त्याग कर सीमा प्रमीकार की ।

सयांकुमारो मण्डुस्सिद्धो, अक्षरही महद्द्विषो ।

पुत्र रन्ते ठवेठ्यां, सो वि राया तव धर ॥३७॥

महा अद्विषाली 'सनत्कुमार' चक्रवर्ती मरेन्द्र ने अपने
पुत्र का राक्षस पर स्थापित कर प्रसन्न लेकर तपाचरण किया ।

अज्ञा भारद्वासं, अक्षरही महद्द्विषो ।

संती सतिकरे सोर, पत्तो गहमसुत्तरं ॥३८॥

महा अद्विषाली सोर के धामित के करने वाले
'सामिताय' चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को त्याग कर भाक्ष प्राप्त
किया ॥३८॥

इक्ष्वाग्रायवसभो, कुंभू नाम नरीसरो ।
त्रिक्सायकिती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३९॥

इक्ष्वाकु वंश के राजाओं में श्रेष्ठ और विख्यात कीर्ति वाले भगवान् 'कुन्धुनाथ नरेश्वर' ने मोक्ष गति प्राप्त की ।

सागरंतं चइत्ताणां, भरहं नग्वरीसरो ।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

समुद्र पर्यन्त भारतवर्ष को त्याग कर 'अर' नाम के नरेन्द्र ने, कर्मरज को उड़ाकर मोक्ष प्राप्त की ॥४०॥

चइत्ता भारहं वासं, चक्रवट्टी महिडिद्वयो ।
चइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे ॥४१॥

महा समृद्धिमान् 'महापद्म' नाम के चक्रवर्ती ने भारत वर्ष और उत्तम भागों का त्याग कर तप अंगीकार किया ४१।

एगच्छत्तं पसादित्ता, महिं माणनिस्सदणो ।
हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

शत्रुओं के मान का मर्दन करके पृथ्वी पर एक छत्र राज्य करने वाले नरेन्द्र 'हरिषेण' चक्रवर्ती ने दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया ॥४२॥

अन्निओ रायमहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे ।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४३॥

हुनाचों सभाओं के साथ जय नाम के नरेन्द्र ने भागों का त्याग किया और जिस प्रणीत तप समय का सवन कर माख पाये ॥४३॥

दसण्णरत्तं मुदिय, चरुत्तायां मुणी चर ।

दमण्णमरो निस्सुतो, मस्स सकेण चोइमो ॥४४॥

साक्षात् इन्द्र ने प्रणीत हुआ 'चमाणमर' राजा समस्त वसाण देश का त्याग कर मुनि होकर तपाचरण किया ॥४४॥

नमी नमेइ अप्पायां, सस्सं सक्ख चोइमो ।

चरुत्त गेह चरुइही, सामण्णे पज्जुवट्ठिमो ॥४५॥

साक्षात् इन्द्र से प्रेरित हुए 'नमिराज' ने अपनी धारमा की विनम्र बनाया और विदेह देश तथा चर को छोड़कर समय प्रणीकार किया ॥४५॥

करकइ कस्सिगेसु, पसासेसु य दुम्भरो ।

नमी राया विदेहेसु, गघारेसु य नग्गई ॥४६॥

कलिंग देश में 'करकई' पाण्ड्यास देश में 'दुर्मन्' विदेह देश में 'नमिराज' और गाम्धार देश में 'निग्गई' राजा हुआ ॥४६॥

एए नरिंदसमा, निस्संता जिणसासणे ।

पुणे रन्ध्रे ठवेत्तयां, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥४७॥

राजाओं में नृपम के समान श्रेष्ठ य सब राजा प्रपन्न

पुत्रों को राज्य पर स्थापित कर, जिन शासन में दीक्षित हुए
और श्रमण वृत्ति का पालन किया ॥४७॥

सोवीररायवसभो, चडत्ताणं मुणी चरे ।

उदायणो पव्वद्दओ, पत्तो गडमणुत्तरं ॥४८॥

सोवीर देश के राजाओं में श्रेष्ठ 'उदायन' राजा ने
राज्य छोड़ कर दीक्षा ली, और सयम पाल कर मोक्ष पाया ।

तहेव कासिराया वि, सेओ सच्चवरकमे ।

कामभोगे परिचज्ज, पहणे कम्ममहावणां ॥४९॥

इसी प्रकार काशोराज ने काम भोगों को छोड़ कर,
श्रेष्ठ सत्य एवं सयम में पराक्रम करके कर्म रूप महावन को
जला दिया ॥४९॥

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकिचि पव्वए ।

स्ज्जं तु गुणसमिद्ध, पयहिदु महाजसो ॥५०॥

इसी प्रकार निमल कीर्तिवाले महायशस्वी 'विजय'
राजा ने गुण समृद्ध राज्य को छोड़ कर दीक्षा ली ॥५०॥

तहेवुगं तवं किन्वा, अण्वक्खित्तेण चैयमा ।

महन्वलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं ॥५१॥

'महाबल' नाम के राजा ने, एकाग्र मन से उग्र तप
करके मोक्ष रूप लक्ष्मी को प्राप्त किया ॥५१॥

कह धीरो अहंऊहि, उम्मत्तो ज्व महि चरे ।
एए बिसेसमादाय, घूरा दडपरकमा ॥५२॥

जो धीर पुरुष है व कुहेतुओं में पड़कर उन्मत्त की तरह पृथ्वी पर कैसे बिचर सकते हैं ? धर्मात्—नहीं बिचर सकते । पूर्वोक्त भरतादि महापुरुष इसा विधयता का ग्रहण करके धूरवीर और दृढ़ पराक्रमी हुए ॥५२॥

अञ्चसनियाखसमा, सखा म भासिया गई ।
अतरिंसु तरतेगे, सरिस्तंति असागया ॥५३॥

मनिजी । मन बह बाणी कही है—जो कर्म मन शाबने में अत्यन्त समर्थ है इस बाणी का मुमकर मूलकाल में धनक तिर गय बलमान में तिर रहें है और अविष्य में तिरेंगे ।

कह धीर अहंऊहि, अचायी परियावसे ।
सखसंगविनिम्मुके, सिद्धे मरह नीरण ॥५४॥

एसा कीन धीर पुरुष है जो कुहेतुओं का ग्रहण करके अपनी आत्मा का अहित करेगा ? धर्मात् नहीं करेगा । बुद्धि—मान् बही है जो सब प्रकार क सगो से मक्त हाकर सिद्ध हो जाता है ॥५४॥

()—घठारहवीं अध्यायन समाप्त—()



मियापुत्तीयं एगूणावीसइमं अज्झयणां

सुग्गीवे नयरे रम्मे, काणुज्जाणसोहिण् ।

रापा बलभदित्ति, मिया तस्मग्गमाहिसी ॥१॥

अनेक प्रकार के उपवनों में सुशोभित और रमणीय
ऐसे सुग्रीव नगर में बलभद्र नामक राजा था । उसके मृगा
नाम की पटरानी थी ॥१॥

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुण् ।

अम्मापिऊण दइण्, जुवराया दमीमरे ॥२॥

उनके 'बलश्री' नाम का पुत्र था जो 'मृगापुत्र' के नाम
से विख्यात था । वह युवराज, माता पिता का प्रिय और दुष्टों
का दमन करने वाला-दमोश्वर था ॥२॥

नंदणे सो उ पामाण्, कीलण सह इत्थिहिं ।

देवे दोगुंदगो चेव, निचं मुइयमाणसो ॥३॥

वह युवराज, नंदन वन के समान भवन में, स्त्रियों के
साथ दोगुन्दक देव की तरह, सदैव प्रसन्नचित्त रहने वाला था ।

मणिरयणकोट्टिमत्तले, पासायाल्लोयणद्धिओ ।

आलोएइ नगरस्स, चउक्कच्चियच्चरे ॥४॥

जिमके अग्नि में मणि और रत्न जड़े हैं, ऐसे महल में

से वह युवराज नार के तीन चार और बहुत मार्गों वाले बाजार देख रहा था ॥४॥

अह सत्य अहम्भूत, पासई समणसंजय ।

तव नियमसज्जमवरं, सीलइह गुणभागरं ॥५॥

युवराज ने एक क्षमण को—जा तप नियम धीर समय को धारण करनेवाला धीमवान् धीर गुणा के भण्डार का बर्तन आते हुए देखा ॥५॥

त पेइई मियापुत्त, दिट्ठीए अभिमिसाए उ ।

कहिमभेरिसं रुब, दिट्ठुप्पुं मए पुरा ॥६॥

मृगापुत्र उन मुनि को एक दृष्टि से देखने लगा । उसे विचार हुआ कि मैंने इस प्रकार का रूप पहले कहीं देखा है ।

साहुस्स दरिस्सये तस्स, धम्मपसावम्मि ओहये ।

मोहगयस्स संतस्स, जाइसरयां समुप्पभ ॥७॥

साधु के वर्णन निमित्त ऐसे मोहनीय कर्म का लक्ष्योपशम होने से तथा धान्तरिक भावों की क्षुद्रि से मयापुत्र को जाति-स्मरण ज्ञान हुआ ॥७॥

देवलोगपुत्तो संतो, माप्पुसं भवमागमो ।

सखिस्सबाण समुप्पय्ये, जाइ सरइ पुरास्सय ॥८॥

सभीज्ञान उत्पन्न होने से अपने पूर्व जन्म का स्मरण किया । उसे ज्ञात हुआ कि मैं देवलोका से प्यारकर मनुष्य भव में आया हूँ ॥८॥

जाईसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिहिद्वए ।

सरई पोराणियं जाई, सामण्णं च पुरा कयं ॥६॥

जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होने पर, महाकृद्विवाले मृगापुत्र, अपने पूर्व जन्म और उसमें पाले हुये समय को याद करने लगे ॥६॥

विमएसु अरज्जंतो; रज्जंतो संजमम्मिय ।

अम्मापियरमुदागम्म, इमं वयणमव्ववी ॥१०॥

विषय भोगों में रजित न होकर और समय में प्रीति रखते हुए मृगापुत्र, माता पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगे ॥१०॥

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्खज्जोणिसु ।
निव्विएणकामो मि महएणवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामि
अम्मो ॥११॥

हे माता । मैंने पंच महावृत्तों को जान लिया है, और नरक तिर्यञ्च में गमे हुए दुखों को भी जान लिया है । मैं ससार समुद्र से निवृत्त होने का अभिलाषी हूँ । मैं वीक्षा लेना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दो ॥११॥

अम्म ताय मए भोगा, भुत्ता विमफलोवमा ।

पच्छा कइयविदागा, अणुबंध दुहावहा ॥१२॥

हे माता पिता । मैंने काम भोगों को भोग लिया ।

ये विषकल व समान हैं । इनका परिणाम अत्यन्त कटु और दुःख दायक है ॥१॥

इम सरीरं अणिञ्च, असुई असुईसंभव ।

असामयावासमिण, दुक्खुकेप्पेयाय भायस ॥१२॥

यह शरीर अतित्व इ अणुविणु ह अशुचि से ही इसको उत्पत्ति हुई है । इसमें जोख का निवास भी अशाश्वत है और यह दुःखों तथा क्लेशों का भाजन है ॥१२॥

असासए सरीरम्मि, रइ नोवसमामह ।

पण्णा पुरा व चइयम्वे, पेत्थदुम्भुयसन्निमे ॥१३॥

पानी के बुलबुले के समान अशाश्वत ऐसे शरीर में मुझे प्रीति नहीं है क्योंकि यह जो पहले या पीछे छोड़ना ही पड़ेगा ॥१३॥

माणुसत्ते असारम्मि, दाहीरोपाय आसए ।

अरामरखपत्थम्मि, खण पि न रमामह ॥१४॥

व्याधि और रोगों के धर तथा जन्म मरण से घिरे हुए, इस असार मनुष्य जन्म में मैं एक क्षण भर भी आनन्द नहीं मानता ॥१४॥

वम्म दुक्खं सरा दुक्ख, रोगाणि मरणाणि य ।

अहो दुक्खो हु संसारो; अत्थ कीसंति जसवो ॥१५॥

जन्म दुःख रूप है बुढ़ापा रोग और मृत्यु य सभी

दुःख दायक है, आश्चर्य है कि, यह सारा ससार दुःख रूप है ।
इसमें जीव क्लेश पा रहे हैं ॥१६॥

खेतं वत्थुं हिरण्यं च, पुत्तदारं च बंधवा ।
चट्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे ॥१७॥

क्षेत्र, घर, सोना-चाँदी, पुत्र, स्त्री और बान्धव तथा
इस शरीर का भी छोड़कर मुझे अवश्य जाना पड़ेगा ॥१७॥

जहा किंवागफलाणं, परिणामो न सुंदरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुंदरो ॥१८॥

जिस प्रकार किपाक फल खाने का परिणाम सुन्दर
नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर
नहीं होता है ॥१८॥

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जई ।
गच्छतो सो दुही होइ, छुहातएहाए पीडिओ ॥१९॥

जा मनुष्य, बिना पार्थक्य-भाता साथ लिये, लड़ा सफर
करता है, वह आगे जाकर भूख प्यास से पीड़ित होकर दुःखी
होता है ॥१९॥

एवं धम्म अकाऊणं, ओं गच्छइ परं भवं ।
गच्छतो सो दुही होइ, वाहीरोगेहि पिडिओ ॥२०॥

इसी प्रकार धर्म नहीं करने वाला जीव, परभव में
जाते हुए व्याधि और रोग से पीड़ित होकर दुःखी होता है ।

अद्याप्य ओ महत तु सपाइलो पवञ्जई ।

गञ्जतो सो सुही होइ, बुद्धासयहाविबन्धिओ ॥२१॥

ओ मनुष्य पापय साथ लकर लम्बा सफर करता है
बहु मांस में भूख व्याप्त रहित हाकर सुखी होता है ॥२१॥

एव धम्म पि काळण, सो गञ्जइ परं मव ।

गञ्जतो सो सुही होइ अप्पकम्म अप्पेसखे ॥२२॥

इसी प्रकार जो धर्म पासन कर पश्मन में जाता है
बहु भक्ष्य कम और बेदना रहित हाकर सुखी होता है ॥२२॥

अहा गेहे पत्तिचम्मि, तस्स गेहस्स ओ पइ ।

सारमंवाणि नीछेइ, असारं अवउत्तमइ ॥२३॥

एव लोए पत्तिचम्मि, सराए मरयेण य ।

अप्पाण तारइस्सामि, तुम्मेहिं अणुमणिओ ॥

जिस प्रकार घर में धातु सगवान पर गहस्वामी
मूल्यवान् वस्तु का बाहर निकालता है और असार वस्तुओं
का छोड़ देता है उसी प्रकार धरा और मरु से बसते हुए
इस लोक में धातुकी भाँसा पाकर मैं अपनी आत्मा का
तार्कण । २३ २४॥

त वेति अम्मापियरो, सामययां पुच दुत्तरं ।

गुवाणां तु सदस्साइ, धारेयव्वाइ मिमसुणो ॥२५॥

माता पिता कहूँ मैं सगे-हे पुत्र । साधु का हजारों गुण

धारण करने पड़ते हैं, इनलिये मायु धर्म का पालन दुष्कर है ।

समया सन्वभूएसु, मत्तुमित्तसु वा जगे ।

पाणाद्वायविरई, जावजीवाए दुकरं ॥२६॥

पुत्र ! शशु हा या मित्र, सभी प्राणियों पर जीवन पर्यन्त समभाव रखना तथा हिंसा में निवृत्त होना दुष्कर है ।

निच्चकालप्पमत्तेणां, मुमावायविवज्जणां ।

भावियच्च हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुकरं ॥२७॥

मदा के लिए अप्रमत्त हाकर झूठ का त्याग करना और उपयोग पूर्वक हितकारी सत्य वचन बोलना दुष्कर है ।

दंतसोदणमाहस्स, अदत्तस्स विवज्जणां ।

अणवज्जेसणिज्जस्स, गिएहणा अवि दुकरं ॥२८॥

बिना दिये तां दात साफ करने को तिनका भी नहीं लेना और निवृत्त तथा एषणीय वस्तु ही लेना अति दुष्कर है ।

विरई अवंभचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा ।

उगं महव्वयं वंभं, धारेयव्वं सुदुकरं ॥२९॥

काम भोग के रस को जानने वाले के लिए, मैथुन से निवृत्त होकर उग्र ब्रह्मचर्य को धारणा करना अति दुष्कर है ।

धणधन्नपेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणां ।

सव्वारंभपरिच्चाओ, शिम्ममच्चं सुदुकरं ॥३०॥

सभी प्रकार के आरम्भ परिग्रह का प्रीर घन धान्य तथा मोहर चाकरो का त्याग कर निर्ममत्व होना महा कठिन है।

चठञ्चिहे वि आहार, रात्रिमोयशबलम्बा ।

सन्निहीसंश्रमो चेद, वज्रयन्त्रो सुदुष्करं ॥३१॥

रात्रि में चारों आहार का त्याग करना प्रीर चूठादि के सपय का त्याग करना भक्ति कठिन है ॥३१॥

क्षुहा तपसा य सीउषह, दमससगधयन्ता ।

अकोसा दुस्तसेन्त्रा य, तथफासा जलमेव य ॥३२॥

तासुहा तज्जशा चेद, बहवमपरीसहा ।

दुस्तं भिक्षापारिया, आयसा य अज्ञामया ॥३३॥

अथ विपासा क्षीत जप्ता डाँठ और मज्जरो से हाने वाला कट आकाश वचन दुस्त दम्या प्राणादि स्पर्श मस परपह ताडना तर्जना तथा बब बम्बन का परीक्षा भिक्षाधर्म याचना और अज्ञाम इत्यादि परीक्षा का सहना भक्ति दुस्तकारी है ॥३२-३३॥

कायोपा वा इमा विन्ती, केमल्लोमो य ठारुभो ।

दुस्तं बमन्त्रप चोरं, धारठ अमहप्यमो ॥३४॥

कायोत क समान दापो से बचने को कृति और केश लुंभन दुस्तकारी है। जो महान् आत्मा नहीं है उनके लिए धार ब्रह्मचर्य मत का धारण करना अत्यन्त कठिन है ॥३४॥

सुहोदधौ तुमं पुत्रा, सुकुमालो सुमज्जिधौ ।

न हृसी पभू तुमं पुत्रा, सामण्यमणुपालिया ॥३५॥

हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य, सुकुमार और सदा
अलंकृत रहने वाला है । हे पुत्र ! तू सयम पालने योग्य नहीं है ।

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणां तु महम्भरो ।

गुरुधो लोदभारुध्व, नो पुत्रा ! दोइ दुव्वहो ॥३६॥

जिम प्रकार लाहे के बड़े भार को सदा उठाये रखना
दुष्कर है उसी प्रकार गुणों के महान् भार को जीवन पर्यन्त
बिना विश्राम लिए, धारण करना बड़ा ही कठिन है । ३६॥

आगासे गंगसोउ व्व, पडिसोउ व्व दुत्तरो ।

वाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदही ॥३७॥

जिस प्रकार आकाश गंगा को धारा का तन्ना और
प्रतिश्रोत=धारा के सामने तैरना कठिन है तथा मुजाओं से
समुद्र पार करना कठिन है, उसी प्रकार गुणों के समुद्र का
पार करना भी कठिन है ॥३७॥

वालुयाकवलो चेव, निरस्साए उ संजमे ।

असिधारागमयां चेव, दुकरं चरिउं तवो ॥३८॥

रेत के कवल की तरह, सयम नीरस है, और तलवार
की धार के समान, तप का आचरण करना कठिन है ॥३८॥

अग्नीवेगंतदिह्वीय, वरिष्ठे पुत्र दुःकरे

अवा स्तोत्रमया चेत्, वायव्या सुदुःकरं ॥३९॥

हे पुत्र ! सप को एकाग्र दृष्टि ठात्री है उसी प्रकार
एकाग्र मन रखकर चारित्र्य पातना दुष्कर है और लोहे के बर्तों
को खदाने के समान समय पातना अत्यन्त ही कठिन है ॥३९॥

अवा अग्निशिखा दिवा, पाठ इष्ट सुदुःकरा ।

तथा दुःकरं करेत्त जे, तारुण्ये समञ्चय्या ॥४०॥

जिस प्रकार जसती हुई अग्नि शिखा को पीना महा
दुष्कर है उसी प्रकार तरुणवय में साधुपना पातना महा
दुष्कर है ॥४०॥

अवा दुःख मरेत्त जे, इष्ट वायस्य कोत्यलो ।

तथा दुःखं करेत्त जे, कीर्तये समञ्चय्या ॥४१॥

जिस प्रकार कपड़े की धूँसी को हवा में मरना कठिन
है उसी प्रकार कामरता से समय पातना कठिन है ॥४१॥

अवा तुलाय सोत्तेत्त, दुःकरं मदरो गिरी ।

तथा निदुयनीसंफ, दुःकरं समञ्चय्या ॥४२॥

जिस प्रकार मुमेष पर्वत का तराजू से तोलना दुःश्रम
है उसी प्रकार निश्चल और दृढ़ रहित होकर साधुता का
पातन करना दुःश्रम है ॥४२॥

अवा सुपादि वरिष्ठ, दुःकरं रयसायरो ।

तथा अणुवर्तयेत्त, दुःकरं दमसायरो ॥४३॥

जिस प्रकार समुद्र को मृजाओं से तैरता दुष्कर है, वही प्रकार कषायों को उपशान्त किये बिना, सयम रूप समुद्र को तैरना कठिन है ॥४३॥

भुंज माणुस्सए भोगे, पंचलक्खणए तुमं ।

भुत्तभोगी तथो जाया, पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥४४॥

हे पुत्र ! अभी तुम शब्दादि पांच लक्षण वाले मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगों । भुक्त भोगी होने के बाद ही धर्म का पालन करना ॥४४॥

सो वेइ अम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं ।

इहलोगे निण्णिवसस्स, नत्थि किंचि वि दुक्करं ॥४५॥

मृगापुत्र ने कहा—हे माता पिता ! आपका कहना ठीक है, किन्तु इस लोक में निस्पृह बने हुए पुरुष के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ॥४५॥

सारीरमाणसा जेव, वेयणाओ अणंतसो ।

मए सोढाओ भीमाओ, असहं दुक्खमयाणि य ॥४६॥

मैंने शारीरिक और मानसिक भयङ्कर वेदनाएँ अनन्त बार सहन की और अनेक बार दुःख तथा भय का अनुभव किया ।

जगमरणकंतारे, चाउरंते भयागरे ।

मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥४७॥

जन्म मरण रूपी चार गतिवाली भयङ्कर अटवी में,

मन जम भरण के भयंकर कष्टों का सहन किये हैं ॥४७॥

बहा इह अगणी उपशो, इतोऽप्यांतगुणे तर्हि ।
नरएसु वपद्या उपश, अस्ताया वेद्या मए ॥४८॥

यहाँ अग्नि में जिनको उष्णता है, उससे अनन्त गुणी उष्णता नरकों में है । मैंने उस कष्ट दायक बेदना का सहन किया है ॥४८॥

बहा इह इम सीप, इतोऽप्यांतगुणो तर्हि ।
नरएसु वेपद्या सीपा, अस्ताया वेद्या मए ॥४९॥

यहाँ जैसी सीत है उससे अनन्त गुणी सीत नरकों में है । उस असाता बेदना को मैंने सहन की है ॥४९॥

कदतो कदुर्कुभीसु, उद्दपाओ अहोसिरो ।
हुयासके वल्लतम्मि, पक्षुण्णो अयांतसो ॥५०॥

मुझ आक्रन्द करते हुए को क्रुद्ध क्रुम्भियों में ऊँचे पैर और नीचे सिर करके पहले अनन्त बार पकाया गया ॥५०॥

महत्त्वमिस्संक्रसे, मरुम्मि बहरवाणुए ।
कसबवाणुपाए य, द्ददुण्णो अयांतसो ॥५१॥

महा वायुमि क समाप्त तथा मरु देस की बालुका के समाप्त वषट् वासुका में और कदम्ब नदी की बालुका में मैंने अनन्त बार जलाया गया ॥५१॥

रसंतो कंदुकुम्भीसु, उद्धं वद्धो अवंधवो ।

करवत्तकरक्याईहिं, छिन्नपुव्वो अणंतसो ॥५२॥

स्वजनो से रहित आश्रन्द करते हुए मुझे, कुन्दुकुम्भी में ऊँचा बाँधकर, करवत्त और करवत्तो से पूर्वभवो में अनन्त-वार छेदन भेदन किया ॥५२॥

अइतिक्खकंटगाडणो, तुंगे सिंगलिपायवे ।

खेवियं पासवद्धेणं, कद्धोकद्धाहिं दुक्करं ॥५३॥

अत्यन्त तीखे काँटा वाले ऊँचे शालमलि वृक्ष पर मुझे बन्धन से बाँध दिया और कांटों पर इधर उधर खींचा । इस प्रकार कण्टो को सहन किया ॥५३॥

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुमेरवं ।

पीडिओ मि सकम्मोहिं, पावकम्मो अणंतसो ॥५४॥

अपने अशुभ कर्मों के कारण मुझ पापकर्मों को अत्यन्त रौद्रता से महायन्त्रों में डालकर दक्ष की तरह पीला गया । ५४॥

क्वंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सव्वलेहि य ।

पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरंतो अणोगसो ॥५५॥

आश्रन्द करते और इधर उधर भागते-हुए मुझे कुत्तो और सुअरो रूपी श्याम और सबल परमाधामियों ने नीचे गिराया और फाड़ा तथा छेदा ॥५५॥

असीहिं अयस्त्रिययोहिं, मन्त्रोहिं पट्टिसेहि य ।

छिन्नो मिन्नो वि मिन्नो ये, उववपशो पत्नकम्बुशो ॥५६॥

मैं पाप कर्मों से तरक में उत्पन्न हुआ और अमर्त्य के वर्ण जैसे तमवारों आलों और पट्टिष शस्त्रों से छेदन भेदन और टुकड़े टुकड़ किया गया ॥५६॥

अमर्त्यो लोहरह जुघो, असते समिस्तामुण ।

योश्मो तुचजुघेहिं, रोन्मो वा अह पादिभ्यो ॥५७॥

मृग परबल पड़े हुए को बसते हुए समिस्ता मुक्त लोहे के रथ में जोड़ा फिर बाबूक और आतों से मारकर होंका तथा रोज को तरह मृमि पर गिराया ॥५७॥

हुमासणे अस्ततम्मि, शियासु महिसो विव ।

वद्दो वक्खो य अमर्त्यो, पाप्पकम्मेहिं पाविभ्यो ॥५८॥

पाप कर्मों से परबल बने हुए मुक्त पापी को धर्म से जमती हुई चित्तामों में जैसे की तरह जलाया और पकाया गया ।

बला संहासतुंहेहिं, लोहर्तुंहेहिं पक्खिहिं ।

विमुचो पित्तबभोह, डक्खिद्वहिं अणंतसो ॥५९॥

मुक्त होते हुए को बलबूबल सहायो जैसे और साथे क समान कठार में हू आले डक और गिद्ध पशियों द्वारा जमती बार छिम मिम किया गया ॥५९॥

तण्हाकिस्ततो धावतो, पत्तो वेयरखि णइ ।

अस्त पाहिं चि चिठतो, सुरघासाहिं विवाइभ्यो ॥६०॥

मैं प्यास से अत्यन्त पीड़ित होकर, जल पीने की इच्छा से दौड़ता हुआ बंतरनी नदी पर पहुँचा । वहाँ उस्तरे की धारा के समान नदी की धारा से मेरा विनाश हुआ ॥६०॥

उष्णामित्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहि पडंतेहिं, छिन्नपुण्वो अणेगसो ॥६१॥

मैं गर्मी से घबराया हुआ असिपत्र महावन में गया । किन्तु तलवार के समान पत्तों के गिरने से अनेक बार छिन्न-भिन्न हुआ । ६१॥

मुग्गरेहिं मुमुंढीहिं, छलेहिं मूसलेहि य ।
गयासं भग्गमत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणंतसो ॥६२॥

मुद्गरो, मुसड़ियो, त्रिशूलो, मूसलों और गदा से मेरे गात्रों का भग किया । मैंने ऐसा दुःख अनन्त बार पाया । ६२॥

सुरेहिं तिक्खधारेहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, ऊक्कित्तो य अणेगसो ॥६३॥

मैं अनेक बार कतरणियों से कतरा गया, छुरियों से चीरा गया और मेरी चमड़ी उतार दी गई ॥६३॥

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ बद्धरुद्धो य, बहुसो चेव विवाइओ ॥६४॥

मृग की तरह परवश पड़ा हुआ मैं, धोखे से पाशों और कूट जालों में बाँधा गया, रोका गया और मारा गया ।

गलेहिं मगरमासेहिं, मच्छो वा अवसो अह ।

राक्षिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अयांतसो ॥६५॥

म परबस होकर बहिष यज्ञ से घोर मगर जास से मच्छो को तरह खीचा गया फाड़ा पकड़ा और मारा गया ॥६५॥

विदसएहिं आलेहिं, सेप्पाहिं सुउखो विव ।

गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अयांतसो ॥६६॥

बाब पक्षियों से जासो से और सेपा से पत्नी का तरह में प्रमत्त बार पकड़ा गया चिपटाया गया बंधा और मारा गया ।

कुहाइरसुमार्हिं, वड्ढहिं दुमो विव ।

कुडिओ फालिओ भिन्नो, राखिओ य अयांतसो ॥६७॥

मैं सुचार रूप से वेदों से कुहाइर फास थावि से वृक्ष की तरह प्रमत्त बार फाड़ा गया खाना गया और टुकड़े टुकड़े कर दिया गया ॥६७॥

अवेडमुडिमारहिं, कुमारेहिं अय विव ।

राखिओ कुडिओ भिन्नो, चुरिओ य अयांतसो ॥६८॥

जिस प्रकार सोहार लाहे को कुटले है उसी प्रकार मैं भी बप्पड़ मुष्टि आदि से प्रमत्त बार पीटा गया कुटा गया मेवा गया और पूर्ण के समान पान डाला गया । ॥६८॥

तवाइ तबलोहाइ, सुउयाइ सीसपाणि य ।

पाउओ कलकस्तवाइ, आरसो सुमेरव ॥६९॥

बहुत जोर से अरडाट करते हुए मुझे, कल कल शब्द करता हुआ तप्त ताम्बा, लोहा, कथोर, और शीशा पिलाया गया ॥६६॥

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगणि य ।

खाविओ मि समंसाइं, अग्निवण्णाइं खेगसो ॥७०॥

“तुझे मांस प्रिय था”—ऐसा कहकर मेरे शरीर का मांस काटकर उसे झूतकर, अग्नि के समान करके, मुझे अनेक बार तिलाया ॥७०॥

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणिय ।

पाइओ मि जलंतीओ, वमाओ रुहिराणि य ॥७१॥

“तुझे ताड़ वृक्ष से, गुड़ से और महुए आदि से बनी हुई मदिरा प्रिय थी”—यों कहकर, मुझे जलती हुई चर्बी और रुधिर पिलाया गया ॥७१॥

निचं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।

परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेदिता मए ॥७२॥

मैंने सदा भयभीत, उद्विग्न, दुःखित और व्यथित बने हुए अत्यन्त दुःखपूर्ण वेदना सहन की ॥७२॥

तिव्वचंडप्पगाढाओ, धोगओ अंडुस्सहा ।

महब्भयाओ सीमाओ, नग्गसु वेदिता मए ॥७३॥

मैंने नरको में तीक्ष्ण, प्रचण्ड, गाढ़, घोर, भीम, अत्यन्त

दुस्सह और भयवासी वेदना सहन की है ॥७३॥

आरिमा माणुस छोए, ताया दीसति वेयणा ।

इतो अयातगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ॥७४॥

हे माता पिता ! मनुष्य लोक में जसी वेदना दिखाई देती है उससे अनन्त गुणी दुःख रूप वेदना नरकों में है ।

सम्बन्धेषु अस्साया, पेयणा देहया मए ।

निमेषंतरमिच्छ पि, सं साता नरिय वेयणा ॥७५॥

मैंने सभी अर्थों में असात वेदना का ज्ञान किया । वहाँ निमेष मात्र भी क्षान्ति नहीं है ॥७५॥

त विसम्मापिपरो, भंदेयां पुण पम्बया ।

नवरं पुण मामधरो, दुक्ख निप्पडिक्कम्मया ॥७६॥

माता पिता ने कहा-हे पुत्र ! तुम्हारी इच्छा है तो जाओ । किन्तु थमन होने पर रोग का प्रतिकार करना तो कष्ट प्रब है ॥७६॥

मो वेइ अम्मापिपरो, पम्मेयं अहा फुह ।

पडिक्कम्म को दुणइ, अरएणो मियपक्खिण ॥७७॥

पुत्र ने कहा-हे माता पिता ! आपका कहना ठीक है, किन्तु अंगन में रहने वाला मृग और पक्षियों का इलाज कौन करता है ॥७७॥

एगम्भूए अंरणे वां, जहा उ चरई मिगे ।

एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य ॥७८॥

जैसे जगल में मृग अकेला विचरता है, वैसे ही मैं भी समय और तप से धर्म का पालन करूँगा ॥७८॥

जया मिगस्स आयंको, महारणम्मि जायई ।

अच्छंतं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छई ॥७९॥

जब महावन में मृग के कोई रोग हो जाता है, तब किसी वृक्ष के नीचे बैठे हुए उसकी चिकित्सा कौन करता है ?
अर्थात् कोई नहीं करता ॥७९॥

को वा से ओसइं देइ, को वा से पुच्छई सुइं ।

को से भत्तं व पाणं वा, आहरित्तु पणामए ॥८०॥

उसे कौन औषधि देता है ? कौन सुखसाता पूछता है ?
और कौन उसे आहार पानी लाकर देता है ? ॥८०॥

जया य से सुही होइ, तथा गच्छइ गोयरं ।

अन्तापोणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥८१॥

जब वह नारोग हो जाता है, तब वह आहार के लिए लताओं और पानी के लिए सरोवर पर जाता है ॥८१॥

स्वाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि य ।

मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छई मिगचारियं ॥८२॥

‘ फिर वन में घाँस आदि खाकर और सरोवरो में पानी

पीकर मगधर्या करता हुआ अपने स्नान पर चला जाता है ।

एव ममृष्टिभ्यो मिस्सु, एवमेव अज्येगए ।

मिगधारिय चरिस्तामि, उद्दु पकमई दिसं ॥८३॥

इसी प्रकार समय में सावधान और धनक स्थानों में भ्रमण करने वाला मिथु मगधर्या का आचरण करके-भास में जाता है ॥८३॥

जहा मिगे एग अज्येगचारी, अज्येगवासे धुवगोयरे य ।

एव सुणी गोयरिय पबिद्धे, नो हीसए नो बि य खिसएत्ता ॥८४॥

किस प्रकार मृग कहता किसी एक स्थान पर न रहकर धनेक स्थानों में भ्रमण करने वाला और सदा गोचरो से ही निर्वाह करने वाला होता है उसी प्रकार गोचरो के लिए गया हुआ मुनि आहार न मिलने पर किसी की धन-हेसना या निन्दा नहीं करे ॥८४॥

मिगधारिय चरिस्तामि, एवं पुत्रा ब्रह्मसुह ।

अम्मापिउहिं अण्णुमाओ, ब्रह्म उवहिं ठओ ॥८५॥

मैं मृगधर्या का पालन करूँगा । हे पुत्र ! जसा सुहृद् बसा करा । इस प्रकार माता पिता की आज्ञा मिलने पर वह उपधि (गृहस्थी के साधनो) का त्याग करने समा ॥८५॥

मिगधारिय चरिस्तामि, सम्यदुक्खविमोक्खसिं ।

सुग्मेहिं अण्णुमाओ, गच्छ पुत्र ! ब्रह्मसुह ॥८६॥

मृगापुत्र ने कहा—आपकी आज्ञा पाकर मैं सभी दुखों से मुक्त करने वाली मृगचर्या का आचरण करूँगा । माता पिता ने कहा—पुत्र ! जाओ तुम्हे जैसा सुख हो वंसा करो ॥८६॥

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणिताण बहुविहं ।
ममत्तं छिंदई ताहे, महानागो व्व कंचुयं ॥८७॥

यो अनेक प्रकार से माता पिता की आज्ञा लेकर वे उसी प्रकार ममत्व का त्याग करने लगे, जिस प्रकार महानाग, काचली का त्याग करता है ॥८७॥

इह्दी वित्तं च मित्ते य, पुत्तदारं च नायओ ।
रेणुयं व पड़े लग्गं, निद्धणिताण निग्गओ ॥८८॥

मृगापुत्रजी, वस्त्र पर लगी हुई धूल की तरह, ऋद्धि सम्पत्ति, मित्र, पुत्र, स्त्री और सम्बन्धियों को छोड़कर निकल गये ॥८८॥

पंचमहव्वयजुत्तो, पंचहिं समिओ तिगुत्तिगुत्तो य ।
सन्निमतरवाहिरओ, तवोकम्मम्मि उज्जुओ ॥८९॥

मृगापुत्र, पाच महाव्रतों से युक्त, पाच समिति सहित, तीन गुप्तियों से गुप्त होकर बाह्य और आन्तरिक तप कर्म में सावधान हुए ॥८९॥

णिम्ममो गिरहंकारो, गिस्संगो चत्तगारवो ।
ससो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥९०॥

वे भ्रमस्व धर्तृकार धीः सर्वश्रेष्ठ म रहित हो धीरं गर्व का त्याग कर समी प्रस स्याद्वर प्राप्तिर्गोपर गममात्र रत्नने लभे ।

सामालामे सुहे दुस्से, जीविए मरये तदा ।

समी सिदापसंमासु, तदा मायावमायभो ॥६१॥

वे नाम अनाम गुण दुःख, जीवन मरण निम्ना प्रशंसा धीर मानापमान म समभाव रत्नने लभे ॥६१॥

गारयेसु फसाएसु, दहसप्तमएसु य ।

शियत्तो हाससोगाभो, अशियाधो अशयधो ॥६२॥

मृगापुत्रजी निवान धीर वयम से रहित हाकर तीन यत्र चार कवाय तीन दण्ड दान सह्य नात भय तथा हास्य धीर शाक से निवृत्त हो गये ॥६२॥

अणिस्तिभो इह सोए, परसोए अणिस्तिभो ।

वासी अदयकप्यो य, असये अयससे तदा ॥६३॥

वे इस मोह धीर परमाह की आकांक्षाओं से रहित य । माहारादि मिलने न मिलने पर तथा अन्धम से पूजने वाले धीर बसूने में छामने वाले पर समभाव रत्नने लभे य ।

अप्यसत्येहि दारेहि, सम्यभो पिशियासवो ।

अज्मप्यज्मस्य जोगेहि, यस्त्यदमसासवो ॥६४॥

वे समी अप्रसस्त द्वारों धीर समा आश्रयों का निराश कर, आध्यात्मिक शुभ ध्यान के योग में प्रसस्त संयम लभे हुए ।

एवं श्यामेण चरमेण, दंमणेण तवेण य ।
 भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावित्तु अप्पयं ॥६५॥
 बहुयाणि उ वासाणि, सामएणमणुपालिया ।
 मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ॥६६॥

इन प्रकार ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप से तथा शुद्ध भावना से सम्यक् प्रकार से आत्मा को भावित करते हुए मृगा-पुत्रजी ने बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया और एक मास का सयारा करके सर्वश्रेष्ठ सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।

एवं करंति संवुद्धा, पंडिया पविक्खणा ।
 विणियट्ठंति भोगेसु, मियापुत्ते जहामिसी ॥६७॥

वे मनुष्य बुद्धिमान् तत्त्वज्ञ पंडित और विचक्षण हैं,
 जो ऋषि - श्रेष्ठ मृगापुत्र की तरह भोगों से निवृत्त हो जाते हैं ।

महापभावस्स महाजस्सस्स, मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासियं ।
 तवप्पहाणां चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणां च तिलोगविस्सुयं ॥

श्री मृगापुत्र, महा प्रभावशाली और महान् यशस्वी थे ।
 उनके तप प्रधान, चारित्र प्रधान और गति प्रधान, ऐसे तीन लोक में प्रसिद्ध कथन का सुनकर, धर्म में पुरुषार्थ करना चाहिए ॥६८॥

वियाणिया दुक्खविवद्धाणां थणां, ममत्तबंधं च महाभयावहं ।
 सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेज्ज निग्वाणगुणावहं महं ॥६९॥

हे मय्यों ! धन को कुछ बढ़ाने वाला ममत्व कपी
 बन्धन का कारण तथा महान् भयदाता जानकर धर्मधुरा को
 धारण करो जो सुखदायक और महान् निर्बाण मय्यों की देने
 वाली है ॥११॥

— उत्तीर्णार्थ अध्ययन समाप्त —

महानियठिञ्ज वीसद्वय अञ्जयण

ॐ—१—ॐ

सिद्धार्थं बभौ किञ्चा, संज्ञयायां च मावभौ ।
 अत्यधम्मगइ तच्च, अणुसिद्धिं सुखेइ मे ॥१॥

सिद्धों और सयतों को मावपूर्वक नमस्कार करके मुझसे
 धर्म धम के मयार्थ स्वस्म को सुनो ॥१॥

पभूपरयञ्चो राया, सेयिञ्चो मगहाद्विवो ।

विहारवच्च निग्ग्राञ्चो, मंढिकुञ्चिसि पण्य ॥२॥

अनेक रत्नों का स्वामी और मगध देश का अधिपति
 श्रेणिक राजा, विहार यात्रा (भूमने) के लिए 'मण्डीकुक्षि' नाम
 के उद्यान में गया ॥२॥

नायाहुमसयाहणयां, नायापत्ति निसवियं ।

नावाहुसुमसंक्षमं, उज्जायां नंदजोवम ॥३॥

बहु उद्यान वाला प्रकार के वृक्षों सतायों और पुष्पों

से आच्छादित था । वह नाना प्रकार के पक्षियों से सेवित
तथा नन्दनवन के समान था ॥३॥

तत्थ सो पासइ साहुं, संजय सुसमाहियं ।

निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥४॥

राजाने वृक्ष के नीचे एक ऐसे साधु को बैठा हुआ
देखा, जो सुकुमार होता हुआ भी सयम, शील और समाधि से
युक्त तथा प्रसन्न चित्त था ॥४॥

तस्स रुवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।

अच्चंतपरमो आसी, अउलो रुव विम्हओ ॥५॥

राजा, उस मुनि के अत्यन्त उन्कृष्ट रूप को देखकर,
आश्चर्य में पड़ गया ॥५॥

अहो वएणो अहो रुवं, अहो अज्जस्स सोमया ।

अहो संती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥६॥

आश्चर्य है इसकी भव्य आकृति और सुन्दर रूप को ।
इस आयं पुरुष की क्षमा, निर्लोभता और भोगों से निःस्पृहता
आश्चर्यकारी है ॥६॥

तस्स पाए उ वंदित्ता, काउण्ण य पयाहिणां ।

नाइदूरमणासत्ते, पंजली पडिपुच्छइ ॥७॥

राजा ने उनको प्रदक्षिणा और चरणों में वन्दना की ।
फिर न अति दूर और न अति निकट बैठकर हाथ जोड़ कर
पूछने लगा ।

तरुणो सि अल्लो पण्डितो, भोगकालमि संवया ।

उवट्ठिओ सि सामयस्ये, एवमहुं सुखेमि ता ॥८॥

हे धाय ! धाय भाग के माग्य इस तरुण अवस्था में
ही प्रव्रजित हाकर समयी बन गये हैं । मैं इसका कारण
जानना चाहता हूँ ॥८॥

अन्नाहो मि महाराय ! नाहो मन्थ न विज्झइ ।

अणुफणं सुहिं पावि, कवि यामिसमेमहं ॥९॥

महाराज ! मैं घमाय हूँ । मेरा कोई नाच नहीं है न
कोई मुक्त पर कृपा करने वाला मित्र ही है । इसीलिए मैं साधु
हुमाहूँ ॥९॥

तओ सो पइसिओ राया, सखिओ मगहादिहो ।

एव ते इद्धिमवत्स, कर्हं नाहो न विज्झइ ॥१०॥

यह शुभकर राजा हैंउने लगा । उस आदर्श हुमा कि
इस प्रकार की श्रद्धिवाले के भी कोई नाच नहीं है ॥१०॥

होमि नाहो भयंतायां, भोगे पुब्बादि संवया ।

मिचनार्हपरिखुओ, माणुस्तं सु सुदसइ ॥११॥

हे समती ! मैं तुम्हारा नाच होना-हूँ । धाय मित्र
जाति मुक्त हाकर भोगों को भोगें । वह अनुपम जन्म अत्यन्त
दुर्लभ है ।

अप्पया वि अन्नाहो सि, सेखिया ममहादिवा ।

अप्पया अन्नाहो संतो, कस्त नाहो भविस्ससि ॥१२॥

हे मगध देश के अधिपति श्रेणिक ! तुम स्वयं ही अनाथ हो । स्वयं अनाथ होते हुए, दूसरों के नाथ कैसे हो सकोगे ।

एवं वृत्तो नरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्विह्यो ।

वयणां अस्सुयंपुर्व्वं, माहुणा विम्वहयन्निह्यो ॥१३॥

पहले कभी नहीं सुने ऐसे वचन साधु से सुनकर राजा विस्मित हुआ, व्याकुल हुआ । उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ ।

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे ।

मुजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥१४॥

हे मुनि ! मेरे पाम हाथी, घोड़े, मनुष्य, नगर और अन्तपुर है । मैं ऐश्वर्यशाली हूँ । मेरी आज्ञा चलती है । मैं मनुष्य सम्बन्धी सभी भाग भागता हूँ ॥१४॥

एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकामममप्पिए ।

कहं अणाहो भवइ, मा हु भंते सुसं वए ॥१५॥

- हे भगवन् ! इस प्रकार प्रधान सम्पत्ति और सब प्रकार के कामभोग हांते हुए मैं, अनाथ कैसे हूँ ? आप झूठ नहीं बाले ?

न तुम जाणे अणाहस्म, अत्थं पोत्थ च पत्थिवा ।

जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा नराहिवा ॥१६॥

हे राजेन् ! तुम 'अनाथ' शब्द के अर्थ और उसकी उत्पत्ति को नहीं जानते हो कि, अनाथ और सन्नाथ किसे कहते हैं ॥१६॥

सुखेह मे महाराय, अश्वनिस्तुषेय धेयसा ।

अहा अथाहो मरुह, अहा मेयं पदधिय ॥१७॥

हे महाराज ! किस प्रकार बीज अनाज हाता है और
किस प्राणय से मैं कहा है वह एकाग्र मन से सुनो ॥१७॥

कोसंबी नाम नयरी, पुराय पुरमेयसी ।

तस्य आसी पिपा मरुह, पभूयपयसंघओ ॥१८॥

प्राचीन नगरियों में अष्ट ऐसी कोशाम्बी नाम की
नगरी है वही मेरे पिता प्रभूतधनसंघय रहते हैं ॥१८॥

पहमे यए महाराय, अठला म अश्विधेयसा ।

अहोत्ता विउत्तो दाहो, सम्भगेसु य परिधवा ॥१९॥

राजन् ! प्रथम (बीजन) वय में मेरी पीछों में
अत्यन्त वेदना हुई, और सारे शरीर में घटि जलन होने लगी ।

सत्यं अहा परमतिस्तु, सरीरविबरंतरे ।

आशीक्षित्त अरी कुदो, एव मे अश्विधेयसा ॥२०॥

मेरी पीछों में ऐसी घसाह वेदना होती थी कि जिस
प्रकार क्षोभित समु शरीर के मर्म स्थानों में बहुत ही तीबरे
घस्न घुसेड़ रहा हो ॥२०॥

विय मे अंतरिष्णं च, ठत्तमगं च पीडई ।

इंदासशिसमा घोरा, वेयसा परमदाहवा ॥२१॥

इन्द्र का वज्र लगने से बड़ी वेदना होती है बीसी जोर

और महा दुःखदायी वेदना, मेरी कमर, हृदय और मस्तक में हो रही थी ॥२१॥

उवाङ्मिया मे आयरिया, विज्ञामंततिगिच्छया ।

अवीया सत्यकुसला, मंतमूलविसारया ॥२२॥

मेरी चिकित्सा करने के लिए, विद्या, मन्त्र, मूल और शस्त्र चिकित्सा में कुशल एवं विशारद ऐसे आचार्य उपस्थित हुए थे ॥२२॥

ते मे तिगिच्छं कुन्वंति, चाउष्पायं जहाहियं ।

न य दुःखा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२३॥

मेरे हित के लिए वैद्याचार्य मेरी चतुष्पाद (वैद्य, औषधि, श्रद्धा और परिचारक) चिकित्सा करते थे, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके । यही मेरा अनाथता है ।

पिया मे सन्वमारं पि, दिजा हि मम कारणा ।

न य दुःखा विमोएह, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

मेरे पिता, मेरे लिए वैद्यों को सभी बहुमूल्य वस्तुएँ दे रहे थे, किन्तु फिर भी मैं कष्टों से मुक्त नहीं हुआ । यही मेरी अनाथता है ॥२४॥

माया वि मे मदाराय, पुत्तसोगदुहङ्मिया ।

न यि दुःखा विमोएह, एसा मज्झ अणाहया ॥२५॥

राजन् ! पुत्र शोक से अति दुखी हुई मेरी माता

भी अनेक उपाय किये किन्तु वह भी मुझ कष्टों से नहीं छुड़ा सकी । यही मेरी अनापत्ता है ॥२३॥

मायरो मे महाराय, सगा जेहुकशिहुगा ।
न य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अखाइया ॥२६॥

नरेन्द्र ! मेरे छाट बड़े सगे भाइयों ने भी अनेक प्रयत्न किये किन्तु वे भी मझे कष्टों से मुक्त नहीं कर सके । यही मेरी अनापत्ता है ॥२६॥

मइसीओ मे महाराय, सगा जेहुकशिहुगा ।
न य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अखाइया ॥२७॥

नरेण ! मेरी छाटी बड़ी सगी बहिनें भी मुझ कष्टों से मुक्त नहीं कर सकी । यही मेरी अनापत्ता है ॥२७॥

मारिया मे महाराय, अणुरत्ता अणुज्वया ।
असुपुण्णखेहिं नपण्णखेहिं, ठरं मे परिसिण्णई ॥२८॥
अण्ण पाणां च पहाणां च, गंधमल्ल भिल्लेवणां ।
मए बायमणाय वा, सा बाला नेव भुज्जई ॥२९॥
अणां पि मे महाराय, पाणाओ वि य किहुई ।
न य दुक्खा विमोयइ, एसा मज्झ अखाइया ॥३०॥

महाराज ! मुझ पर अत्यन्त प्रेम रखनेवासी मेरी पतिव्रता पत्नी मेरे पास बैठकर अपनी माँजी के माँसुओं से मेरे हृदय को चिगोली दी । वह मेरे जानते या अजानते

भी अन्न-पानी, स्नान, सुगन्ध, विलेपन और माला आदि का सेवन नहीं करती थी, तथा एक क्षण के लिए भी मुझ से दूर नहीं होती थी। किन्तु वह भी मुझे दुःख से नहीं छुड़ा सकी। यही मेरी अनाथता है ॥२८-२९-३०॥

तत्रोऽहं एवमाहंसु, दुःखमा ह्यु पुणो पुणो ।

वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए ॥३१॥

सहं च जइ मुचेज्जा, वेयणा विउला इओ ।

खतो दंतो निरारंभो, पव्वए अणगारियं ॥३२॥

तब मैंने सोचा कि 'इस अनन्त संसार में मैंने ऐसी दुःसह वेदना बार-बार-सहन की है। अब एक बार भी मैं इस महावेदना से मुक्त हो जाऊँ, तो क्षमावान्, दमितेन्द्रिय और निरारंभी अनगार हो जाऊँ ॥३१-३२॥

एवं च चिंतइत्ताणं, पसुत्तो मि नराहिवा ।

परियचंतीए राईए, वेयणा मे खयं भया ॥३३॥

हे नरेन्द्र ! ऐसा विचार करके मैं सो गया। और रात्रि बीतने के साथ मेरी वेदना भी नष्ट होती गई ॥३३॥

तत्रो कल्ले पमायम्मि, आपुच्छित्ताण वंधवे ।

खतो दंतो निरारंभो, पव्वइओ अणगारियं ॥३४॥

दूसरे दिन प्रातः काल मैंने बन्धुजनों से पूछकर, क्षमावान् दमितेन्द्रिय और आरम्भ रहित अनगार प्रव्रज्या धारण की ॥३४॥

तो ऽह नाहो आओ, अप्यो य परस्स य ।

सम्भेसिं पेव भूयाणां, सतायां यावरास य ॥१५॥

अब मैं अपना दूसरों का और सभी उस स्थावर प्राणियों का नाश हो गया हूँ ॥१५॥

अप्पा नई वेपरणी, अप्पा मे कूडमामली ।

अप्पा कामदुहा वेणु, अप्पा मे नदयां वयां ॥१६॥

मेरी आत्मा ही बैठरणी नदी है और आत्मा ही कट आत्मसी वृक्ष है । आत्मा ही कामधेनु है और यही नन्दन बन है ॥१६॥

अप्पा कथा रिकथा य, दुहाय य सुहाय य ।

अप्पा मिचममिच य, दुप्पट्टियसुपट्टिओ ॥१७॥

आत्मा हो सुखो व दुःखा का कर्ता है और यही कम क्षयकरने वाला है । अष्ट आचारवासी आत्मा मित्र और दुराचारवासी आत्मा शत्रु है ॥१७॥

इमां दु अप्पा वि अखाइया निवा, तमेगपिचो निहुओ सुखेहि ।

नियठधम्मं सहियाण वि बहा, सीयति एगे बहुकायरा नरा ॥

हे राजन् ! अनाप के अग्य प्रकार भा है उन्हें तुम स्त्विर होकर एकाग्र मन से सुना । निर्दोष धर्म पाकर भी बहुत से कायर साम सिधिस हो जाते हैं ॥१८॥

ओ पम्बइषाअ महम्मयाइ, सम्म ख नो फसयई पमाया ।

अधिमाइप्पा य रसेसु गिद, न मूलओ छिअइ वंधयां से ॥१९॥

जो प्रव्रजित होकर प्रमादवश, महाव्रतो का सम्यग्पालन नहीं करता और इन्द्रियो के वश होकर रसों में मृद्वरहता है, वह कर्मों को मूल से नहीं काट सकता है ॥३९॥

आउत्तया जस्स य नत्थि काढ, हरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाणनिक्खेव दुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

जिसका इर्या, भाषा एषणा, आदान निक्षेप में तथा जुगुप्सा में उपयोग नहीं है, वह वीर सेवित मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता ॥४०॥

चिरं पि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे ।
चिरं पि अप्पाण किलेमइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ॥४१॥

जो लम्बे समय से मुण्डित होकर भी व्रतो में अस्थिर और तप नियम से अष्ट है, वह साधु, बहुत काल तक आत्मा को प्लेशित करके भी ससार से मुक्त नहीं हो सकता ॥४१॥

पोले व मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूडकदावणे था ।
रादाभणी वेसलियप्पगासे, अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥४२॥

जिस प्रकार खाली मुट्ठी और खोटा मिक्का असार है, तथा काच, वंडूर्यमणि को तरह प्रकाश करता हुआ भी ज्ञानकार के सामने अल्प मूल्यवाला है । वैसे ही द्रव्य-लिंगो (वेशवारी) भी अनाथ है ॥४२॥

कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय वृहइत्ता ।
असंजए सजयलप्पमासे, विणिग्घायमागच्छइ से चिरं पि ॥४३॥

कुशास सिंग तथा ऋषिष्यज (रजोहरण मलयस्त्रिका) को धारण करके उनके द्वारा धात्रीविका करता हुआ असमयी अपने को समयी बतसाता है । वह बहुत काल तक विनाश को प्राप्त होता है ॥४३॥

विसं तु पीयं ब्रह्म कालकृद्, इत्याह सत्त्व ब्रह्म कुम्भीय ।
एसो वि धम्मो विसम्भोवनम्भो, इत्याह वेणल इषाविबम्भो ॥४४॥

जिस प्रकार कासकूट विष से उस्ता सम्प्र पकड़ने से और बस में नहीं किये हुए पिशाच से नाश होता है उसी प्रकार शब्दादि विषयों से युक्त धर्म भी विनाश कर देता है ।

अे लक्ष्मणां सुविषां पठधमावे, निमित्तकोट्यन्तसंपगाडे ।
कुहविस्त्रासवदारनीवी, न गच्छैसरयां तस्मि कासे ॥४५॥

जो साव सन्नय सात्व बस्वज सास्त्र का प्रयोग करता है और निमित्त कुतूहल में आसक्त रहता है तथा आश्चर्य पैदा करके आश्चर्य बढ़ाने वाली विद्या से जीवन चलता है उसे कार्य भोग के समय कोई भी धारणमत्त नहीं होता है ॥४५॥

सर्म तमेणेव ठ से असीसे, सया दुही विप्परियासुवेइ ।
संभाबई नरगतिरिक्खजोयि, मोयां विराहेण असाहुरूवे ॥४६॥

वह ब्रह्मसिमी कुशीसिया अपने गाढ़ अज्ञान एवं विपरीत भावों से चारित्र की विराधना करता है और नरक विर्यन्ध गति में जाकर सदा के लिए दुःखा हो जाता है ॥४६॥

उद्देशियं कीयगडं नियागं, न मुंचई किंचि अणोसणिजं ।
अग्नी विवा सव्वभवखी भवित्ता, इओ चुए गच्छइ कट्टु पावं ४७

जो साधु, उद्देशिक, कीतकृत, नित्यपिण्ड और सदोष
आहार, किंचित् भी नहीं छोड़ता, वरन् अग्नि की तरह सर्व
भक्षी होना है, वह मरकर अपने पाप कर्मों से दुर्गति में जाता है ।
न तं अरी कंठेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाइई मच्चमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥४८॥

दुराचार में प्रवृत्त आत्मा, अपना जितना अनिष्ट करता
है, उतना अन्तर्गत्ता काटनेवाला शत्रु भी नहीं करता । ऐसा
दया विहीन मनुष्य, मृत्यु के मुख में जाने पर अपने दुराचार
को जानेगा और फिर पश्चात्ताप करेगा ॥४८॥

निरद्धियां नगरुई उ तस्स, जे उत्तमहुं विवजासमेइ ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से भिज्जइ तत्थ लोए ॥

ऐसे द्रव्यलिंगों की सयम रुचि भी व्यर्थ है, जो
उत्तमार्थ-मोक्ष में भी विपरीत भाव रखता है । ऐसी आत्मा
के लिए दोनों लोक नहीं हैं । वह दोनों लोक से अष्ट
होता है ॥४९॥

एमेवऽहाछंदकुसीलरूवे, मग्गं विराहेत्तु जिणुत्तमाणां ।

कुररी विवा भोणरसाणुगिद्धा, निरद्धसोया परियावमेइ ॥५०॥

इस प्रकार स्वच्छन्दाचारी कुशीलिया, जितेन्द्र भग-

वान् क उत्तम माग की विराधता करके भोग रस में मृदु
हाकर निर्वर्णक शोक करने वाली पक्षिणी की तरह परित्याग
पाता है ॥५०॥

सोषाण मेहापि सुमासिय इम,
अणुसासयां नावगुणोवयय ।

मग्नं कुसीक्षाण सहाय सन्ने,
महानियठाण इए पहेयां ॥५१॥

इस ज्ञान युगवत्त एक शिलाभय सुमापित को सुनकर
बुद्धिमान् सा भू कुसीक्षा मग्न का सबका त्याग कर दे और
महानियन्त्र के मार्ग पर चले । ५१॥

परिधमापारगुणान्निष्ठ ठमो, अणुपरं संजम पालियायां ।
निरासवे संखषियाण कम्म, उवेइ ठायां पिउल्लुचम पुव ॥५२॥

पारिध और जानादि गुणों से युक्त होकर उत्कृष्ट
सयम का पालन करने से जीव धातव रहित होता है । फिर
कर्मों को अय करके विज्ञात एवं शारवत-माद-स्यान को
प्राप्त होता है ॥५२॥

एवमादते पि महातपोवणे, महामुखी महामुने महायसे ।
महानियठिजमियां महामुपं, स काहए महमा वित्थरेयां ॥५३॥

कर्मों का उग्र रूप से दमन करने वाले महातपोवनी
बृद्धप्रतिज और महान् यशस्वी उन महामुनि ने इस महा-
निर्घोषीय महामुत का प्रति विस्तार से कथन किया ॥५३॥

तुडो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कधंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्टु मे उवदंसियं ॥५४॥

इसे सुनकर श्रेणिक राजा सतुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा—'भगवन् ! अनायता का सच्चा स्वरूप आपने मुझे अच्छी तरह समझाया ॥५४॥

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सज्झं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी ।
तुज्झे सणाहा य सर्वधवा य, जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणां ॥५५॥

हे महर्षि ! आपका मनुष्य जन्म सफल है । आपने ही इसका लाभ उठाया है । आप ही सनाथ और सवान्धव है । क्योंकि आप जिनेन्द्र के सर्वोत्तम मार्ग में स्थित हैं ॥५५॥

तं सि नाहो अणाहाणां, सव्वभूयाण संजया ।
खामेमि ते महामाग, इच्छामि अणुसासिउं ॥५६॥

हे महाभाग ! आप अनाथों के नाथ हैं । हे सयति ! आप सभी प्राणियों के नाथ हैं । मैं आप से क्षमा चाहता हूँ और आपसे शिक्षा पाने का इच्छुक हूँ ॥५६॥

पुच्छिऊण मए तुज्झं, आणविग्घो य जो कओ ।
निमंतिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे ॥५७॥

मैंने आपसे प्रश्न पूछकर ध्यान में विघ्न किया, भोगों का निमन्त्रण दिया । इन सब अपराधों की क्षमा प्रदान करे ।

एव शुशिक्षाण स रायसीहो, अङ्गनारसीह परमाह भविष्य ।
सम्भोरोहो सपरिययो सवधवो, धम्माप्पुरत्तो विमल्लेश धेयसा ॥

इस प्रकार राजाओं में सिंह समान धैर्यवान् उन भगवान् सिंह की परम भक्ति से स्तुति करके अपने धम्म-पुर, परिव्रजन और बाणधर्मा के साथ निर्मल चित्त से धर्म में धनु रक्त हुआ ॥५८॥

ऊँससियरोमकुवो, काऊसं य पयाहिणं ।

अभिषदिऊँस सिन्हा, अङ्गनाओ नराहिणो ॥५९॥

इस से शमीषित हुआ राजा, प्रदीक्षणा करके और मस्तक झुकाकर बन्दना करके अपने स्थान को बसा गया ।

इयरो वि गुणसमिद्धो, विगुणगुणो विद्वद्विरभो य ।

विहग इव विप्यामुको, विहरइ वसुह विगयमोहो ॥६०॥ धि वेमि

धनाधी मणि धूना से समस्त तीन गुणधर्मों से गुण और तीन बन्ध से निवृत्त एवं माहू रहित यः वे पत्नी की तरह प्रतिबन्ध रहित हाकर पृथ्वी पर बिखरने लगे ॥६०॥

—बीसवीं अध्याय समाप्त—

समुद्धपालीय एगवीसद्धम अज्झयण

—१-११-११—

अपाण पालिए नाम, सावण आसि माणिए ।

महावीग्म्य भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥१॥

चम्पा नगरी में पालित नामक व्यापारी श्रावक रहता

था । वह महात्मा महावीर भगवान् का शिष्य था ॥१॥

निगथे पावयणे, सावण से वि कोविए ।

पोएण ववहरंते, पिहुंडं नगरमागए ॥२॥

वह श्रावक, निर्णय प्रवचनों में विशेष पंडित था । वह

जहाज से व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नगर में गया ॥२॥

पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूरं ।

तं ससच्चं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥३॥

पिहुण्ड नगर में व्यापार करते उसे किसी व्यापारी ने
अपनी कन्या देदी । कालान्तर में गर्भवती स्त्री को लेकर वह
अपने देश को रवाना हुआ ॥३॥

अह पालियस्स घरणी, समुदंमि पसवई ।

अह दारए तहिं जाए, समुदपालि ति नामए ॥४॥

इसके बाद पालित की स्त्री के समुद्र में प्रसव हुआ । समुद्र
में बालक का जन्म हुआ, इसलिए उसका नाम 'समुद्रपाल' रखा ।

खेमए आगए चंपं, सावण वाणिए घरं ।

संवहुई धरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥५॥

वह पालित श्रावक, कुशलतापूर्वक चम्पा नगरी में
अपने घर आया और सुकुमार बालक, सुखपूर्वक बढ़ने लगा ॥५॥

वावत्तरी कत्ताओ य, सिक्खई नीइकोविए ।

जोव्वणेण य संपअ, सुरूवे पियदंसणे ॥६॥

समुद्रपाल ने बहुततर कसाएँ सीसीं और नीति काबिज
हुआ । मुवाबस्था प्राप्त होने पर वह अत्यन्त सुकृप और सबको
प्रिय लगने लगा ॥६॥

तस्य रूबग्रह मज्जा, पिपा आयेह रुविबिं ।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुदगो खहा ॥७॥

उसका पिता, उसके भिय कपिणो माम की रूपवती
भार्या लाया । वह उसके साथ रमणीय महल में दोगुन्दक
जाति के बैब की तरह प्रीड़ा करने लगा ॥७॥

अह अभया कयार्ह, पाशायोसोयणे ठिम्भो ।
बज्जमइणसोमार्ग, बज्ज पासह बज्जर्ग ॥८॥

किसी समय भवन की छिडकी में बैठे हुए समुद्रपाल
ने एक मपरानी को मत्स्य जिम्हीं से युक्त बब-स्नान पर ले
जाते हुए देखा ॥८॥

त पासिअब्ब संविम्भो, समुद्रपालो इणमब्बवी ।
अहोऽसुहाय कम्मार्पा, निजाया पावर्ग इम ॥९॥

उसे देखकर समुद्रपाल सबसे को प्राप्त हाकर इस
प्रकार कहने लगा—‘अहो ! अधुन कर्मों का अंतिम फल पाप
रूप ही है । यह अत्यन्त दिक्काई से रहा है ॥९॥

संशुद्धो सो तर्हि भगवं, परमसंवेगमागमो ।
आपुण्णम्मपिपरो, पण्ण अणगारिय ॥१०॥

ऐश्वर्यसपन्नः समुद्रपाल, वही बैठे हुए बोध पाकर परम सवेग को प्राप्त हुए, और माता पिता को पूछकर प्रव्रज्या लेकर अनगर हो गये ॥१०॥

अहिचु संगं च महाफिलेसं, महंतमोहं कसियां भयावहं ।
परियायधम्मं च ऽभिरोयएजा, वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥

महान् क्लेश, महामोह और अनेक भय उत्पन्न करने वाले स्वजनादि के सम्बन्ध को छोड़कर, प्रव्रज्या धर्म में रहि रहने लगे और व्रत एवं शील का पालन कर, परीसही को सहन करने लगे ॥११॥

अहिंसं सत्तं च अतैणगं च, तत्तो अवंभं अपरिग्रहं च ।
यद्विवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विज्ज ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच महाव्रतों को स्वीकार कर वे बुद्धिमान् भूनि, जिनोपदेशित धर्म का पालन करने लगे ॥१२॥

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुक्कंपी, खंतिक्खमे संजयवंमयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो, चरिज्ज भिक्खू सुममाहिंइंदिए ॥१३॥

सब जीवों पर दया पूर्वक अनुकम्पा करने वाला, कठोर वचनों को क्षमा से सहने वाला, संयती, ब्रह्मचारी, समाविव्रत और इन्द्रियो को बश में रखने वाला साधु, सभी प्रकार के सावध योगों का त्याग करके विचरे ॥१३॥

काक्षेय काक्ष विहरेत् रघु, यत्तावत् आश्रिय अप्पणो य ।
सीहो व सदेय न संतसेत्ता, वयमोय सुधा न असम्भमाहु ॥

यथा समय प्रतिसेवमादि क्रिया करता हुआ अपने
वसावस को जानकर राष्ट्र में बिचरे और भयकर शब्द को
सुनकर भी सिंह की तरह निडर रहे तथा कठोर बचन नहीं कहे ।
उपेक्षमाणो उ परिग्रह्यता, पियमप्यिय सम्ब तितिकस्वपत्ता ।
न सम्ब सम्बत्समिरोपत्ता, न यावि पूय गरह च संभर ॥

भूमि उपेक्षा पूर्वक समय में बिचरे । प्रिय और अप्रिय
सब को सहन करे । सब जगह सभी वस्तुमा की अभिलाषा
नहीं करे तथा पूजा और निन्दा का भी नहीं जाहे ॥१३॥

अखेगच्छामिह माखवेहि, जे मावभो संपगरेह भिक्खू ।
मयमेरवा तत्थ उइति मीमर, दिम्भा मयुस्सा अहुवा तिरिच्छा ॥

इस जाक में मनुष्यों में अनेक प्रकार-क धर्मिप्राय होते
हैं । सामु के मनमें भी बीसे भाव हो सकते हैं किन्तु सामु संयम
में बृह रहे, और देव मनुष्य तथा तिर्यक् सम्बन्धी धर्मगत
भयंकर उपसर्ग उत्पन्न हों उन्हें समभाव से सहन करे ॥१४॥

परीसहा दुम्भिसहा अखेगे, सीयति जत्था बहुक्खपरा मरा ।
से तत्थ प्पे न बहिल भिक्खू, संगामसीसे इव नागराया ॥

अनेक प्रकार के दुर्बल परीषद् उत्पन्न होने पर बहुत
से कायर मनुष्य समय में क्षिपित हो जाते हैं । किन्तु संग्राम

के धागे रहे हुए शूरवीर हाथी की तरह संयम में दृढ़ रहने वाले साधु, परीषहों से नहीं घबराने । समुद्रपाल भी परीषहों से चलित नहीं होते थे ॥१७॥

सीओसिणा दंसमसा य फासा, आयंका विविहा फुसंति देहं ।
अकुक्कुओ तत्यऽहियासएआ, रयाइं खेवेज्ज पुरे कयाइं ॥

शीतोष्ण, ठंडा, मच्छर, तृणस्पर्श और अनेक प्रकार के राग, शरीर का नष्ट कर देते हैं । उस समय आक्रन्द नहीं करता हुआ समभाव से सहे और पूर्वकृत कर्म रूप रज को क्षय करे ।

पहाप रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खु सययं वियक्खणो ।
मेह व्व वाएणं अरूपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेआ ॥१८॥

विभक्षण मुनि, राग द्वेष और मोह को निरन्तर त्यागे और वायु से कम्पित नहीं होनेवाले मेह को तब ही आत्म गुप्त होकर परीषहों को सहन करे ॥१८॥

अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए ।
से उज्जुभावं पडिअअं संजए, निज्वाणमगं विरए उवेइ ॥२०॥

जो महर्षि, पूजा पाकर उन्नत और निन्दा पाकर भवनत नहीं होता तथा ऋजुभाव रखकर विरत होता है, वह निर्वाण मार्ग को प्राप्त करता है ॥२०॥

अरइरइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं ।
पमट्ठपएहिं चिद्धई, छिजसीए अममे अकिंचणे ॥२१॥

अरति और रति को सहन करते हुए गृहस्थों के परि-
चय को छोड़ और आत्महिताय विरत होकर समय में सीन
रहे । चाक एव ममत्व से रहित हो अकिंचन भाव से मात्र
मात्र में स्थिर हों ॥२१॥

विविचक्षणयाद् मयूख सार्द्धं, निरोद्धेवाद् अर्धबद्धाद् ।
इसीहिं विषयाद् महायसार्द्धं, कायस्य कासेन परीतहाद् ॥

प्राणी रत्नक साधु महायसस्वी ऋषिर्षों द्वारा स्वीकृत
सेव और ब्रोज रहित एकान्त स्थान का सेवन करे । यदि वही
परोपहु भावे ता सहन करे ॥२२॥

स नायनाद्योवमए महेसी, अणुचरं चरितं धम्मसंचयं ।
अणुचरे नाक्षचरे अससी, ओमासर्द्धं हरिण वल्लिकले ॥२३॥

समुद्रपास मुनि भूतजान से सम्पन्न और उत्कृष्ट क्षमादि
धर्म का संचय करके सर्वोत्कृष्ट केवमज्ञान को प्राप्त किया ।
छिन्न आकाश में सूर्य की तरह प्रकाशित होने लगे ॥२३॥

दुर्विहं लुब्धेभ्यः य पुण्यपाद, निरंजने सव्यधो विष्णुमुक्क ।
तरिता समुद् व महामर्षोर्ष, समुद्रपास्ते अपुथागम गण । विवेमि

दोनो प्रकार के कर्म तथा पुण्य और पाप को सम
करके समुद्रपासजी सभी बबनों से मुक्त हो गये और संकेष्टी
प्रवस्था पाकर ससार रूप महासम्रा को तिर कर मोक्ष को
प्राप्त हुए ॥२४॥

—इहकीसर्वा धर्मयन समाप्त—

रहनेमिञ्जं बावीसइमं अज्भयणां

॥ २२ ॥

सौरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिद्धिए ।

वसुदेव त्ति नामेणां, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

शौर्यपुर नगर में वसुदेव नाम के राजा राज्य करते थे । वे महाशक्तिशाली और राजा के लक्षणों से युक्त थे ॥१॥

तस्स भज्जा दुवे आसि, रोहिणी देवई तद्दा ।

तासि दोण्हं दुवे पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

उनके रोहिणी और देवकी नाम की दो स्त्रियाँ थीं । उन दोनों के नाम और केशव ऐसे दो पुत्र थे—जो सबको प्रिय लगते थे ॥२॥

सौरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिद्धिए ।

समुद्रविजए नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

शौर्यपुर नगर में, समुद्रविजय नाम के राजा, महाशक्तिमान् और राज्य लक्षणों से युक्त थे ॥३॥

तस्स भज्जा शिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।

भगवं अरिद्धनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

उनकी शिवा नाम की भार्या थी । उनके पुत्र, महायशस्वी, परमजितेन्द्रिय, त्रिलोकनाथ भगवान् अरिष्टनेमि थे ॥४॥

सोऽरिष्टनेमिनामो य, लक्ष्मसस्तरसंजुम्भो ।
अहसहस्सलक्ष्मसधरो, गोपमो कालगच्छी ॥५॥

वे परिष्टनेमि कुमार सप्तम धीर स्वर से युक्त एक हजार घाठ सदाशों के धारक गौतम गौत्रीय और कृष्ण कति बासे ॥५॥

बल्लरिमहसंपययो, समचउरसो भूमोपरो ।
तस्स राईमई फल, मल्ल आयह कस्तमो ॥६॥

वे वल्लभयममाराज संहनन समचतुरस्र संस्थान और मरस्य के समान उदर वाले थे । धीकृष्ण ने उनकी धार्या बनाने के लिए राजमती नामवाली कन्या की याचना की ॥६॥

अह सा रायवरकभा, सुसीता चारुपेक्षी ।
सम्पत्तकस्त्यसंपभा, विन्तुसोश मखिप्पमा ॥७॥

अह राजकन्या सुसीता सुन्दर बुद्धिवाली सभी द्रुम भक्षकों से सम्पन्न और कमकती हुई विजयी के समान प्रेमा वाली थी ॥७॥

अहाह सबभो सीसे, वासुदेव महिष्ठियं ।
इहागच्छउ कुमारो, मा से फल दलामि हं ॥८॥

राजमती के पिता (उपसेनजी) ने महान्द्विषालो धीकृष्ण को कहा कि यदि परिष्टनेमि कुमार यहाँ प्यारे लो में उन्हें अपनी कन्या दे दू ॥८॥

सन्धोमहीहिं सहविओ, कयकोउयमंगलो ।

दिव्वजुयलपरिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ ॥६॥

श्री अरिष्टनेमि कुमार को सर्व औषधियों से मिश्रित हुए जल से स्नान कराया । कौतुक मगल किये । दिव्य वस्त्र युगल पहिनाये और आभूषणों से विभूषित किये ॥६॥

मत्तं च गंधहस्तिं, वासुदेवस्त जेडुगं ।

आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा ॥१०॥

जित्त प्रकार निर पर चूडामणि—मुकुट शोभा पाता है, उमी प्रकार वासुदेव के भस्त और सबसे बड़े गंधहस्ती पर चढ़े हुए श्री अरिष्टनेमि कुमार अत्यन्त शोभित हुए ॥१०॥

अह ऊंसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिओ ।

दसारचक्केण य सो, मुव्वओ परिवारिओ ॥११॥

ऊंचे छत्र और चामरो तथा दशाहं चक्र से सभी ओर घिरे हुए कुमार शोभा पाने लगे ॥११॥

चउरंगिणीए सेणाए, रडयाए जहकमं ।

तुडियाण सन्निपाएण, दिव्वेणं गगणं फुसे ॥१२॥

क्रमानुसार सजी हुई चतुरगिणी सेना तथा चादिन्द्रो के शब्द से आकाश गुज उठा ॥१२॥

एयारिसीए इड्डीए, जुईए उच्चमाइ य ।

नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वणिहपुंगवो ॥१३॥

इस प्रकार उत्तम ऋद्धि और तेज से युक्त हाकर
वृष्णिपुंगव-धरिष्टनेमिकुमार अपने मन्त्र से निकले ॥११॥

अह सो तस्य निर्वृतो, दिस्तु पाखे मयवदुष्ट ।

बाहेहिं पञ्चरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुस्त्रिष्ट ॥१२॥

प्रस्थान करते हुए धरिष्टनेमिकुमार ने बाढ़ों और
पिचरों में बन्द मयमीठ तथा दुस्त्रिष्ट पशुओं को देखा ॥१३॥

जीवियतं तु संवत्से, मसङ्गा मन्त्रियम्बध ।

पासिचा से महापन्ने, सारहिं इवमन्ववी ॥१४॥

महापञ्च धरिष्टनेमि ने मांस मन्त्र के लिए जीवन के
मन्त्र को प्राप्त होने वाले प्राणियों की देखकर सारहिं से इस
प्रकार पूछा ॥१५॥

कस्तु अङ्गा इमे पाखा, एए सन्ने सुहेसिजो ।

बाहेहिं पञ्चरेहिं च, सन्निरुद्धा य अम्भहिं ॥१६॥

ये सभी प्राणी सुल को चाहने वाले हैं । इन्हें बाढ़ों
और पिचरों में किस भिये बन्द किये हैं ॥१६॥

अह सारही तम्भो मन्त्र, एए महा उ पासिजो ।

सुम्भं विवाहकम्मि, भोपाकेउ बहु अया ॥१७॥

तब सारहि ने कहा—इस सब निर्वीर्य जीवों को आपके
विवाह कार्य में बहुतों को भोजन कराने के लिए बन्द किये हैं ।

सोऽत्थ तस्स वयणा, दह्मणिदिग्गमणां ।

चित्तेइ से महापन्ते, साणुक्कोसे जिएहिउ ॥१८॥

बहुत से प्राणियों के विनाश रूप सारथि के वचन सुनकर, जीवों पर कृपा रखने वाले महाप्राज्ञ नेमिकुमार सोचने लगे ॥१८॥

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुबहू जिया ।

न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई ॥१९॥

यदि मेरे कारण से बहुत से जीव मारेजायेगे, तो यह कार्य मेरे लिए परलोक में कल्याणकारी नहीं होगा ॥१९॥

सो कुंडलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो ।

आभरणाणि य सत्त्वाणि, सारहिस्स पणामए ॥२०॥

उन महायशस्वी भगवान् ने, दोनों कुण्डल कन्दोरा तथा सभी आभूषण सारथि को प्रदान कर दिये ॥२०॥

मणुपरिणामे य कए, देवा य जहोइयं समोइएणा ।

सच्चिद्धीइ सपरिसा, निक्खमणां तस्स कोउं जे ॥२१॥

भगवान् के दीक्षा के परिणाम होने पर, देवता अपनी सर्वश्रद्धा और परिषद के साथ निष्क्रमण महोत्सव करने आये ।

देवमणुस्सपरिवुडो, सीवियारयणां तओं समारूढो ।

निक्खमिय बारगाओ, रेवययंमि ठिओ भयवं ॥२२॥

देव और मनुष्यों से परिवारे हुए भगवान्, शिविका रहत

पर घास्य होकर द्वारका से निकले घोर खतक पर्वत पर पधारे ।

उजाषां संपत्तो, भोऽयसो उचमाउ सीपाभो ।

साहस्सीए परिबुडो, अइ निस्त्वमई ठ पिठाहिं ॥२३॥

वहाँ उद्यान में पहुँच कर, उत्तम सिबिका से नीचे उठते घोर
पिठा तक्षम म एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा भगीकार की ।

अइ सो सुगंघगंघिए, तुरिय मठभकुचिए ।

सुयमेव लुंवाई केसे, पपमुट्टीहिं समाहिभो ॥२४॥

इसके पश्चात् भगवान् ने सुयम्भ से सुवासित कोमल
केसों का स्वयं सीध ही पाँच मुष्टि लाच किया ॥२४॥

वासुदेवो य यां मयइ, लुचकैर्छं त्रिदियं ।

इच्छिपमभोरइ तुरिय, पांचसु त दमीसरा ॥२५॥

सुच्छिपत केस बासे बितेन्द्रिय भगवान् को वासुदेव
आदि कहने लगे कि हेवमीस्वर ! आप सीध ही इच्छित
मनोरथ प्रचक्षि मुक्ति को प्राप्त करो ॥२५॥

नायेपां दमयेपां च, परिचेपां तदेस्य य ।

खंतीए मुत्तीए, बहुमायो मदाहि य ॥२६॥

ज्ञान से हे महामात । आप दर्शन से चारित्र्य से तप
से क्षमा और निर्दोषता से सदा बड़ते ही रहों ॥२६॥

एवं से रामकेसवा, दसारा य बहुसखा ।

अरिहनेमि बंदिता, अइगया बारमापुहिं ॥२७॥

इस प्रकार वे केशव और दशार्ह आदि अनेक मनुष्य,
म० अरिष्टनेमि को वन्दना करके द्वारका नगरी में आगये ।

सौज्य रायकन्या, पञ्चजं सा जिहस्स उ ।

नीदासा य निराणांदा, सोगेण उ समुत्थिया ॥२८॥

वह राजकन्या, भगवान् की दीक्षा मुनकर हास्य और
आनन्द से रहित एव शोकाकुल हो गई ॥२८॥

राईमई विचितेड, धिरत्थु मम जीवियं ।

जाऽहं तेण परिचत्ता, सेयं पञ्चइउं मम ॥२९॥

राजमती विचारने लगी कि 'मेरे जीवन को धिक्कार
है जो मैं अरिष्टनेमिनाथ के द्वारा त्याग दी गई' । अब मेरे
लिए दीक्षा लेना ही श्रेष्ठ है ॥२९॥

अह सां भमरसन्निभे, कुचफणगप्पसाहिए ।

सयमेव लुच्चई केसे, धिइमंता ववस्सिया ॥३०॥

उस घँघरिणी एव सयम के लिए उद्यत हुई राजमती
ने अपने भ्रमर जैसे काले तथा कुच और कंधी से सँवारे
हुए केशों का स्वयं लोच किया ॥३०॥

वासुदेवो य शां भणइ, लुत्तकेसं जिहंदियं ।

संसारसायरं घोरं, तर कन्ने लहुं लहुं ॥३१॥

उस लुञ्चित केशवाली जितेन्द्रिय राजमती से वासुदेवादि
कहने लगे कि, "हे कन्ये ! तू इस दुस्तर संसार समुद्र को
शीघ्र ही तिर जा" ॥३१॥

सा पन्थाया संती, पन्थावेसी तहि बहु ।

सपयां परिययां चेह, सीलबंठा बहुसुया ॥३२॥

सीलबती बहुभूता राजमती ने दीक्षित होकर, बहुत-सी स्वजन परिजन स्त्रियों को दीक्षा दी ॥३२॥

गिरि रेवतय जती, बासेछुवा उ अतरा ।

बासंते अघपारम्मि, अतो जयसस्स सी ठिया ॥३३॥

बहु रक्तगिरि पर जाती हुई वर्षा से भीगे गई घोर वर्षा से अघमे के लिए एक अघकारवासी । मुझ में ठहर गई ।

बीवराई विसारंति, ब्रह्माशय चि पासिया ।

रहनमि मगपिच्छो, पच्छ दिहो य तीदि वि ॥३४॥

उस मुझ में पड़कर उस रक्तनेमि ध्यानस्थ था । उसने राजमती का वस्त्र सुनात हुए मम्मरूप में देखा रक्तनेमि का चित्त भंग हो गया । राजमती ने भी बाद में उसे देख लिया ॥३४॥

मीया य सा तहि दहुं एगंते संजय तय ।

बाडाहि कठ सगोप्फ, वेवमाप्पी निसीयई ॥३५॥

एकान्त में संजय को देखकर समझीत हुई राजमती अपनी जानो मुन्नाओं से खरीद को डक कर कांपती हुई बैठ गई ।

अह सो दि रायपुत्तो, ससुदविजयगगो ।

मीय पवैविय दहु, इमं भक ठदाहरे ॥३६॥

समुद्रविजय का पुत्र वह रथनेमि, भय से काँपती हुई
राजमती को देखकर यों कहने लगा ॥३६॥

रहनेमी अहं भदे, सुरुवे चारुभासिणि ।

ममं भयाहि सुयणु, नते पीला भविस्सई ॥३७॥

हे भद्रे ! मे रथनेमि हूँ । हे सुन्दरी, मृदुभाषिणी,
सुन्दर शरीरवाली ! मुझे सेवन कर, तुझे किसी प्रकार की
पीडा नहीं होगी ॥३७॥

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।

भुत्तभोगी पुणो पच्छा, जिणमगं चरिस्सिमो ॥३८॥

तुम इधर आओ, यह मनुष्यभव मिलना बहुत दुर्लभ
है । भोजन पहले भोग भोग ले । भुक्त्तभोगी होने के बाद फिर
जिन मार्ग पर चलेगे ॥३८॥

ददूण रहनेमिं तं, भग्गुजोयपराजियं ।

राईमई असंमंता, अप्पाणां संवरे तहिं ॥३९॥

भग्न चित्त और स्त्री परीषह से पराजित हुए रथनेमि
को देखकर, राजीमती निर्भीक हुई । उसने अपने शरीर को
बक लिया ॥३९॥

अह सा रायवरकन्हा, सुट्ठिया नियमव्वण ।

जाई कुलं च सीलं च, रक्खमाणी तयं वण ॥४०॥

फिर वह राजकन्या स्थिर होकर अपने जाति, कुल

धीर धीम की रक्षा करतो हुई रमनेमि से इस प्रकार बोली ।

अहं सि रूवेष्ट वेसमखो, ललिपय नलकूमरो ।

सहा वि से न इच्छामि, अहं सि सक्ख पुरंदरो ॥४१॥

तू यदि रूप में बंधमग्न हो और भीसा बिसास में मत्त
कूबर के समान भी हो तथा सासाठ इन्द्र हो तो भी मैं तुम्ह
नहीं चाहती ॥४१॥

पक्खदे अन्नियं ओइ, पुमकेउ दुरासय ।

नेच्छंति वतरं मोतु, इत्ते जाया अगंघये ॥४२॥

अगम्यन कुल के सर्प आम्बल्यमान अग्नि में गिरना
स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु वसन किये हुए बिच का नहीं चाहते ।

विरट्ठु तेऽअसोकमी, ओ व जीवियकरणा ।

वंत इच्छसि आवेउं, सेप ते-अरणां मवे ॥४३॥

हे सपमण का चाहते वाले ! तुम्हें भिक्कार है या तू
असंयमी जीवन के लिए, वसन किये हुए भोगों को चाहता है ।
इससे तो तेरा मरना ही अवस्कर है । ॥४३॥

अहं च भोगरापस्स, व चउत्ति अणणवण्हजो ।

मा इत्ते गंधवा होमो, संजम निहुओ वर ॥४४॥

म वप्रसेन की पुत्री हैं और तुम समुद्रविजय के पुत्र
हो । हमें मन्थन कुल के उप के समान नहीं होना चाहिए ।
इसलिए निश्चय होकर समय पासो ॥४४॥

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।

वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥४५॥

यदि तुम वैषयिक भाव रखोगे, तो जहाँ जहाँ स्त्रियो को देखोगे, वहाँ वहा वायु से हिलाये हुए हड वृक्ष की तरह अस्थिर हो जाओगे ॥४५॥

गोवालो भंडवालो वा, जहा तदव्वऽणिस्सरो ।

एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥४६॥

जिस प्रकार त्वाला, गायो का स्वामी नहीं है और भडारो, भडार का धनी नहीं है, उसी प्रकार तुम भी वैषयिक भाव के कारण समय के धनी नहीं रहोगी ॥४६॥

तीसे सो वयणां सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ।

अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाडओ ॥४७॥

रणेमि ने उस समयमशीला राजमत्ती के सुभाषित को सुनकर, अंकुश लगाये हुए हाथो की तरह अपने को वश में किया और धर्म में स्थिर हुआ ॥४७॥

कोहं माणां निगिहिहत्ता, मायं-लोमं च सन्नसो ।

इंदियाइ वसे काउं, अप्पाणां उवसंहरे ॥४८॥

क्रोध, मान, माया और लोभ को जीतकर और पाचों इन्द्रियों को वश में करके तथो आत्मा को प्रमाद से हटाकर धर्म में स्थिर किया ॥४८॥

मद्यगुप्तो वयगुप्तो कायगुप्तो, जिह्दिभ्यो ।

॥ सामण्यां निश्चलं कासे, चावकीव दृढम्वभ्यो ॥४६॥

मन वचन और काया से मुक्त तथा नितेन्द्रिय हाकर
बुद्ध और निश्चलता से जीवन पर्यन्त समान धर्म का पालन
किया ॥४६॥

उभ्यां तर्बं चरितार्थां, आया दोषिष्य वि येनली ।

सम्प कम्म, सुविचार्यां, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४७॥

उभय तप का आचरण करके दोनों केवलज्ञानी हो गये
और सभी कर्मों का नाश करके सिद्ध भक्ति को प्राप्त हुए ।

एव करेंति संशुद्धा, पठिया पथियक्खणा ।

विधिपटुंति मोगेसु, गहा से पुंरिसुद्धमो । पि बेमि ॥

जिस प्रकार पृथ्वीतम रत्नमैत्रि ने आत्मा को वश में
करके मोक्ष पाया उसी प्रकार तत्त्वज्ञानी विचक्षण पंडितजन
भोगों से निवृत्त होकर मुक्त होते हैं ॥४८॥

— बाकीसर्वा ध्यायन्त समाप्त —

केसिगोयमिस्स तेवीसद्धम अज्झयणा

— ॥४९॥ —

जिथे पासिदि नामेस, अरहा सोगपूअभ्यो ।

संशुद्धप्पा य सम्बन्ध, धम्मतिथयरे जिथे ॥४९॥

त्रिलोक पूज्य, धर्म तीर्थक्षुर, सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्री पार्श्व-
नाथ नाम के अर्हन्त जिनेश्वर हुए ॥१॥

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।

केशीकुमार समझे, विज्ञाचरणपारगे ॥२॥

उत्त लोक-प्रकाशक भगवान् के शिष्य, महायशस्वी
केशीकुमार धमण थे, जो ज्ञान और चारित्र में परिपूर्ण थे ।

ओहिनाणसुए बुद्धे, सीससंवसमाउले ।

गामाणुगामं रीयंते, सावत्थि पुरमागए ॥३॥

भक्ति, श्रुत, अवविज्ञान से तत्त्वों के ज्ञाता केशीकुमार
अपने शिष्य सब सहित आवस्ति नगरी में पधारे ॥३॥

तिंदुयं नाम उज्जाणां, तम्मी नगरमंडले ।

फासुए सिजसंधारे, उत्थ वासमुवागए ॥४॥

वे उस नगर के समीप वाले तिंदुक उद्यान में निर्दोष
शय्या संधारा लेकर ठहरे ॥४॥

अह तेखेव कालेणां, धम्मतिथ्यरे जिणे ।

भगवं वद्धमाणे त्ति, सच्चलोगम्मि विस्सुए ॥५॥

उस समय विश्वविख्यात, जिनेश्वर भगवान् वद्धमान
स्वामी, धर्म तीर्थ के प्रवर्तक थे ॥५॥

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।

भगवं गोयमे नामं, विज्ञाचरणपारगे ॥६॥

उन मोक्ष-प्रकाशक भगवान् के शिष्य महायसस्वी
भगवान् गौतम स्वामी ने जो विद्या और चारित्र्य में परिपूर्ण थे ।

बारसंगविऊ बुद्धे, सीससैषसमावृत्ते ।

गामाण्डुगाम रीयते, से-वि सावत्थिमागए ॥७॥

झाड़घाँस के बेटा तरह ज्ञानी भगवान् गौतम अपने
शिष्य संघ के साथ उसी अवस्थिति नगरी में पधारे ॥७॥

कोट्टुर्गं नाम ठक्काणं, ठम्मि नगरमवृत्ते ।

फासुए सिअसंवारै, तत्थे वाससुवागए ॥८॥

वै उस नगर के बाहर कोट्टक उद्यान में निर्वोष स्थान
धीरे धुप्या लेकर ठहरे ॥८॥

केसीकुमारसमसे, गोयमे य महायसे ।

ठमओ वि तत्थ विहरिसु, अट्ठीया सुसमाहिया ॥९॥

महायसस्वी केसोकुमार भ्रमण और जो गौतम स्वामी ने
बोनों ही इन्द्रियों को बध में करके समाधिपूर्वक बिचरने सये ।

ठमओ सीससंवाणं, संअयाणं तवम्मिसुणं ।

तत्थ चित्ता सट्ठप्पमा, सुअरंसाव तप्पया ॥१०॥

बोनों धोर के शिष्य समवाय में संघटी तपस्वी और
भगवान् भ्रमण थे । समर्थ इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ ।

केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो य केरिसो ? ।

आयारधम्मप्यदिही, इना वा सो व केरिसी ? ॥११॥

हमारा धर्म कौंसा है और इनका धर्म कौंसा है । तथा हमारे और इनके आचार धर्म की व्यवस्था कौंसी है ? ॥११॥

चाउजामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।

देसिओ वद्धमाणेणं, पासेण य महामुणी ॥१२॥

महामुनि पाद्वेत्ताथ ने चारयामरूप धर्म और वद्धमान स्वामी ने पाव शिसारूप धर्म का उपदेश किया ॥१२॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो ।

एगकज्जपवन्नाणां, विसेसे किं नु कारणां ॥१३॥

एक अचेलक धर्म है और एक प्रधान वस्त्ररूप धर्म है । एक ही कार्य के लिए प्रवृत्त, दोनों तीर्थंकरों में यह भेद क्यों ?

अहं ते तत्थ सीसाणां, विन्नाय पवित्तकियं ।

समागमे कयमई, उभओ केसिगोयमा ॥१४॥

श्री केशीकुमार और गौतम स्वामी दोनों ने अपने शिष्य समुदाय को शका को जानकर, परस्पर मिलने का विचार किया ॥१४॥

गोयमे पेडिरूवन्नू, सीससंघसमाउले ।

जेट्ठं कुलमवेक्खंतो, तिदुयं वणमागओ ॥१५॥

वितयज्ज श्री गौतम स्वामी, ज्येष्ठ कुल का विचार करके अपने शिष्य सघ के साथ । टुक वन में आये ॥१५॥

केसी कुमारसमसे, गोयम दिस्समागय ।

पडिस्स पडिबत्ति, सम्म संपडिबत्तई ॥१६॥

श्री गौतमस्वामी को आते हुए देखकर श्री केशीकुमार
ने मणित धीर बहुमान पूरक जनका स्वामत किया ॥१६॥

पछाल फामुय तत्थ, पघम इस्सतत्थाणि य ।

गोयमस्स निसेजाय, सिण्य संपशामय ॥१७॥

श्री गौतमस्वामी के बैठने के लिए आसुक्त पराज कुल
तथा पांच प्रकार के तृण-समर्पण किये ॥१७॥

कसी कुमारसमसे, पोयमे य महायसे - ।

उममो निमण्णा सोइति, पदधरसमप्पमा ॥१८॥

केशीकुमार अमन धीर महायशस्वी गौतम दोनों बैठे
हुए इस प्रकार सोझित होने लगे जैसे जम्बू धीर सूर्य अपनी
प्रभा से शोभा पाते हैं ॥१८॥

समागया बहु उत्थ, पार्सडा कोउगा मिया ।

गिइत्थायां अजेगाओ, साइस्सीओ समागया ॥१९॥

वहाँ बहुत से पाण्डुपत्नी कीदुहसी अज्ञानी धीर हजारों
गृहस्थ आ गये ॥१९॥

देवदासपगवन्था, अस्सरकलसकिमरा ।

अदिस्सायां च भूपायां, आसी तत्थ समागमो ॥२०॥

देव, दामन पण्डित यज्ञ राजस और किमर तथा

अदृश्य भूत भी वहा आ गये ॥२०॥

पुच्छामि ते महाभाग, कैसी गोयममन्ववी ।

तत्रो केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमन्ववी ॥२१॥

श्री केशीकुमार, गौतमस्वामी से कहने लगे कि हे महाभाग ! मैं आपसे प्रश्न पूछता हूँ । इस पर गौतमस्वामी ने कहा कि—

पुच्छ भंते ! जहिञ्छं ते, कैसी गोयममन्ववी ।

तत्रो कैसी अणुन्नाए, गोयमं इणमन्ववी ॥२२॥

हे भगवन् ! इच्छानुसार पूछिये । गौतमस्वामी की आज्ञा मिलने पर केशी श्रमण ने इस प्रकार कहा ।

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।

देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥२३॥

श्री बद्धमान स्वामी ने पाच शिक्षारूप धर्म कहा और श्री पार्श्वनाथ ने चार यामरूप धर्म का उपदेश दिया ।

एगकजपवन्नाणां, विसेसे किं नु कारणं ? ।

धम्मे दुविहे मेहावि, कहं विप्पच्चओ न ते ॥२४॥

हे मेवाविन् ! एक ही कार्य के लिए प्रवृत्त इन दोनों जिनेश्वरो में विशेष भेद होने का कारण क्या है ? इस प्रकार धर्म के दो भेद होने पर आपको सशय क्यों नहीं होता ? ॥२४॥

तत्रो केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमन्ववी ।

पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तं विणिच्छियं ॥२५॥

श्री केहीस्वामी के कहने पर गौतमाश्रमाश्रम में कहा कि तर्कों का निषेध करने वाली प्रज्ञा ही धर्म को सम्मत्स्य से देखती है।

पुरिमा उज्जुज्झा उ, वकज्झा य पच्छिमा ।

मज्झिमा उज्जुपथा उ, तेण धम्मो दुहा कण ॥२६॥

प्रथम तीर्थंकर के मनि उज्जुज्झा और अन्तिम तीर्थंकर के साधु वकज्झा तथा मध्य के मज्झपथा होते हैं। इसलिये धर्म के दो भेद हैं ॥२६॥

पुरिमाय दुव्विसोज्झो उ, पुरिमाय वुरणुपासओ ।

कप्पो मज्झिमगाय तु, सुविसोज्झो सुपासओ ॥२७॥

प्रथम तीर्थंकर के मुनि कठिनता से समझते हैं और अन्तिम जिनके मुनियों का धर्म पासता कठिन होता है। किन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों के लिए समझना और पासता सुसम होता है।

साहु गोयम पप्पा ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।

धन्नो वि संसओ मज्झ, सं मे क्खसु गोयमा ॥२८॥

हे गौतम ! घापकी प्रज्ञा अच्छ है मेरी शंका दूर हो गई। किन्तु मुझे अग्य शंका भी है। घाप उसका समाधान करें।

अपेत्तगो य ओ धम्मो, ओ इमो संतरुत्तरो ।

देसिओ इत्थमासेवा, पासेवा य महासुखी ॥२९॥

हे गौतम ! श्री वर्तमान स्वामी का उपदेश किया

हुआ अचेलक धर्म है और प्रधान वस्त्र धारण करने का धर्म महामुनि पार्श्वनाथ का है ॥२६॥

एगकजपवन्नाणं, विसेसे किं तु कारणं ।

लिंगे दुविदे मेदावी, कदं विप्पच्चओ न ते ॥२७॥

एक ही कार्य में प्रवृत्ति करने वालों में भेद होने का कारण क्या है ? हे मेधाविन् ! लिंग के दो भेद होने से आपको शका नहीं होती ? ॥२७॥

केसिमेवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी ।

विन्नायेण समागम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ॥२८॥

केशी स्वामी के पूछने पर श्री गौतमस्वामी ने कहा कि विज्ञान से जानकर ही धर्म साधनों की आज्ञा दी गई ।

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविद्विगप्पणं ।

जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयणं ॥२९॥

लोक में प्रतीति के लिए, समय निर्वाह के लिए, ज्ञानादि ग्रहण के लिए और वर्षाकल्प आदि में समय पालने के लिए उपकरण और लिंग की आवश्यकता है ॥२९॥

अहं मवे पड्ढा उ, भोक्खुसब्भुयसाहणा ।

नाणं च दंसणं चेव, चरिचं चेव निच्छए ॥३०॥

दोनों तीर्थंकरों की प्रतिज्ञा तो निश्चय से मोक्ष के सम्भूत साधन-ज्ञान दर्शन, और चारित्र्यरूप ही है ॥३०॥

साङ्गु गोयम पन्ना ते, क्षिन्नो म ससम्भो इमो ।
अन्नोवि संसम्भो मज्झ, त मे कइसु गोयमा ॥३४॥

हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा अष्ट है । मेरी शंका दूर
हो गई ॥३४॥

अखेगाण्ह सहस्ताण्ह, मज्झे षिड्ढसि गोयमा ।
सं य ते अहिगम्भंति, कइ ते निमिया तुमे ॥३५॥

हे गौतम ! तुम हजारों शत्रुओं के मध्य में जाते हो ।
वे शत्रु तुम्हें जीतने को तैयार हैं । तुमने उन शत्रुओं को कैसे
जीता ? ॥३५॥

एगे जिए जिया पंच, पच जिए जिया दस ।
दसहा उ जियिच्छाण्ह, सम्भसत्त जिष्णामह ॥३६॥

एक के जीतने पर पाँच जीते गये और पाँच के जीतने
पर दस । दस प्रकार के शत्रुओं को जीतकर मेने सभी
शत्रुओं को जीत लिया ॥३६॥

सत्त य इह के बुद्ध, कसी गोयममम्भवी ।
तम्भो केवसिं बुद्ध तु, गोयमो इहमम्भवी ॥३७॥

हे गौतम ! वे शत्रु कौनसे हैं ? कौसी अमय के इस
प्रश्न का भी गौतम स्वामी उत्तर देने लगे ॥३७॥

एगप्पा अजिए सत्त, कमाया इंदियाण्हि य ।
ते जिम्बिषु बहानार्य, विहरामि अह सुधी ॥३८॥

हे मुनि ! एक निरकुश आत्मा ही शत्रु है और इन्द्रियां तथा कषाय भी शत्रुरूप है ; मैं इन्हें न्यायपूर्वक जीतकर विचर रहा हूँ ॥३८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥३९॥

गाथा २८ वत्

दीसंति चहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो ।
सुकपासो लहुम्भूओ, कहं तं विहरसि मुणी ॥४०॥

हे मुनि ! लोक में बहुत से प्राणी, पाश में बन्धे हुए देखे जाते हैं, किन्तु तुम बन्धन मुक्त और हल्के होकर कैसे विचर रहे हो ? ॥४०॥

ते पासे सव्वसो छित्ता, निहतूण उवायओ ।
सुकपासो लहुम्भूओ, विहरामि अहं मुणी ॥४१॥

हे मुनिवर ! मैंने उन पाशों (बन्धनों) को सद्प्रयत्नों से काटकर सर्वथा नष्ट कर दिया । अब मैं बन्धन मुक्त और लघुभूत होकर विचरता हूँ ॥४१॥

पासा य इह के बुत्ता, केसी गोयममव्ववी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमव्ववी ॥४२॥

प्रश्न—वे पाश कौनसे हैं ? गौतमस्वामी ने कहा ।

रागदोसादभ्यो विम्व्या, नेहपासा मयकरा ।

ते छिदिषु अशानाय, विहरामि महकम ॥४३॥

राम बेयादि भीर तीव्र स्नेहरूप पाश मयकुर है । मैं इन पाशों का न्यामपूर्वक काटकर अनूकम से बिचरता हूँ ॥४३॥

साहु गोपम पमा ते, छिभो मे संसभो इमो ।

अन्नो वि संसभो मज्झ, त मे कहसु गोयमा ॥४४॥

गाथा २८ नव

अतोद्विषयसंभूया, लया चिह्न गोयमा ।

फलेह विसमस्त्रीणि, सा उ उद्गरिया कह ॥४५॥

हे मोतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न हुई लता बिचकल देती है । आपने उस लता को कैसे उखाड़ा ? ॥४५॥

त लय सम्भसो छिता, उद्गरिया समुत्थिय ।

विहरामि अशानाय, सुको मि विसमस्त्रीया ॥४६॥

मैंने उस बेनि का सर्वना काटकर भीर बड़ से उखाड़कर फेंक दिया । अब मैं उसके बिष से मुक्त होकर बिचरता हूँ ।

लया य इह का बुचा, केत्ती गोपममम्बवी ।

केसिमव भुवत सु, गोयमो इहमम्बवी ॥४७॥

केशी—बहु लता कौनसी है ? मोतम-स्वायी ने कहा ।

मवतपहा लया बुचा, भीमा भीमफस्तोदया ।

तद्विषु अशानाय, विहरामि महासुखी ॥४८॥

हे महामुने ! समार में तृष्णारूपी भयकर लता है, जो भयकर फल देनेवाली है। मैंने उस लता को उखाड़ फेंका। भव में सुख पूर्वक विचरता हूँ। ॥४८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥४९॥

‘गाथा २८ वत्

संपजलिया घोरा, अग्गी चिट्ठु गोयमा ।
जे डहंति सरीरत्था, कहं विज्झाविद्या तुमे ॥५०॥

हे गौतम ! शरीर में भयकर अग्नि जल रही है और शरीर को जला रही है। आपने उस आग को कैसे शान्त किया ?

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं ।
‘सिंचामि सययं ते उ, सिंचा नो व डहंति मे ॥५१॥

महामेघ से बरसे हुए जल को लेकर, मैं अग्नि को निरंतर बुझाता रहता हूँ। वह बुझी हुई अग्नि मुझे नहीं जलाती। ५१।

अग्गी य इह के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं वुवंतं तु, गोयंमो इणमब्बवी ॥५२॥

प्रश्न—अग्नि कौनसी है ? उत्तर—

कसाया अग्गिण्यो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं ।
सुयधाराभिहया संता, भिच्चा हु न डहंति मे ॥५३॥

कषाय अग्नि है। श्रुत, शील, और तप रूपी जल है।

धुतरूप असभारा से धम्मि को शास्त करने पर फिर वह भग्ने नहीं जाता सकती ॥५३॥

साहु गोयम पभा ते, छिम्भो मे संसम्भो इमो ।
अभोवि संसम्भो मज्जे, त मे कइसु गोयमा ॥५४॥

शाखा २८ वत्

अय साहसिम्भो भीमो, दुहुस्सो परिषावई ।
असि गोयम आरुडो, कइ तेस न हीरसि ॥५५॥

हे पीतम ! यह साहसिक, भयकर और दुष्ट बोड़ा भाग रहा है । आप इस दुष्ट बोड़े पर सवार हैं । कहिये वह बोड़ा आपको उम्मार्ग में कैसे नहीं ले गया ? ॥५५॥

पहावन्तं निगिण्हामि, सुपरस्सीसमाहिय ।
न मे गच्छइ उम्मार्गं, मर्मा च वडिबउई ॥५६॥

भागते हुए दुष्ट धनव को मैं भुतरूप रखी से बांध कर रक्ता हूँ । इससे मेरा भय, उम्मार्ग में नहीं जाकर मुमार्ग पर ही चलता है ॥५६॥

आसे य इइ कं बुत्त, कंसी गोयममम्भवी ।
केसिमेव बुवत्तं सु, गोयमो इयमम्भवी ॥५७॥

प्रश्न-मस्व कीगता है ? उत्तर-

मभो साहसिम्भो भीमो, दुहुस्सो परिषावई ।
त सम्म तु निगिण्हामि, अम्मसिक्खत्तं कयमं ॥५८॥

यह मन ही साहसिक, दुष्ट और भयकर घोड़ा है, जो चारों ओर भागता है । मैं उसका जातिवान् और सुधरे हुए अश्व की तरह, धर्म शिक्षा द्वारा निग्रह करता हूँ ॥५८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।

अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥५९॥

गाथा २८ वत

कुप्पहा बहवे लोए, जेसि नासंति जंतवो ।

अद्धाणे कह बटुंतो, तं न नामसि गोयमा ॥६०॥

हे गौतम ! लोक में बहुत कुमार्ग हैं, जिन पर चलने से जीव दुखी होते हैं । किन्तु आप सुमार्ग में चलते हुए किस प्रकार पथ भ्रष्ट नहीं होते ? ॥६०॥

जे य मग्गेण गच्छंति, जे य उम्मग्गपट्ठिया ।

ते सव्वे वेइया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी ॥६१॥

हे मुनि ! जो सन्मार्ग से जाते हैं और उन्मार्ग में प्रवृत्ति करते हैं, उन सबको मैं जानता हूँ । इसलिए मैं सन्मार्ग भ्रष्ट नहीं होता ॥६१॥

मग्गे य इइ के बुत्ते, केसी गोयममव्ववी ।

केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमव्ववी ॥६२॥

प्रश्न-सुमार्ग और कुमार्ग कौन से हैं ? उत्तर-

कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।

सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ॥६३॥

श्रुतरूप बसधारा से अग्नि को सान्त करने पर फिर वह मरने नहीं जाता सकती ॥५३॥

साहु गोयम पचा दे, धिमो मे संसओ इमो ।

अमोवि संसओ मज्झं, त मे कइसु गोयमा ॥५४॥

गाथा २८ वत्

अय साहसिओ भीमो, दुहुस्सो परिपावई ।

असि गोयम आरुढो, कइ ठेस न हीरसि ॥५५॥

हे पीतम ! यह साहसिक भयकर और दुष्ट बौड़ा भाग रहा है । आप इस दुष्ट बौड़े पर सवार हैं । कहिये वह बौड़ा पापको उम्मारने में कैसे नहीं छि गया ? ॥५५॥

पहावन्तं निगियहामि, सुपरस्सीसमाहिय ।

न मे गच्छइ उम्मर्गं, मर्मा च पडिषअई ॥५६॥

आयते हुए दुष्ट मर्मा को मैं श्रुतरूप रस्सी से बाँध कर रखता हूँ । इससे मेरा मर्मा, उम्मारने में नहीं जाकर सुमार्ग पर ही चलता है ॥५६॥

आसे य इइ के बुत्त, केसी गोयममम्बवी ।

कसिमेवं बुत्तं तु, गोयमो इयमम्बवी ॥५७॥

प्रश्न—मर्मा कौनसा है ? उत्तर—

ममो साहसिओ भीमो, दुहुस्सो परिपावई ।

त सम्म तु निगियहामि, अम्मसिज्जाइ कयर्गं ॥५८॥

यह मन हो साहमिक, दुष्ट और भयकर घोड़ा है, जो चारों ओर भागता है । मे उसका जातिवान् और सुघरे हुए अश्व की तरह, धर्म शिक्षा द्वारा निग्रह करता हूँ ॥५८॥

साहू गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥५९॥

गाथा २८ वत्

कुप्पहा बहवे लोए, जेसि नासंति जंतवो ।

अद्राणे कह बट्ठंतो, तं न नामसि गोयमा ॥६०॥

हे गौतम ! लोक में बहुत कुमार्ग हैं, जिन पर चलने से जीव दुखी होते हैं । किन्तु आप सुमार्ग में चलते हुए किस प्रकार पथ भ्रष्ट नहीं होते ? ॥६०॥

जे य मग्गेण गच्छंति, जे य उम्मग्गपट्ठिया ।

ते सव्वे वेइया मज्झं, तो न नस्सामहं भुणी ॥६१॥

हे मुनि ! जो सन्मार्ग से जाते हैं और उन्मार्ग में प्रवृत्ति करते हैं, उन सबको मैं जानता हूँ । इसलिए मैं सन्मार्ग भ्रष्ट नहीं होता ॥६१॥

मग्गे य इह के वुत्ते, केसी गोयममव्ववी ।

केसिमैवं वुवंतं तु, गोयमो इणमव्ववी ॥६२॥

प्रश्न-सुमार्ग और कुमार्ग कौन से हैं ? उत्तर-

कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।

सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एत मग्गे हि उत्तमे ॥६३॥

कुप्रवचन का सामनेवाले सभी पाक्षन्धी लोग उम्मान में रहे हुए हैं । ओ जिनमावित मार्ग ही सम्मार्ग है और यही उत्तम मार्ग है ॥६१॥

साहु गोयम पन्ना ते, क्षिप्नो मे संसम्नो इमो ।
अन्नोनि संसम्नो मन्म, उ मे कश्चु गोयमा ॥६४॥

गाथा २८ वत्

महाउदगवेगेयां, बुम्भमायाण पाणिषां ।
सरयां गई पड्हा य, दीर्घ क मन्नसी सुखी ॥६५॥

पानी के महाप्रवाह में बहते हुए प्राणियों को सरय देकर स्मिर रखने वाला द्वीप पाप किसे मानते हैं ॥६५॥

अतिथ एगो महादीरो, बारिमन्मे महासम्नो ।
महाउदगवेगस्स, गई सत्य न विजई ॥६६॥

समुद्र के मध्य में एक महाद्वीप है । उस द्वीप पर पानी के महाप्रवाह भी गति नहीं हावी ॥६६॥

दीर्घ य इह के बुत्ते, केत्ती गोयममम्बवी ।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इक्षमम्बवी ॥६७॥

प्रश्न—अह द्वीप कीमसा है ? उत्तर—

अरामरसावेगेयां, बुम्भमायाण पाणिषां ।
भम्मो दीरो पड्हा य, गई माससुचम ॥६८॥

जरा और मृत्युरूप वेग से दूबते हुए प्राणियों के लिए
घर्म द्रोप ही उत्तम स्थान और धरणरूप है ॥६८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कइसु गोयमा ॥६९॥

गाथा २८ वत्

अण्णवंसि महोहंसि, नावा विपरिधावई ।
जंसि गोयममारूढो, कहं पारं गमिस्ससि ॥७०॥

हे गौतम ! महाप्रवाहवाले समुद्र में विपरीत जाने
वाली नौका में आप सवार हो रहे हैं । आप उस पार कैसे
जा सकेंगे ? ॥७०॥

जा उ अस्माविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥७१॥

छिद्रवाली नाव, पार नहीं पहुँचा सकती, किन्तु जो
नौका छिद्र रहित है वह पार पहुँचा सकती है ॥७१॥

नावा य इइ का बुत्ता, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७२॥

प्रश्न—वह नौका कौनसी है ? उत्तर—

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो बुद्धइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो बुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥७३॥

ममवान् ने कहा कि—यह शरीर नोकारूप है जीव
मायिक है तथा ससार समुद्ररूप है। जो महर्षि है वे इस
शरीर रूप नोका से ससार समुद्र तैर जाते हैं ॥७३॥

साहु गोयम पक्षा ते, छिन्नो मे संस्रमो इमो ।
अन्नो वि संस्रमो मज्जं, त म क्खसु गोयमा ॥७४॥

पाथा २८ वत्

अवयारे तुमे घोर, चिह्णति पाक्षिणो बहू ।
सो करिस्सइ उज्जोय, सम्बलोयम्मि पाक्षियां ॥७५॥

बहुत से प्राणी बार धम्बकार में पड़े हैं। लोक में रहे
हुए इन सब प्राणियों को प्रकाशित करने वाला कौन है ?

उग्गमो विमसो माणू, सम्बलोयप्पमंफरो ।
सो करिस्सइ उज्जोय, सम्बलोयम्मि पाक्षियां ॥७६॥

समस्त भाव में प्रकाश करनेवाले निर्मल सूर्य का
उदय हुआ है वही सभी प्राणियों को प्रकाशित करेगा ।

माणू य इह के बुत्ते, केसी गोयममम्बवी ।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इयमम्बवी ॥७७॥

प्रश्न—यह सूर्य कौनसा है ? उत्तर—

उग्गमो खीयसंसारो, सन्दपरणू सिद्धमम्बरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सम्बलोयम्मि पाक्षियां ॥७८॥

जिसने ज्ञानावरणीयादि संसार रूप कर्म अन्धकार का भय कर दिया है, ऐसे सर्वज्ञ जिनेश्वररूपी सूर्य का उदय हुआ है। यही सूर्य लोक के समस्त प्राणियों को प्रकाश देगा।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।

अन्नो वि संसओ मज्झं, त मे कहसु गोयमा ॥७६॥

गाथा २८ वत्

सारीरमाणसे दुक्खे, वज्झमाणाण पाणिणां ।

खेमं सिवं अणान्नाहं, ठाणां किं मन्नसी मुणी ॥८०॥

हे मुने ! सारारिक प्राणी, शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित हो रहे हैं। इनके लिए निर्भय, निरुपद्रव और शान्तिदायक स्थान कौनसा है ? ॥८०॥

अत्थि एगं धुवं ठाणां, लोगगम्मि दुरारुहं ।

जत्थ नत्थि जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तदा ॥८१॥

लोक के अग्रभाग पर एक निश्चल स्थान है, जहाँ जरा मृत्यु, रोग और दुःख नहीं है। किन्तु वहाँ तक पहुँचना कठिन है ॥८१॥

ठाखे य इइ के बुत्ते, केसी गोयममव्ववी ।

केसिमेव बुवंतं तु, गोयमो इणमव्ववी ॥८२॥

वहू स्थान कौनसा है ?

निष्प्रापं ति अवाह ति, सिद्धी लोभनामेव य ।
 खेम सिध अवावाह, न परंति महसिधो ॥८३॥

उस स्थान का नाम निर्वाण अभ्यावाध सिद्धि लोकाध,
 खेम सिध पीर घनावाध है । इसे महर्षि ही प्राप्त करते हैं ॥

त ठापां सासयवासं, लोभनाम्मि दुराहं ।
 जं संपचा न सोयति, मवोहंतकरा सुणी ॥८४॥

हे मुने ! वह स्थान सादकत निवासरूप है । वह लोक के
 धर्ममाय में स्थित है किन्तु उसे प्राप्त करना महा कठिन
 है । जिसने जब का धर्म करके इस स्थान को प्राप्त कर लिया,
 वे फिर सोच नहीं करते और ससार में फिर धाना नहीं पड़ता ।

साहु गोयम पमा ते, छिन्नो म संसओ डमो ।
 नमो ते संसपातीत, सन्नसुत्तमहोयही ॥८५॥

हे गौतम ! धापकी प्रज्ञा धन्यही है । मेरे सुखीह नष्ट हो
 गये हैं । भूत है सध्यातीत । हे समस्त धृत समूह के पार-
 गामी ! धापकी नमस्कार है ॥८५॥

एव तु ससए छिन्ने, केसी पोरपरकमे ।
 अमिबदिचा सिरसा, गोयम तु महायसं ॥८६॥
 पचमहज्जय चम्म, पडिपउद् मावओ ।
 पुरिमस्स पच्छिमम्मि, यमो तत्तय सुहावहे ॥८७॥

इस प्रकार शकाएँ दूर हो जाने पर, घोर पराक्रमी श्रीकेशी श्रमण ने महायशस्वी श्री गौतम स्वामीजी को सिद्ध सुकाकर वन्दना की और पाँच महाव्रत धर्म को भाव से ग्रहण किया, क्योंकि प्रथम और चरम तीर्थंकर के मार्ग में यही धर्म सुलभ देने वाला है ॥८६-८७॥

कैसी गोयमओ निच्चं, तम्मि आसि समागमे ।

सुयसीलसमुत्तरिसो, महत्थऽत्यविणिच्छओ ॥८८॥

उस वन में श्रीकेशी श्रमण और गौतम स्वामी का नित्य समागम हुआ । इस समागम से श्रुत एवं शील का सम्पन्न उत्कर्ष हुआ और मोक्ष साधक श्रवणों का विशिष्ट निर्णय हुआ ॥८८॥

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया ।

संथुया ते पसीयंतु, भयवं केसिगोयमे ॥८९॥त्ति वेमि

यह सवाद सुन कर परिषद सन्तोष पाई और सन्मार्ग में लगी । परिषद ने भगवान् केशीकुमार और गौतमस्वामी की स्तुति करते हुए कहा कि हे भगवन् ! आप प्रसन्न रहे ॥८९॥

तेवीसवाधव्ययन समाप्त

समिद्धश्चो चउवीसद्वम अज्मयणा

सि:१४४

अद्द पवयसमायाओ, समिद्ध गुप्ती तद्द य ।

पंवेन य समिद्धओ तओ गुप्तीओ आदिया ॥१॥

समिति ओर गुप्ति क्य भाठ प्रवचन माठारै है ।

समिति पाप ओर गुप्ति ठीन है ॥१॥

इरियाभासेसथादाये, उच्चारे समिद्ध इय ।

मबगुप्ती बयगुप्ती, कयगुप्ती य अद्दमा ॥२॥

ईसा भाषा एपना भावान और उच्चार समिति
तथा मन बचन ओर काय मूर्ति बाठबी है ॥२॥

एपाओ अद्द समिद्धओ, समासेस विद्यादिया ।

दुबालसंगं त्रिषक्खाय, माय अत्थ ठ पवयसां ॥३॥

भाठ समितियों का अद्द संक्षिप्त वर्णन है । जिनप्रार्थित
आदशांग क्य प्रवचन इन्ही में धन्तर्भूत होता है ॥३॥

आर्त्तपखेस कालेस, मम्मोस अयसाय य ।

चउकारबपरिसुद्ध, संजए इरिय रिण ॥४॥

आसम्बन काल मार्ग ओर यतना इन चार कारणों
की बुद्धि के साथ साथ गमन करे ॥४॥

अत्थ आसपयां नायां, दसयां वरयां तहा ।

काले य दिवसे बुद्धे, मम्मो उप्पहवखिए ॥५॥

तोनों प्रकार की उपधि को आँखों से देखकर प्रमाजंन करे, और ग्रहण तथा निक्षेप में सदैव समिति का पालन करे ।

उच्चारं पासवणां, खेलं सिंघाण जल्लियं ।

आहारं उवहिं देहं, अन्नं यावि तहाविहं ॥१५॥

मल, मूत्र, श्लेष्म, सेडा, शरीर का मैल, आहार, उपधि, शव आदि फेंकने योग्य वस्तु को विधि से परठना चाहिये ।

अणावायमसंलोए, अणावए चेव होइ संलोए ।

आवायमसंलोए, आवाए चेव संलोए ॥१६॥

जहा १-कोई आता नहीं और देखता भी नहीं हो, २-आता नहीं किन्तु देखता हो, ३-देखता नहीं, किन्तु आता हो और ४-आता भी हो और देखता भी हो । ऐसे स्थानों में से ।

अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवघाइए ।

समे अज्जुसिरे यावि, अचिरकालकयम्मि य ॥१७॥

जहा कोई आता नहीं हो और देखता भी नहीं हो तथा जीवों की घात भी नहीं हो, जो स्थान सम हो, बिना ढका हो और थोड़े समय से अचित्त हुआ हो ॥१७॥

वित्थिएणे दूरमोगाढे, खासन्ने विल्लवज्जिए ।

तसपाणवीयरहिए, उच्चाराइणि वोसिरे ॥१८॥

वह स्थान विस्तृत हा, नीचे दूर तक अचित्त हो, ग्रामादि के समीप नहीं हो, घूँहे आदि के बिल से रहित हो

बोलते समय काब मान माया लाभ हास्य मय वाचासता तथा विनया में उपयाग इन पाठ स्थानों का बुद्धिमान् साधु त्याग कर दे और बोलते समय परिमित और निबद्ध भाषा बाले ।

गवेषसम्प्राप्ता गृह्ये यः, परिभोगेमया य आ ।

आहारोवहिसेजाए, एय विभि विस्तेहण ॥११॥

आहार उपवि और छम्पा इन चीजों की परीक्षा प्रहृषयता तथा परिभोगयता धृष्टता पूर्वक करे ॥११॥

उमाप्पुप्पाययां पडम, दीए सोहज्ज एसयां ।

परिमोयम्मि पउक्क, विस्तेहज्ज अय अई ॥१२॥

उत्तनाबन्त साधु प्रथम एयना में उद्गम और उत्पादन दीय की शुद्धि करे । दूसरी एयना में शक्तितादि दायों की शुद्धि करे । तीसरी परिभोगयता में आहार वस्त्र पात्र और छम्पा इन चारों की संयोजनतादि दायों की शुद्धि करे ॥१२॥

ओहोवहोवमाहिय, मरयं दुविहं सुखी ।

गिण्हतो निक्खिण्हतो वा, पउज्जं इम विहिं ॥१३॥

रत्नाहरणादि घोषउपधि और पाट पाटला छम्पादि औपग्रहिक उपधि इन दो प्रकार के उपकरणों को प्रहृषण करते और रजते हुए मुनि को इस विधि का पालन करना चाहिए ।

चक्खुसा पविस्सहिता, पमजेज्ज अय अई ।

आए निक्खिण्हेता वा, दुहपोवि समिए सया ॥१४॥

साधु, सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त वाणी को रोके । यह वचन गुप्ति है ॥२३॥

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ।

उल्लंघण पल्लंघणे, इंदियाण य जुंजणे ॥२४॥

खड़े होने में, बैठने में, शयन करने में, उल्लघन करने में, चलने में और इन्द्रियो की प्रवृत्ति करने में यतना करे ॥२४॥

संरंभयमारंभे, आरंभे य तहेव य ।

कायं पवत्तमाणां तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२५॥

साधु, सग्भ, समारम्भ और आरम्भ में जाते हुए शरीर को रोके । यह काय गुप्ति है ॥२५॥

एयाओ पंच समिईओ, चरखस्स य पवत्तणे ।

शुची नियत्तसे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥२६॥

ये पांच समिति, चारित्र्य की प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन गुप्ति सभी प्रकार की अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होने के लिए कही हैं ॥२६॥

एसा पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी ।

सो खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए ॥२७॥ ति वेमि

जो पण्डित मुनि, इन प्रवचन माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह समार के समस्त बन्धनों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥२७॥

— चौबीसवा अध्यायन समाप्त —

तथा प्राणी और बीज से रहित हुआ ऐसे स्थान में मनु प्रादि का त्याग करे ॥१८॥

पयाओ पच समिद्धो, समासख विवाहिया ।

इतो य तमो गुत्तीओ, षोन्कामि अणुपुन्वसो ॥१९॥

यहां पाच समिद्धियों का वर्णन संज्ञक से किया गया है । अब तीन गुप्ति का वर्णन अनुक्रम से कहता हूँ ॥१९॥

सखा तद्देव मोसा य, सखमोसा तद्देव य ।

षउत्थी असखमोसा य, मखगुत्ती चउन्निहा ॥२०॥

मन गुप्ति चार प्रकार की है—१ सखा २ असखा ३ मिखा और ४ असखामुपा ॥२०॥

संरंमसमारंमे, आरंमे य तद्देव य ।

मयो पवत्तमाणां तु, निपत्तेअ अय जई ॥२१॥

समसी पुरुष सरम्म समाग्म और आरम्म में प्रवृत्त होते हुए मन का नियन्त्रण करे—रोके । यह मन गुप्ति है ।

सखा तद्देव मोसा य, सखमोसा तद्देव य ।

षउत्थी असखमोसा य, मखगुत्ती चउन्निहा ॥२२॥

वचन गुप्ति चार प्रकार की है—१ सखा २ असखा ३ सखामुपा और ४ असखामुपा ॥२२॥

संरंमसमारंमे, आरंमे य तद्देव य ।

अय पवत्तमाणां तु, निपत्तेअ अय जई ॥२३॥

अह से तत्थ अणगारे, मासखमणपारणे ।

विजयघोसस्स जन्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ॥५॥

वे जयघोष अनगार, मासखमण के पारणों के लिये
मिला लेने का, विजयघोष के यज्ञ में उपस्थित हुए ॥५॥

समुवट्ठियं तहिं संतं, जायगो पडिसेहए ।

न हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू जायाहि अण्णओ ॥६॥

उनके आने पर याजक-विजयघोष ने निषेध करते
हुए कहा-हे भिक्षु ! मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूंगा, तू अन्यत्र जाकर
खावना कर ॥६॥

जे य वेयविल विप्पा, जन्मट्ठा य जे दिया ।

जोडसंगविल जे य, जे य धम्माण पारणा ॥७॥

जे समत्था समुद्धत्तं, परमप्पाणमेव य ।

तेसिं अन्नमिणं देयं, भो भिक्खू सन्न्यकामियं ॥८॥

सर्व कामनाओं को पूर्ण करनेवाला यह भोजन, उन्हीं
विप्रों को देने का है, जो वेदों के ज्ञाता, यज्ञार्थी जोतिषाण के
पिता और धर्म के पारणामो द्विज हैं । तथा अपनी और दूसरों
की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ है ॥७-८॥

सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ।

न वि रुद्धो न वि तुद्धो, उत्तमड्ढगवेसथो ॥९॥

जज्ञइज पचवीसइम अज्मयण

सि.- २४१-१७

माइबइससमूओ, आसि विप्पो महायसो ।

बायाइ अमअम्मि, बयपोसे चि नामओ ॥१॥

बाह्यण कुरु में उत्पन्न बयपोष नाम का प्रसिद्ध और महा
मशस्वी विप्र हुआ । वह अम नियम रूप भाव यज्ञ करने वाला था ।

इदियमामनिमाही, मन्मगामी महामुणी ।

मामाणुगाम रीयते, पचो बाणारसी पुरिं ॥२॥

इन्द्रियों का निग्रह करनेवाले मोक्षमाय क पबिक वे
महामुनि ग्रामामुग्राम विचरते हुए बाणारसी नगरी में पधारे ।

बाणारसीए बहिषा, उखाअम्मि मणोग्गे ।

कासुए सज्जसंधारे,, तत्य वासमुवागए ॥३॥

वे बाणारसी नगर के बाहर अमोरम उद्यान में घाबे
और निर्दोष धम्मा सत्तारक लेकर रहने लगे ॥३॥

अइ सखेव काखेण, पुरीए तत्य माइये ।

विजयपोसे चि नामेण, अर्भ अयइ वयवी ॥४॥

उस समय उसी नगरी में वेदों का ज्ञाता विजयपाण
नाम का बाह्यण मश करता था ॥४॥

वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाणं जं मुहं ।
 नक्खत्ताणं मुहं बूहि, बूहि धम्माणं वा मुहं ॥१४॥
 जे समत्था समुद्धुत्तं, परमप्पाणमेव य ।
 एयं मे संसयं सच्चं, माहू कहसु पुच्छिओ ॥१५॥

हे साधु ! आप कहे कि वेदों का मुख कौनसा है ?
 यज्ञ, नक्षत्र और धर्म का मुख कौनसा है । और यह भी बताइये
 कि स्व-पर का उद्धार करने में समर्थ कौन है ? मेरे इन सब
 सशयो का उत्तर देवे ॥१४-१५॥

अग्निहुत्तमुहा वेया, जन्नही वेयसां मुहं ।
 नक्खत्ताणं मुहं चंदो, धम्माणं कासवो मुहं ॥१६॥

अग्निहोत्र, वेदों का मुख है । यज्ञार्थी वेद का मुख
 है । नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा और धर्म का मुख काश्यप भ०
 ऋषभदेव है ॥१६॥

अहा चंदं गदाईया, चिहंते पंजलीउडा ।
 वंदमाणा नमसंता, उत्तमं भणहारिणो ॥१७॥

जिस प्रकार चन्द्रमा के आगे ग्रह नक्षत्रादि हाथ
 जोड़कर वन्दना और मनोहर स्तुति करते हैं, उसी प्रकार उन
 उत्तम भ० काश्यप की इन्द्रादि देव सेवा करते हैं ॥१७॥

अजाणगा जन्नवाई, विज्जामाहणसंपया ।
 मूढा सज्झायतवसा, भासच्छन्ना इवऽग्निणो ॥१८॥

यज्ञ कर्त्ता के इस प्रकार प्रतिषेध करने पर वे महामूर्ति न
तो दूषित हुए न कथित हुए । न मोक्ष की प्रवेष्टा करनेवाले वे ।

नमहु पावहुत वा, नवि निम्नाहसाय वा ।

तेसि विमोक्खस्सहाए, इम वयञ्जमम्बवी ॥१०॥

उन्होंने आहार पानी तथा धूपने निषाह के लिए
नहीं किन्तु उन भोगों के साक्ष के लिए इस प्रकार कहा-॥१०॥

नवि जाणासि वेपमुहं, नवि ज्ञप्पाय अ मुहं ।

नक्खत्ताय मुहं ज च, ज च सम्मास वा मुहं ॥११॥

अ समत्था समुदणु, परमप्पायमेव य ।

न ते तुम विपायासि, अह वायासि तो मय ॥१२॥

हे विप्रो ! तुम वेदों के मन्त्र को नहीं जानते यज्ञ के
मूल को भी नहीं जानते न नक्षत्रों के मूल को जानते हो
धीर न बर्म के मन्त्र को ही समझते हो । तुम उसको भी नहीं
जानते जो स्व-भर का सञ्चार करने में समर्थ है । यदि जानते हो
तो बताओ ॥११ १२॥

तस्मज्जखेवमोक्ख च, अपयतो तहिं दिप्पो ।

सपरितो पंजसीहोउं, पुच्चरिं तं महामुणि ॥१३॥

मुनि के इन वाक्यों का उत्तर देने में असमर्थ होकर उस
द्विज ने अपनी परिपक्व सहित महामुनि की हाथ आड़कर पूछा ।

जो तपस्वी, कृष और इन्द्रियों का दमन करनेवाला है, जिसके शरीर में रक्त और मान थोड़ा रह गया है, जो मृत्रतो के पालन से निर्वाण प्राप्त करनेवाला है, उसी को०

तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसड तिविहेणां, तं वयं बूम माहणं ॥२३॥

जो अस और स्थावर प्राणियों को संक्षेप या विस्तार से जानकर, त्रिकरण त्रियोग से हिंसा नहीं करता, उसी को०

म्हा वा जड वा हास, लोहा वा जइ वा भया ।
न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥२४॥

॥५॥ से, लोभ से, हास्य तथा भय से भी जो भूठ
॥१॥, उसी को, मे, ब्राह्मण कहता हूँ ॥२४॥

अप्पं वा जड वा वहुं ।
तं वयं बूम माहणं ॥२५॥

थोड़ी या अधिक भी बिना दी हुई
ब्राह्मण कहता हूँ ॥२५॥

जो न सेवइ मेहुणं ।
तं वयं बूम माहणं ॥२६॥

॥२॥ काया से देव, मनुष्य और तिर्यच
रता, वही ब्राह्मण कहलाता है ।

तुम यज्ञादी विप्र राज स डेंकी अग्नि की तरह तत्त्व से धनमित्र हो । बिचा धीर ब्राह्मण की सम्पदा से भी धनवान हा तथा स्वाध्याय धीर तप क विषम म भी भूढ हा ॥१८॥

ओ सोए धमणो धुत्तो, अग्नी व महिभो बहा ।

सया कुमलसदिह, त वय धूम माहर्ण ॥१९॥

जिन्हें कुमल पुरया न ब्राह्मण कहा है और जो सदा अग्नि के समान पूजनोय है उन्ही का मे ब्राह्मण कहता हूँ ।

ओ न सुता अगंतु पश्यतो न सोयई ।

रमइ अत्रायसम्मि, त वय धूम माहर्ण ॥२०॥

जो स्वयनादि म पासवत् नही हाता और प्रवर्जित होने में सोच नहीं करता किन्तु आय वस्तुओं म रमय करता ह उसी का मे ब्राह्मण कहता हूँ ॥२०॥

जायरुवं अहामहु, निद्रमसत्पावर्ग ।

रागदोसमपाइय, त वय धूम माहर्ण ॥२१॥

जिस प्रकार अग्नि स सुख किया हुआ माना निमस हाता है उसी प्रकार जो राग द्वय और भयादि स रहित ह उसी को मे ब्राह्मण कहता हूँ ॥२१॥

तवस्त्विय कितं दत्त, अवधियममुमोणिय ।

सुम्भयं पत्तनिष्पाणं, त वय धूम माहर्ण ॥२२॥

जो तपस्वी, कृश और इन्द्रियो का दमन करनेवाला है, जिसके शरीर में रक्त और मांस थोड़ा रह गया है, जो सुव्रतो के पालन से निर्वाण प्राप्त करनेवाला है, उसी को०

तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेणां, तं वयं बूम माहणं ॥२३॥

जो बल और स्थावर प्राणियो को संक्षेप या विस्तार से जानकर, त्रिकरण त्रियोग से हिंसा नहीं करता, उसी को०

कोहा वा जइ वा दामा, लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥२४॥

क्रोध से, लोभ से, हास्य तथा भय से भी जो झूठ नहीं बोलता, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२४॥

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा वहुं ।
न गिण्हइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥२५॥

सचित्त या अचित्त, थोड़ी या अधिक भी बिना दी हुई वस्तु जो नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२५॥

दिव्वमाणुस्मतेरिच्छं, जो न सेवइ मेह्णं ।
मणसा कायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥२६॥

जो मन, वचन और काया से देव, मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी मधुन सेवन नहीं करता, वही ब्राह्मण कहलाता है ।

अहा पोम वस्ते जार्यं, नोवलिप्पद् वारिणा ।

एव अलिष कमेहिं, त वय धूम माहया ॥२७॥

जिस प्रकार कमल पानी में उत्पन्न होने पर भी उसमें सिप्ट नहीं रहता उसी प्रकार जो कामभागो से अमिप्ट है ...

आसोत्तुर्यं सुहाजीविं, अथगारं अकिंचन ।

असंसच गिरत्थेहिं, त वय धूम माहयां ॥२८॥

जो सोमुपता रहित बिछा जोबी धनगार और अकिंचन होता है तथा पहत्थों में आसक्ति नहीं रखता उसी को ..

अदिचा पुक्खसंघोगं, नाइसंगे य वधवे ।

जो न सअइ भोगेसु, त वय धूम माहयां ॥२९॥

जाति और बन्धुजनों का पूर्व समयों छाड़कर फिर मोर्मा में आसक्त नहीं होता उसे हम आह्वय कहते हैं ॥२९॥

पसुबंधा सत्त्ववेया, अहुं च पावकम्मया ।

न त तायति दुस्सीसं, कम्माणि वल्लवति हि ॥३०॥

सभी वेद पशुओं के बंध के लिए है और यज्ञ पाप कर्म का हेतु है । ये वेद और यज्ञ यज्ञकर्त्ता दुराचारी का रक्षण नहीं कर सकते क्योंकि कर्म अपना फल देने में बलवान हैं ।

न वि मुदिएण समज्जो, न ओक्खरेण धमणो ।

न सुणी रणयवासेयां, कुसपीरेण न तावसो ॥३१॥

केवल सिर मूढ़ाने से कोई श्रमण नहीं होता, न ऋकार
बोलने से ब्राह्मण होता है। श्रमण में बसने मात्र से कोई मुनि
नहीं हो जाता और न चल्कलादि पहिनने से तापस हो
सकता है ॥३१॥

समयाए समणो होइ, बंभवेरेण बंभणो ।

नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२॥

समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि
और तप से तपस्वी होता है ॥३२॥

कम्मणा बंभणो होइ, कम्मणा होइ खत्तिओ ।

वइस्सो कम्मणा होइ, सुद्धो इवइ कम्मणा ॥३३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये सब कर्म से होते हैं।

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ।

सल्लकम्मविणिग्गुवकं, न वयं चूम माइयां ॥३४॥

इस धर्म को सर्वज्ञ ने प्रकट किया, जिसके आचरण से
स्नातक-(विशुद्ध) होकर सभी कर्म से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे
उत्तम धर्म के पालन करनेवाले को हम ब्राह्मण कहते हैं ॥३४॥

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा ।

ते समत्था समुद्धत्तं, परमग्गायमेव य ॥३५॥

उपर्युक्त गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम होते हैं, वे ही
स्व-पर की आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होते हैं ॥३५॥

एव तु संसर्ग छिन्ने, विजयघोसे य माह्वये ।

समुदाय उभो त तु, अयपोस महाभुवि ॥३६॥

इस प्रकार संशयो क नष्ट होने पर विजयबाप ब्राह्मण ने सम्यग् प्रकार से जयबाप मुनि का पहचान लिया ॥३६॥

तुष्टु य विजयघोसे, इत्यामुदाहु कयगली ।

माह्वत्त अहाभूय, सुष्टु मे उवदसिय ॥३७॥

विजयबाप प्रसन्न होकर हाथ जोड़कर कहने लगा—
आपने ब्राह्मणत्व के अर्थात् स्वरूप का बहुत धन्यता उपदेश दिया ॥३७॥

तुम्हे ब्रह्मा ब्रह्मार्णो, तुम्हे देवयिठ पिठ ।

सोहसंगयिठ तुम्हे, तुम्हे धम्माय पारगा ॥३८॥

भगवन् । आप वेदज्ञ हैं यज्ञ करनेवाले हैं ज्योतिषाग के ज्ञाता आप ही हैं और आप ही धर्म क पारगामी हैं ।

तुम्हे समत्था उदत्तु, परमप्पासमेव य ।

तमणुमाह करेइउम्ह, मिक्खेणं मिक्खुउत्तमा ॥३९॥

हे उत्तमात्तम मिश्र । आप ही अपने और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं । अतएव हम पर अनुग्रह करके भिक्षा प्रदण करें ॥३९॥

न कज्ज मन्म मिक्खेण, खिप्पं निक्खमघ्द दिया ।

मा ममिद्विदि मयाबद्ध, धोर संघात्तागर ॥४०॥

हे द्विज ! मुझे भिक्षा का प्रयोजन नहीं है, तू शीघ्र ही प्रव्रजित हुआ । इस भयचक्ररूप घोर ससार सागर में भ्रमण मत कर ॥४०॥

उबलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।

भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥४१॥

भोगी जीव कर्म से लिप्त होता है, अभोगी कर्म से लिप्त नहीं होता । भोगी जीव ससार में परिभ्रमण करता है और भोगी का त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है ॥४१॥

उछो सुक्को य दो छूटा, गोलया मट्टियामया ।

दो वि आवडिया कुड़े, जो उछो सोऽत्थ लगई ॥४२॥

गोला और सूखा ऐसे मिट्टा के दो गाले भीत पर फेंकने पर जो गोला होता है वह चिपक जाता है । किन्तु सूखा हुआ गोला नहीं चिपकता ॥४२॥

एवं लगति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा ।

विरत्ता उ न लगति, जहा सें सुकगोलए ॥४३॥

इसी प्रकार काम भांगो में मूर्च्छित दुर्बुद्ध जीव को कर्म लगते हैं, किन्तु विरक्त को सूखे गोले की तरह कर्म नहीं लगते ।

एयं से विजयघोसे, जयघोमस्स अंतिए ।

अणुगारस्स निक्खंतो, धम्मं सुच्चा अणुत्तरं ॥४४॥

श्रीजयघोष मुनि के पास से उत्तम धर्म को सुनकर विजयघोष गृह त्यागकर दीक्षित हो गये ॥४४॥

सुविधा पुण्यकर्मण्य, सप्रमेष सवेष्ट य ।

अपघोषविजयघोसा, सिद्धि पथा अणुत्तरं ॥८॥

श्रीजयशेष मुनि ठप मीर समय से अपने पूर्व कर्मों का जय करके सर्वोत्तम सिद्ध गति को प्राप्त हुए ॥४५॥

—पञ्चासवीं अध्यायन समाप्त—

समायारी द्व्वीसद्वम अज्झयणा

—१११—

सामायारिं पवस्सामि, सम्बदुमस्यविमोक्खस्सि ।

अ धरिदाह निग्गया, तियत्ता संसारसागरं ॥१॥

मैं सभी दुःखों से मुक्त करनेवासी वह समायारी कहता हूँ जिसका आचरण करनेवाले निर्द्वय संसार सागर से पार होते हैं ॥१॥

पट्ठमा आनस्मिया नाम, विद्या य निसीहिया ।

आपुञ्जणा य सद्धया, पठत्थी पडिपुञ्जणा ॥२॥

पचमी इदद्धा नाम, इण्णकरो य छट्ठमो ।

सचमो मिण्णकरो य, दहकारो य अट्ठमो ॥३॥

अण्णहारा य नवम, दसमी ठनसंपदा ।

एसा दसंगा साहया, सामायारी पवेद्या ॥४॥

प्रथमा आवश्यकी, दूसरी नैवेधिकी, तीसरी आपृच्छनी, चौथी प्रतिप्रच्छनी, पाचवी छन्दना, छठी इच्छाकार, सातवी मिच्छाकार, आठवी तथाकार, नौवीं अभ्युत्थान, और दसवीं का नाम उपसम्पदा है। इस प्रकार साधुओं की दशांग समाचारी तीर्थंकरों ने बताई है ॥२-४॥

गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा निसीहियं ।

आपुच्छणा सयंकरे, परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥

छंदणा दव्वजाणं, इच्छाकारो य साग्णे ।

मिच्छाकारो य निंदाण, तहकारो पडिस्सुण ॥६॥

अवमुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंयया ।

एवं दुपंचसंजुत्ता, सामायारी पवेहया ॥७॥

जाते समय 'आवश्यकी,' स्थान पर आते 'नैवेधिकी,' अपना कार्य करते समय पूछना-'आपृच्छनी,' पर का कार्य करने के लिये पूछने को 'प्रतिप्रच्छनी' कहते हैं। द्रव्य जाति के लिये निमन्त्रित करना 'छन्दना' है। अपने और दूसरे के कार्य की इच्छा बतलाना अथवा दूसरों की इच्छानुसार चलना 'इच्छाकार' है। आलोचना कर प्रायश्चित्त लेना 'मिच्छाकार' और गुरुजनों के वचनों को म्योकार करना 'तथाकार' है। गुरुजनों का बहुमान करने में तत्पर रहना 'अभ्युत्थान' समाचारी है और ज्ञानादि के लिये उनके समीप विनीत भाव से रहना 'उपसम्पदा' समाचारी है। यह दस प्रकार की समाचारी है। ५-से-७।

पुच्छिन्नमि चउम्माए, आइसम्मि समुट्ठिए ।

मंडप पबिलेहिवा, वदिवा य तओ गुरुं ॥८॥

दिन के प्रथम चतुर्थ भाग में सुषोण्य होने पर, मण्डप
करण की प्रतिभेसना करके गुरु का वन्दना करे, फिर ॥८॥

पुच्छिन्न पबलिउठो, किं फायम्ब मण इह ।

इम्ह निओइठ मते, बेयावत्थ व सज्जम्माए ॥९॥

हाथ आइकर पूछे कि भयबन् ! म क्या करू ? आप
भाज्ञा प्रदान करें कि म बेयावत्थ करूं या स्वाध्याय ? ॥९॥

बेयावत्थे निउछयां, फायम्ब अगिलायओ ।

सज्जम्माए वा निउछयां, सुव्वदुक्खविमोक्खये ॥१०॥

यदि बेयावत्थ म नियुक्त करे तो गमायी, रहिन होकर
बेयावत्थ करे और स्वाध्याय की याज्ञा रहे ता समस्त दुःख से
छुड़ाने वास्ता स्वाध्याय करे ॥१०॥

दिवसम्स चउरो भागे, मिक्खु कुआ विक्खणो ।

तओ उत्तरगुणे कुआ, दिवमागेसु चउसु वि ॥११॥

बुद्धिमान् ममि दिन के चार भाग करके उन चारो
भागो में उत्तर गुणो की वृद्धि करे ॥११॥

पढमं पोरिसि सज्जम्माय, बीय म्हाणं मिपायई ।

तइयाण मिक्खापरिय, पुओ चउत्थीइ मज्जम्माय ॥१२॥

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरो और चौथे प्रहर में फिर स्वाध्याय करे ॥१२॥

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया ।

चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइ पोरिसी ॥१३॥

आषाढ मास में दो पाँच, पौष मास में चार कदम, चैत्र और आश्विन मास में तीन पावण्डे भरने से पौरुषी होती है ।

अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेणं च दुअंगुलं ।

वड्डए हायए वावि, मासेणं चउरंगुलं ॥१४॥

सात दिन रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल, और मास में चार अंगुल दिन बढ़ता और घटता है ॥१४॥

आसाढवड्डुलपक्खे, भद्वए कच्चिए य पोसे य ।

फग्गुणवड्डसाहेसु य, बोद्धव्वा ओमरत्ताओ ॥१५॥

आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख के कृष्ण पक्ष में एक दिन रात की न्यूनता-अध-होती है ॥१५॥

जेठामूले आसाढसावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा ।

अट्ठहिं वीयतडयम्मि, तदए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥१६॥

ज्येष्ठ आषाढ और आश्विन में छ अंगुल बढ़ाने से और भाद्रपद, आश्विन, तथा कार्तिक में आठ अंगुल, मार्ग-शीर्ष, पौष और माघ में दस अंगुल और फाल्गुन, चैत्र और वैशाख में आठ अंगुल बढ़ाने से पौन पौरुषी का काल होता है ।

रतिं पि चठरो मागे, मिक्खु कुञ्जा विपक्खणो ।
तम्भो उषरगुणे कुञ्जा, राइमाणसु चउमु वि ॥१७॥

बुद्धिमान् साव रात्रि के भी चार भाग करके उन चारों में उत्तर युक्तों की धाराधना करे ॥१७॥

पदम पोरिसिं मज्झाय, चिय भाणां मियायई ।
वडयाए निरमोस्सुतु चउत्थी सुत्तो वि सज्झाय ॥१८॥

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय दूसरे में ध्यान तीसरे में निद्रा—स्वप्न और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करे ॥१८॥

अ नेह वया रतिं, नक्खत्त तम्मि नइयठम्माए ।
संपचे विरमेत्ता, सज्झाय पम्भोसकालम्मि ॥१९॥

जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूति करता हो वह नक्षत्र धाकाश के चौथे भाग में पावे तब प्रयाग कास होता है । उस समय स्वाध्याय से तिबृत्त हो जावे ॥१९॥

तम्भेव य नक्खत्त, गयवत्तठम्मागमावसेसम्मि ।
वेरचित्ते पि काल, पडिक्खेहिच्चा सुम्भी कुञ्जा ॥२०॥

वही नक्षत्र धाकाश का चौथा भाग रहे वही पा जावे ता वैरात्रिक कास को जातकर आवश्यक क्रिया करे ॥२०॥

पुब्बिप्लम्मि चउत्थाय, पडिक्खेहिच्चा मंडयं ।
गुरु वदित्तु सज्झाय, कुञ्जा दुक्खविमोक्खणं ॥२१॥

दिन के प्रथम पहर के चतुर्थ भाग में मण्डोपकरण की प्रतिलेखना करे, फिर गुरुजनो को वन्दना करके सर्व दुखों से छुड़ाने वाला स्वाध्याय करे ॥२१॥

पोरिसीए चउम्भाए, वंदित्ताए तओ गुरुं ।

अपडिकमिता कालस्त, मायणं पडिलेहए ॥२२॥

पोरुषी के चौथे भाग में गुरु को वन्दना करके काल का चतुर्दश दिन, पात्रादि की प्रतिलेखनादि करे ॥२२॥

गुरुपति पडिलेहिता, पडिलेहिअ गोच्छगं ।

गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥२३॥

गुरुपति की प्रतिलेखना करके गोच्छक की प्रतिलेखना करे, फिर गोच्छक की अंगुलियों से ग्रहण करके वस्त्रों की प्रतिलेखना करे ॥२३॥

उहुं थिरं अतुरियं, पुज्वं ता वत्थमेव पडिलेहे ।

तो विइयं पण्फोडे, तइयं च पुणो पमसिआ ॥२४॥

पहिले तो वस्त्र को ऊँचा रखत दृढ़ता से पकड़े, धीमेता न करे, वस्त्र को शुरु से आखिर तक देखे । इसके बाद वस्त्र को हिलावे और फिर प्रमार्जन करे ॥२४॥

अण्चावियं अवलिय, अणाणुवंधिअमोसलिं चेव ।

छप्पुरिमा नव खोडा, पाणीपाणिविसोहणं ॥२५॥

वस्त्र को नचावे नहीं, मोडे नहीं, फटके नहीं, भटके

महीं किन्तु उपयोग पूर्वक प्रतिलेखना करे । पट पूर्व और नव छोटक से प्रतिलेखना करते हुए यदि जीव निकसे तो हाथ में उठाकर विद्युत् करे रक्षण करे ॥२५॥

आरभटा सम्मदा, बलेयव्वा य मोसली च्छया ।

पप्फोटय्या चउत्थी, विस्सिच्छा वेइया छद्दी ॥२६॥

आरभटा समर्वा मोसली प्रस्फोटन, विस्सिच्छा और वेदना ये छ दोप टासना चाहिये ॥२६॥

पसिद्धिपल्लवलोसा, पगामोमा अस्सेगरूबपुष्पा ।

कुण्ड पमाप्तिपमाय, संकिय गययोवगं कुत्ता ॥२७॥

ढाला पकड़ना तुर रसना भूमि पर रोसना मध्य से पकड़कर गड़ना घटीर व वस्त्र को हिंसाना प्रभाव पूर्वक प्रतिलेखना करना शक्ति होकर विमता य वस्त्र प्रतिलेखना के दोष ह ॥२७॥

अण्णारिचपटिलेहा, अविवक्षाता त्तेव य ।

पढम पय पसरथ, समाधि उ अप्पसत्थाइ ॥२८॥

इनम से न्यूनाधिकता और विपरीतता से रहित प्रति लेखना रूप प्रथम पद प्रयुक्त है दोष अप्रयुक्त है ॥२८॥

पटिलेइयां कुणांतो, मिहो कई कुण्ड जखवयकड वा ।

वइ व पयक्खाणां, वायइ मयं पडिच्छइ वा ॥२९॥

प्रतिलेखना करते हुए बाधासाप करे जनपद कबा कहे, प्रत्यात्मान करावे, किसी को पढ़ावे या स्वयं प्रश्नोत्तर करे ।

पुढवी आउकाए, तेऊ-वाऊ वणस्मड तमाणं ।

पडिलेहणापमत्तो, छएहं यि विराहओ होइ ॥३०॥

प्रतिलेखना में प्रमाद करने वाला, पृथ्वीकाय, अप, तेजस, वायु वनस्पति और अस काय को विराघना करता है ।

पुढवी आउकाए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तमाणं ।

पडिलेहणाआउत्तो, छएहं संरक्खओ होइ ॥३१॥

प्रमाद रहित होकर प्रतिलेखना करनेवाला, पृथ्वी आदि पदकाय का रक्षक होता है ॥३१॥

तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए ।

छएहं अन्नयरागम्मि, कारणम्मि उवट्टिए ॥३२॥

दिन के तीसरे प्रहर, छ कारणों से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर भोजन पानी की गवेपणा करे । वे कारण ये हैं,—

वेयण-वेयावच्चे, हरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।

तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मच्चित्ताए ॥३३॥

१ क्षुधा वेदना २ वंथावृत्य ३ ईर्यासमिति शोधने ४ नयम पालने ५ प्राणरक्षा और ६ धर्म चिन्तन के लिये ।

निगंथो धिहमंतो, निज्जयी वि न करेज्ज छहिं चेव ।

ठाणेहिं उ इमेहिं, अण्हकमणाइ से होइ ॥३४॥

धर्मवान् साधु साध्वी, इन छ कारणों के उपस्थित

होने पर आहारादि नहीं करे । इससे उनके संयम का उत्पन्न नहीं होता है । वे छ कारण ये हैं -

आयके उपसर्गो, वितिकस्त्वया वमपेगुचीसु ।

पाणिदया तवदेठ, सरीरबोम्येयमहाण ॥३५॥

१ रोग होने पर २ उपसर्ग आने पर ३ ब्रह्मचर्य रक्षा ४ प्राणियों की दया के लिए ५ उप करने के लिए और ६ शरीर से सम्बन्ध छोड़ने के लिए ॥ ३५॥

अवसेसं भङ्गं गिन्म, वस्तुमा पठिसहय ।

परमद्वयोपशाभो, विहारं विहरे सुधी ॥३६॥

मिठा के लिए दोष ग्रहोपकरण को लेकर और उन्हें यन्त्री तरह देखकर आगे योगन तक जावे ॥३६॥

अठत्वीण पोरिसीण, निक्खित्तिवित्ताय मायसां ।

सन्मन्त्राय च तमो दुळा, सन्वमावसिमापसां ॥३७॥

चौथी बीसवी में मन्त्रों की रत्नकर सन्माओं को प्रकट करनेवाला स्वाध्याय करे ॥३७॥

पोरिसीण अठम्माण, वदित्ताव तमो गुहं ।

पठिक्कमिच्छा अतस्स, सेवर्जं तु पठिसेहय ॥३८॥

चौथी बीसवी के चौथे भाग में स्वाध्याय काल से निवृत्त होकर मूढ़ वन्दन करे फिर अग्न्या की प्रतिशेखना करे ।

पासवपुचारभूमिं च, पटिलेहिज्ज जयं जई ।

काउस्सग्ग तथो कुज्जा, सच्चदुक्खविमोक्खणं ॥३६॥

यतनावत मूनि, उच्चार प्रत्यवण भूमि की प्रतिलेखना करे और बाद में सब दुखों से छुड़ाने वाला कायोत्सर्ग करे ।

देवसियं च अईयारं, चित्तिज्जा अणुपुच्चसो ।

नाणंमि दंसणे चेव, चरित्तम्मि वहेव य ॥४०॥

कायोत्सर्ग में दिन के समय जान, दर्शन और चाग्नि में लगे हुए अतिचारों का क्रमशः चितन करे ॥४०॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तथो गुरुं ।

देवसिय तु अईयारं, आलोएज्ज जहकमं ॥४१॥

कायोत्सर्ग पालकर गुरु वन्दन करे । फिर देवसिक अतिचारों की क्रमशः आलोचना करे ॥४१॥

पडिकमित्त निस्सल्लो, वंदित्ताण तथो गुरुं ।

काउस्सग्गं तथो कुज्जा, सच्चदुक्खविमोक्खणं ॥४२॥

प्रतिक्रमण करके शल्य रहित होंगे और गुरु वन्दन कर के सभी दुखों से छुड़ाने वाला कायोत्सर्ग करे ॥४२॥

*पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तथो गुरुं ।

शुद्धमंगलं च काउणं, कालं संपडिलेहए ॥४३॥

कायोत्सर्ग पालकर गुरु की वन्दना करे और स्तुति

भग्न करके काष्ठ की प्रतिसेवना करे ॥४३॥

पहम पोरिसि सन्मध्य, धीय म्हायां क्रियायई ।

सद्याए निमोक्ख तु, चउत्थी सुओ वि सन्मध्य ।

रात की प्रथम पौढ़पी में स्वाध्याय करे । दूसरी म
ध्यान करे । तीसरे प्रहर में निद्रा त्याग कर चौथे प्रहर में
स्वाध्याय करे ॥४४॥

पोरिसीए चउत्थीए, काल तु पडिसेहिया ।

सन्मध्य तु तओ ह्जा, असोहतो असंघए ॥४५॥

चौथे प्रहर में काष्ठ की प्रतिसेवना करके अथवा
जीर्णों को नहीं जगाता हुआ स्वाध्याय करे ॥४५॥

पोरिसीए चउत्थीए, बंदिचाया तओ गुरुं ।

पडिक्खमिचु कासस्स, काल तु पडिसेहए ॥४६॥

इस पौढ़पी के चौथे भाग में गुरु बन्धन करके काष्ठका
प्रतिक्रमण करे, फिर प्रातः काल की प्रतिसेवना करे ॥४६॥

आगए कायसोसओ, सम्पदुक्खविमोक्खणे ।

काउस्समर्गं तओ ह्जा, सम्पदुक्खविमोक्खणं ॥४७॥

कायोस्सर्ग का समय आ जाने पर समस्त दुर्गों से
मुक्त करने वाला कायोस्सर्ग करे ॥४७॥

राइय च अइयर्त्त, चित्तिअ अणुपुण्णसो ।

नार्णमि दसणमि य, चरिचमि तवमि य ॥४८॥

रात्रि में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप में लगे हुए
श्रुतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करे ॥४८॥

पारिकाउस्सगो, वंदित्ताण तथो गुरुं ।

राडयं तु अह्यारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४९॥

कायात्सर्ग पालकर गुरु की वन्दना करे, फिर अनुक्रम
से रात्रि के श्रुतिचारों की आलोचना करे ॥४९॥

पडिक्कमित्तु निम्सल्लो, वंदित्ताण तथो गुरुं ।

काउस्सगं तथो कुज्जा, सब्बदुक्खविमोक्खणं ॥५०॥

प्रतिक्रमण करके निःश्रुत्य होकर गुरुवन्दन करे और
सभी दुःखों से मुक्त करने वाला कायात्सर्ग करे ॥५०॥

किं तवं पडिवज्जाप्पि, एवं तत्थ विचिंतए ।

काउस्सगं तु पारित्ता, करिज्जा जिणसथवं ॥५१॥

“मे कीनसा तप करुं” ऐसा ध्यान में विचार करके
काउस्सग पाले और जिनराज का स्तवन कर ॥५१॥

पारिकाउस्सगो, वंदित्ताण तथो गुरुं ।

तवं तु पडिवज्जेज्जा, कुज्जा सिद्धाण संथवं ॥५२॥

कायात्सर्ग पालकर गुरु की वन्दना करे, फिर तप
स्वीकार कर सिद्धों की स्तुति करे ॥५२॥

एसा ममायारी, समासेण वियाहिया ।

जं चरित्ता ब्रह्म जीवा, तिण्णा संसारसागरं ॥५३॥ त्ति वेमि ।

इस प्रकार उस समाचारी का संक्षेप से वर्णन किया गया कि जिसका प्राचरण करके बहुत से जीव संसार से तिर गये ५॥

—सम्वासवां पध्ययन समाप्त—

खलुकिञ्च सत्तवीसद्वम अज्भयणा

—५॥२७॥—

धर गबहरं गम्भे, मुणी आसि विसारण ।
आइएये गखिमावम्मि, समारि पडिसंघण ॥१॥

सभी शास्त्रों में विचार्य ऐसे गये तब के प्राचार्य हुए गये हैं । वे गुरुवान् आचार्य सत्य समाधि भाव में रहते थे ।

पइय पइमाणस्स, सत्तारं अइवत्तई ।
जोग पइमाणस्स, संत्तारं अइवत्तई ॥२॥

बिस तरह गाड़ी में योग्य रूप को ओढ़ने से बन का सरसता से पार किया जा सकता है उसी प्रकार समस में भूरे हुए साम् समार को पारकर जाते हैं ॥२॥

सनुंरु सो उ ओण्ड, विट्ममाणो किलिस्सई ।
अममारि च वएह दोत्तओ से य मअइ ॥३॥

हुट बैल को गाड़ी में ओढ़ने वाला वसधित होता है

वह मारते मारते थक जाता है, उसका चाबुक टूट जाता है और खुद भी दुख भोगता है ॥३॥

एगं डसइ पुच्छम्मि, एगं विधईऽभिकल्लणं ।

एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पहपट्ठिओ ॥४॥

ऐसे दुष्ट बैल की पूछ में शूल चुभाई जाती है । कोई कोई बार-बार विधा जाता है, कई बैल जुआ तोड़ डालते हैं और कई उन्मार्ग में चले जाते हैं ॥४॥

एगो पडइ पासेणं, निवेसइ निवज्जई ।

उक्कुइइ उप्पिडइ, सटे बालगवी वए ॥५॥

कई बैल करबट लेकर गिर जाता है, कोई बैठ जाता है, कोई सो जाता है, कोई नछल कूद करता है, तो कोई घूर्त बैल, तरुण गाय के पीछे भागने लगता है ॥५॥

माई सुद्धेण पडइ, वृद्धे गच्छइ पडिप्पहं ।

मयलक्खेण चिद्धई, वेगेण य पहावई ॥६॥

कपटी बैल, सिर झुकाकर गिर जाता है, कोई क्रोधित होकर पीछे भाग जाता है, कोई शव की तरह पड जाता है, और कोई जोर से भाग जाता है ॥६॥

छिन्नाले छिद्धई सेल्लि, दुद्धंतो भंजए जुगं ।

से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जहित्ता पलायए ॥७॥

कोई दुष्ट बैल, रस्सियों तोड़ डालता है, कोई निरकुश

हो जूमा साइ आसता है और कोई सुल्कार करते हुए भाग जाता है ॥७॥

खलुका जरिसा जोला, दुस्तीमा पि हु तारिसा ।
ओइया धम्मजासम्मि, भळति धिइदुम्भला ॥८॥

ऐसे बुष्ट धर्मों को तराई पंचम धिस कुसिप्य बम रूपो बाहन म जुतने पर भी संयम का धामन नहीं करके भग कर देत है ॥८॥

इड्डीगारविण एगे, एगेऽय रसगारवे ।
सायागारविण एगे, एगे सुधिरकोइये ॥९॥

कोई श्रुति गर्व में कोई रस गर्व म और कोई सिप्य साता गौरव म भरत है तथा कोई कोई ध्यधी ही बने रहते हैं ॥९॥

मिक्खालसिए एगे, एगे ओमासमीरुए ।
बडे एगे अणुसामम्मि, हेऊहि कारयेहि य ॥१०॥

कोई मिखाचरा में धामस्य करते है ता कोई अपमान से डरते है और कोई बमप्पी है । ऐसे बुष्ट सिप्यों का मैं किन उपाया से सिखित करूं ॥१०॥

सो वि अतरमासिल्लो, दोसमेव पकुम्भई ।
आयरियाणां तु वयणां, पडिक्खेइमिक्खणां ॥११॥

शिक्षा देने पर कुसिप्य बीच में ही बास पड़ते है

उलटा दोष मढ़ते हैं और कोई कोई तो गुरु के विरुद्ध बोला करते हैं ॥११॥

न सा ममं वियाणाई, न वि सा मज्झ दाहिई ।

निगाया होहिई मझे, साहु अन्नोऽत्थ बच्चउ ॥१२॥

(भिक्षार्थ जाने का कहने पर कुशिष्य कहते हैं कि) वह अग्निका मुझे नहीं पहचानती, वह मुझे आहार भी नहीं दगी। वह घर पर भी नहीं होगी। आप अन्य साधु को भेज दें।

पेसिया पलिउंचंति, ते परियंति समंतत्तो ।

रायवेढ्ढि च मयंता, करेंति मिउढि मुहे ॥१३॥

जिस कार्य के लिए भेजे जाते हैं, उसे नहीं करते और झूठ बोलते हैं। इधर उधर घूमते फिरते हैं, और काम को राज की बेगार जैसा मानते हैं, तथा भृकुटी चढ़ाते हैं ॥१३॥

बाइया संगहिआ चेव, भत्तपाणेण पोसिया ।

जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमंति दिसो दिसिं ॥१४॥

(आचार्य सोचते हैं कि) मेने इन्हे पढ़ाया, अपने पास रखवा, आहार पानी से पोषण किया, किन्तु जैसे पक्ष आने पर हंस उड़ जाते हैं, वैसे ही ये स्वेच्छाचारी हो गये हैं ॥१४॥

अह सारही विचिंतेह, खलुंकेहिं समागत्तो ।

किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयई ॥१५॥

इत दुष्ट शिष्यो से दुखी हुए वे सारथी-आचार्य सोचते

हे कि मुझ इनसे क्या प्रयाजन ? इस कुष्ठों से मेरी आत्मा भी
सत्ताप पाती है ॥१५॥

जारिमा मम सीताओ, तारिमा गलिगदहा ।

गलिगदहे अदिचायां, दढ पगिणहई तव ॥१६॥

वैसे आससी गदहे होते है वैसे ही मेरे सिष्य है ।
इन्हें छाड़कर मैं उग्र तप का आचरण करूँ ॥१६॥

मिउमहसंपओ, गमीरो सुसमाहिओ ।

विहरइ महिँमहप्पा, सीलभूएष अप्पणा । १७। चि बेमि ।

गभीर मधु एव सरस भाव बासे मैं महात्मा सोम
सम्पन्न एव समाविष्ट होकर पृथ्वी पर बिचरने लगे ॥१७॥

ॐ सत्ताइसवीं अध्यायन समाप्त ॥

मोक्षमग्गगई अट्ठावीसइम अज्झयणा

॥१८॥

मोक्षमग्गगइ तव, सुखेह जिगमासियं ।

चठकारवसंछुए, नायाइसवसक्खणं ॥१८॥

हे सिष्य ! श्री जिनेन्द्र प्रादित मोक्षमार्ग मति को
मझसे सुनो श्री बार कारकों से युक्त जोर ज्ञान वर्त्म सक्षम
बाला है ॥१८॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गो सि पव्वत्तो, जिण्हिं वरदंसिहिं ॥२॥

सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनराज ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप को ही माक्ष मार्ग कहा है ॥२॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयमग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सुग्गं ॥३॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप रूप मोक्ष मार्ग को प्राप्त हुए जीव सुगति को जाते हैं ॥३॥

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिशोहियं ।
ओहिनाणां तु तइयं, मण्णनाणं च केवलं ॥४॥

ज्ञान पाँच प्रकार का है,—मति, श्रुत, अवधि, मन—
एवं और केवलज्ञान ॥४॥

एयं पंचविहं नाणं, दब्बाणं य गुणाणं य ।
पज्जवाणं य सव्वेसिं, नाणा नाणीहि देसियं ॥५॥

ज्ञानियों ने उपरोक्त पाँच प्रकार का ज्ञान द्रव्य, गुण और उनकी समस्त पर्यायों को जानने के लिए बताया है ॥५॥

गुणाणमासओ दब्बं, एगदब्बस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥६॥

गुणों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं । एक द्रव्य के आश्रित ज्ञानादि तथा वर्णादि गुण रहते हैं । द्रव्य और गुण

कं प्राथय स पर्यायं वहती है । ६॥

धम्भो अहम्भो आगास, कालो पुग्गत जंतवो ।

एस लोगो चि एमसो, जिणेहिं भरदसिहिं ॥७॥

सबस सबदर्शी बिनेत्र मे धर्म अधर्म प्राकाश काल
पुद्गल और जीव यह पद ब्रह्मात्मक साक कहा है ॥७॥

धम्भो अहम्भो आगास, दय्व इकिमादिय ।

अणंतायि य दय्वायि, कालो पुग्गतजंतवो ॥८॥

धम अधम और प्राकाश ये एक एक द्रव्य है । और
काल पुद्गल और जीव स अनन्त द्रव्य है ॥८॥

गच्छलक्ष्णो उ धम्भो, अहम्भो टायलक्ष्णो ।

भाययां सन्नदय्वायां, नह भोगालक्ष्ण्यां ॥९॥

धर्मास्तिकाय का लक्षण गति है । स्थिति धर्मस्तिका-
काय का लक्षण है । प्राकाश सभी द्रव्या का भाजन और धर्म-
गाहना लक्षणवाला द्रव्य है ॥९॥

वत्थालक्ष्णो कालो, जीवो उरभोगलक्ष्णो ।

नाखेयां दसखेयां च, सुदय्य य दुदय्य य ॥१०॥

कास का लक्षण वत्तमा और जीव का लक्षण उपदीप्त
है । वह ज्ञान दर्शन गुण और दुःख स जाना जाता है ॥१०॥

नार्णं च दसयां चैव, चरित्तं च तवो तदा ।

धीरिय उरभोगो य, एय जीवस्स लक्ष्ण्यां ॥११॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण हैं ॥११॥

सद्वयार-उज्जोओ, पभा छायातवोऽऽह वा ।

वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणां तु लक्खणां ॥१२॥

शब्द, अघकार, उद्योत, प्रभा, छाया, धूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श—ये पुद्गल के लक्षण हैं ॥१२॥

एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य ।

संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ॥१३॥

मिलना, मिश्र होना, सख्या, संस्थान, संयोग, और विभाग, ये पर्यायों के लक्षण हैं ॥१३॥

जीवाजीवा य बंधो य, पुएणां पावाऽसवो तहा ।

संवरो निजरा मोक्खो, संतेए तहिया नव ॥१४॥

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये नौ पदार्थ हैं ॥१४॥

तहियाणां तु भावाणां, सव्भावे उवएसणां ।

भावेण सद्वहंतस्म, सम्मत्तं तं वियाहिय ॥१५॥

इन पदार्थों के अर्थ भावों को स्वभाव में या उपदेश से भाव पूर्वक श्रद्धा करने को सम्यक्त्व कहते हैं ॥१५॥

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त-वीयरुद्धमेव ।

अभिगम वित्थारुई, किरिया-संखेव धम्मरुई ॥१६॥

सम्यक्त्व के भेद-१ निसर्ग-रुचि २ उपदेश-रुचि
३ भाज्ञा-रुचि ४ सूत्र ५ बीज ६ अभिगम ७ विस्तार
८ क्रिया ९ संक्षेप और १ ब्रह्म रुचि ॥१६॥

भूयत्वेवाहिगया, जीवाजीवा य पुण्यपाव च ।
सहसम्मुद्रयासुवसंवरो य, रोपड उ निस्सम्भो ॥१७॥

जिसने आतिस्मरणादि ज्ञान से आव ब्रह्माब पुण्य
पाप आदि का यथार्थरूप से ज्ञान सिधे वह निसर्गरुचि है ।

ओ जिणदिहे मावे अउम्बिहे सहहाइ समयम ।
एमेव नअइ चि य, न निमगल्ल चि नायम्भो ॥१८॥

जिनगद द्वारा दृष्ट पदार्थों का ब्रह्मादि चार प्रकार से
या स्वयमव जातकर यथार्थ धरता है उसे निसर्ग-रुचि
सम्यक्त्व जानना चाहिए ॥१८॥

एण वेव उ मावे, उअइ ओ परेण सहई ।
छउमत्यण जिखण व, उअएनल्ल चि नायम्भो ॥१९॥

उपयुक्त पदार्थों को छद्मस्व या सबल से सुनकर धरा
कर उसे उपदेश रुचि' सम्यक्त्व कहते हैं ॥१९॥

रागो दोमो मोहो, अभाणं अस्म अबगय होइ ।
आणाए रोयतो, सो अल्लु आत्मारु नाम ॥ ०॥

जिनके राग द्वय माह और अज्ञान न दूर हो गये हैं
ऐसे महापुण्या की भाज्ञा से रुचि हो वह भाज्ञा रुचि है ।

जो सुत्तमहिजंतो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।

अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुई त्ति नायव्वो ॥२१॥

जो अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य सूत्रों को पढ़कर सम्यक्त्व पाता है, उसे 'सूत्र-रुचि' कहते हैं ॥२१॥

एगेण अणोगाहं, पयाइं ओ पसगई उ सम्मत्तं ।

उदए व्व तेल्लविंदू, सो वीयरुई त्ति नायव्वो ॥२२॥

पानी में डाले हुए तेल की बूंद की तरह, जो एक पद से अनेक पदों में फैलता है, उसे 'बोज-रुचि' सम्यक्त्व कहते हैं ।

सो होउ अभिगमरुई, सुयनाणं जेण अत्थओ दिहुं ।

एकारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठियाओ य ॥२३॥

जिसने ग्यारह अंग, दृष्टिवाद और प्रकीर्ण आदि श्रुत को अर्थ सहित पढ़कर सम्यक्त्व पाई, वह 'अभिगम-रुचि' है ।

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्म उवल्लद्धा ।

सव्वहिं नयविहीहिं, वित्थारुई त्ति नायव्वो ॥२४॥

जिसने द्रव्यों के सभी भावों का सभी नयों और प्रमाणों से जानकर श्रद्धा की, उसे विस्तार-रुचि सम्यक्त्व कहते हैं ।

दंमणनाणचरित्ते, तत्रविणए सच्चममिडुगुत्तीसु ।

जो किरियामावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥२५॥

दशन, ज्ञान, चारित्र्य, तप, विनय, सत्य, समिति और गुप्तिरूप क्रिया से ही सद् पदार्थों में जिमकी रुचि होती है, वह क्रिया-रुचि है ॥२५॥

अयमिमाद्विपद्दिह्नी, सखेवस्त्वं चि होइ नायम्बो ।
अबिसारम्भो पवयसो, अयमिमाद्विभो य सेससु ॥२६॥

जिसने मिथ्या-भक्त का ग्रहण नहीं किया और न भक्त
मतों में उसकी भ्रष्टाई है । इधर वह बिना प्रवचन में भी बिसा
रव नहीं है उसे सक्षप रक्षि' कहते हैं ॥२६॥

बो अतिष्काय धम्म, सुयधम्म खलु चरित्तधम्म ध ।
सद्वह्म अयमिमाद्वि, सो धम्मस्त्वं चि नायम्बो ॥२७॥

जो बिना प्ररूपित अस्तिकाय धर्म अत धर्म और
चारित्र्य धर्म में भ्रष्टा रखता है उसे धम्म रक्षि कहते हैं ॥२७॥

परमत्पसंयवो वा, सुदिह्मपरमत्पसंयवा वा वि ।
भावभङ्गसंयवसंयवा, य सम्मत्तमद्वह्मा ॥२८॥

परमार्थ का विशेष परिचय करना बिहोने परमार्थ
का वेला है उसकी सेवा करना पतित और कुदर्थनी से दूर
रहना—यह सम्मत्त्व की भ्रष्टाई है ॥२८॥

नत्थि चरित्त सम्मत्तमिह्मं, दसखे उ मय्यम्भं ।
सम्मत्तचरित्ताइ, सुगर्बं पुम्भं व सम्मत्तं ॥२९॥

सम्मत्त्व के बिना चारित्र्य नहीं होता । दर्शन में चारित्र्य
की भजना है । सम्मत्त्व और चारित्र्य साथ हो तो भी उसमें
सम्मत्त्व पड़ने हाती है ॥२९॥

नादसणिस्स नाणं, नायेय विद्या न हंति चरत्तगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निम्बानं ॥३०॥

दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना चारित्र्य रूप गुण प्राप्त नहीं होता । चारित्र्य गुण से रहित जीव की मुक्ति नहीं होती और बिना मुक्ति के निर्वाण नहीं होता ।

निस्संक्रिय-निकंस्त्रिय-निर्व्विनिगच्छा श्रमूढदृष्टी य ।

उपबृंह-थिरीकरणे, वच्छल्लभभाषणे श्रद्ध ॥३१॥

नि शक्ति, नि काक्षित, निर्व्विचिकित्सा, श्रमूढदृष्टि, उपबृंहणा सिद्धीकरण, चारुसत्य और प्रभावना-ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं ॥३१॥

सामाहयत्थ पढमं, छेओवट्टावणं भवे वीर्यं ।

परिहारविसुद्धीय, सुहुमं तद्द संपरायं च ॥३२॥

पहला सामायिक चारित्र्य, दूसरा छेदोपस्थापनीय, तीसरा परिहारविशुद्ध और चौथा सूक्ष्मसंपराय चारित्र्य हैं ।

अकसायमढक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा ।

एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होद आहिय ॥३३॥

कषाय से रहित चारित्र्य, 'अथाख्यात' कहलाता है । यह छयस्य और केवली के होता है । ये पाँचों चारित्र्य, कर्मों को हटाने वाले हैं । ऐसा भगवान् ने कहा है ॥३३॥

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तद्द ।

बाहिरो छज्जिहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ॥३४॥

तप के बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो भेद हैं । बाह्य तप छ प्रकार का है और आभ्यन्तर तप भी छ प्रकार का है ।

नाशेयं क्षाण्डं माधे, वसणेण य महइ ।

अरिसेय निगिण्हाइ, वषण परिसुन्मई ॥३५॥

ज्ञान से पदार्थों का जाना जाता है । धर्म से बड़ा हावी है । चारित्र्य से कर्माधिकारी की राह हावी है और तप से मुक्ति होती है ॥३५॥

खविता पुम्बकम्मए, संजमेण वषेय य ।

सम्बदुक्खपहीण्हा, पचमति महेसिणो ॥३६॥

आ महवि है वे संयम और तप से पूरे कर्मों का त्याग करके समस्त दुःखों से रहित होकर मोक्ष पान का प्रयत्न करते हैं ॥३६॥

॥—॥ प्रवृत्तिसर्वा धम्मयत्त समाप्त ॥—॥

सम्मत्तपरक्कम

एगूयातीसइम अज्झयणा

—॥ ११ —॥

सुय मे आउसं ! तेय मगइया एवमक्खायं—इह तउ सम्मत्तपरक्कमे नाम अज्झयणे समखेयां मगइया महावीरेण कासवेयां पवेइए, अं सम्म सइइत्ता पत्तइत्ता रोयइत्ता अत्तिइत्ता पासइत्ता तीरिइत्ता किण्णइत्ता सोइइत्ता आराइत्ता

आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्भंति बुज्भति मुचंति
परिनिब्बायंति मच्चदुक्खाणमंतं करंति ॥१॥

हे शिष्य ! मैं भगवान् का उपदेश सुना है । उन
काव्यप गोत्रीय भ्रमण भगवान् महावीर स्वामीने सम्यक्त्व
पगाक्रम' ताम का अध्ययन कहा है । जिस पर सम्यक् प्रकार से
श्रद्धा करके, रुचि और प्रतीति करके, तदनुसार स्पर्श एव
पालन करके, उसका अन्त तक निर्वाह करते हुए प्रशंसा
सहित श्रुद्धि करके और आज्ञा का निरन्तर पालन करके
आराधना करने से बहुत से जीव सिद्ध हाते हैं, ब्रुद्ध (सर्वज्ञ)
होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं, और समस्त दुखों का अन्त
कर देते हैं ॥१॥

तस्स एां अयमट्ठे एवमाहिज्झइ, तं जहा-संवेगे निब्बेए
धम्ममद्धा गुरुसाहम्मियसुस्समणया आलोयणया निंदणया
गरहणया मामाडए चउवीसत्थए वदणे पडिक्कमणे काउ-
स्तग्गे पच्चक्खाणे थवधुईमगळे कालपडिलेदणया पायच्छि-
त्तकरणे खमावणया सज्झाए वायणया पडिपुच्छणया
पडियट्ठणया अणुप्पेदा धम्मकहा सुयस्स आराइणया एगग-
मणसनिवेमणया संजमे तवे वोदाणे सुहसाए अप्पडिभट्ठया
विवित्तसयणासणसेवणया विणिपट्ठणया संभोगपच्चक्खाणे
उवहिपच्चक्खाणे आहारपच्चक्खाणे कसायपच्चक्खाणे जोग-
पच्चक्खाणे सरीरपच्चक्खाणे सहायपच्चक्खाणे भत्तपच्चक्खाणे

सम्भावपञ्चकस्थाने परिरूढणया वेयावसे मन्वगुणसपण्याया
 वीयरगया खती मुची मदेवे अजवे भावसचे करकमच
 जोगसचे मणगुत्तया वयगुत्तया कायगुत्तया मणसमाधार
 णया वयसमाधारणया कायसमाधारणया नाणसंपन्नया दसया
 सपन्नया चरितसंपन्नया सोइदियनिग्गहे चरित्तिदियनिग्गहे
 भास्सिदियनिग्गहे जिस्सिमदियनिग्गहे कास्सिठियनिग्गहे कोइ
 विज्जए मायाविज्जए मायाविज्जए सोइविज्जए पणदोममिन्न
 दसणविज्जए सलेसी अरुम्मया ॥२॥

सम्यक्त्व पराक्रम का अर्थ इस प्रकार कहा है—१संबेग
 २ निर्वेद ३ धर्म धृष्ट ४ गृह और साधर्मियों की सेवा
 ५ आमाचना ६ निम्ना ७ यही ८ सामायिक ९ चतुर्विध
 स्तव १० वदना ११ प्रतिक्रमण १२ क्रामात्सर्ग १३ प्रत्यास्थान
 १४ स्तवस्तुति ममल १५ काल प्रतिसकना १६ प्रायश्चित्त
 १७ क्षमापना १८ स्वाध्याय १९ वाचना २० प्रतिपूजना
 २१ परावर्तना २२ अनुप्रेक्षा २३ अथ कथा २४ अतधाराधना
 २५ चित्त का एकाग्रता २६ समय २७ तप २८ व्यवधान
 २९ सताप ३० अप्रतिबद्धता ३१ एकाग्र समनाशन ३२ विनि
 वर्तना ३३ समाग त्याग ३४ उपवि त्याग ३५ आहार त्याग
 ३६ कषाय त्याग ३७ योग त्याग ३८ शरीर त्याग ३९ सहाय
 त्याग ४० भक्त प्रत्याख्यान ४१ समूह प्रत्याख्यान ४२ प्रति
 कृपता ४३ वैराग्य ४४ सर्वगण सम्यक्तता ४५ भीतरावता

४६ क्षमा ४७ निर्लोभता ४८ सरलता ४९ मृदुता ५० भाव
 गत्य ५१ करण सत्य ५२ योग सत्य ५३ मनगुप्ति ५४ वचन
 गुप्ति ५५ काय गुप्ति ५६ मन समाधारणा ५७ वचन समा-
 धारणा ५८ काय समाधारणा ५९ ज्ञान सम्पन्नता ६० दर्शन
 सम्पन्नता ६१ चारित्र्य सम्पन्नता ६२ आन्तेन्द्रिय निग्रह ६३ चक्षु-
 श्चन्द्रिय निग्रह ६४ घ्राणेन्द्रिय निग्रह ६५ रसेन्द्रिय निग्रह
 ६६ स्पर्शेन्द्रिय निग्रह ६७ क्रोध विजय ६८ मान विजय
 ६९ माया विजय ७० लोभ विजय ७१ राग द्वेष और मिथ्या
 दर्शन विजय ७२ शैलेशी ७३ अकर्मता ॥२॥

संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तरं
 धम्ममज्झं जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ,
 अणंताणुबंधिकोइमाणमायालोभे खवेइ, नवं कम्मं न बंधइ,
 तप्पच्चइयं च ण मिच्छत्तविसोहिं कारुण दंसणाराइए भवइ,
 दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवगह-
 रेण सिज्झइ । सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग-
 हणं नाइकमइ ॥१॥

हे भगवन् ! संवेग से जीव की किस गुण की प्राप्ति
 होती है ? उत्तर-संवेग से उत्तम धर्म श्रद्धा जाग्रूत होती है ।
 धर्म की उत्कृष्ट श्रद्धा करने से, संवेग (मोक्ष की अभिलाषा)
 की शीघ्र प्राप्ति होती है । अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया
 और लोभ का क्षय होता है । नये कर्मों का बन्धन नहीं होता ।

इससे मिथ्यात्व की विमृष्टि करके वधन को धाराधना हाथी है । वधन विमृष्टि से मुक्त होन पर कोई ता उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं और जो उस भव में सिद्ध नहीं हात व तासरे भव का प्रतिक्रमण नहीं करत प्रमाण तोसरे भव में सिद्ध हो जात है ।

निष्पेणं भते ! जीवे किं अणयइ ? निष्पेणं दिव्यमाणु सतरिच्छिणसु काममोगेसु निष्पेय इवमागच्छइ सज्जविस एसु विरज्जइ, सज्जविसएसु विरज्जमाणे आरंभपरिगहपरिणायकरइ, आरंभपरिमाहपरिणाय करेमाणे संसारमगं बोच्छिइ, सिद्धिमग्गं पड्विम य इवइ ॥२॥

हे भगवन् ! निर्बेद (संसार से विरक्त) का क्या फल है ? निर्बेद से बेव मनुष्य और तिर्यक् सम्बन्धों काम भावों से और अन्य सभी विषयों से विरक्त हो जाता है । फिर धारम्म परिग्रह का त्याग करके सुत्तार मार्ग को छोड़कर मोक्ष मार्ग का ग्रहण करता है ॥२॥

धम्मसद्धाए णं भते ! जीवे किं अणयइ ? धम्मसद्धाए णं सायासोक्खसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगारधम्म ध णं वयइ, अणगारिए णं जीवे सारीरमायमाणं दुक्खायां छेयशमेयसंजोगाईणं बोच्छेयं करइ, अप्यायाइ च णं सुइ निव्वणइ ॥३॥

हे भगवन् ! धर्म श्रद्धा से जोव क्या फल पाता है ? उत्तर—धर्म श्रद्धा से साताबन्धीय कर्मबन्धित मुक्त से विरक्त हो जाता है । फिर गृहस्थाश्रम छोड़कर वनगार हो जाता है ।

ग्रनगार होकर शारीरिक और मानसिक छेदन भेदनादि मयोग
जग्य दुखो का विच्छेद कर शाश्वत सुख को प्राप्त करता है ।

गुरुमाहम्मियसुस्समणयाए एं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
गुरुसाहम्मियसुस्ससणयाए णं विणयपडिवत्ति जणायइ,
विणयपडिवत्ते य एा जीवे अणच्चासायणासीले नेरइय-
तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवदुग्गईओ निरुंभइ, वण्णमंजलण-
भत्तिवहुमायायाए मणुस्सदेवगईओ निबंघइ, सिद्धि सोग्गइं
च विसोहेइ, पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सच्चकजाइं साहेइ,
अन्ने य बह्वे जीवे विणिडत्ता भवइ ॥४॥

हे भगवन् ! गुरु एव साधर्मजनों की सेवा करने में
जोध का किस गुण की प्राप्ति होती है ? उत्तर-गु० सा० सेवा
से विनय गुण की प्राप्ति होती है । विनय से अनाशातनाश'ल
सत्कार करता हुआ जीव, नरक तिर्यंच, मनुष्य और देव
सम्बन्धि दुर्गति को रोक देता है और इलावा-प्रणसा, भक्ति
बहुमान पाता हुआ, मनुष्य और देव सम्बन्धी सुगति वाधता
है और मिद्ध गति की विशुद्धि करता है और विनय मूल सभी
प्रशस्त कार्यों को साध लेता है, साथ ही अन्य अनेक जीवों
को विनय धर्म में जोड़ता है ॥४॥

आलोयणाए एं भंते ! जीवे किं जणयइ ? आलोयणाए
एं मायानियाणमिच्छदंसणमल्लाणं मोक्खमग्गविग्वाणं
अणंतसंसारवट्ठणाणं उट्ठग्ग करेइ, उज्जुभावं च जणयइ,

उज्जुमावपठिबभे य यां जीवे अमाई इत्थीवयनपुमगवय व
न वषट्, पुन्ववदू ध नं निजसू ॥५॥

हे भगवन् ! आलोचना से जीव क्या फल पाता है ?
उत्तर—आलोचना से मोक्ष मार्ग बिघातक अमन्त ससार बंध
एस माया मित्रान मिथ्या दर्शन मत्स्य का दूर करता है और
ऋजु भाव का प्राप्त करता है । ऋजु भाव से माया रहित
होता हुआ स्त्री वेद और नपुंसक वेद का बन्ध नहीं करता
पूर्व वन्ध की निर्बन्ध कर देता है ॥५॥

निंदयाए णं भते ! जीवे किं अयायइ ? निंदयाए णं
पच्छाणुतापं अयायइ, पच्छाणुतावेणं विरसमाये फलसुणं-
सेहिं पठिबळइ, फरणगुणसुडीपठिबभे य णं अणगारे मोह
खिळं फम्म उभाएइ ॥६॥

हे भगवन् ! आत्म निन्दा से जीव क्या पाता है ? आत्म
निन्दा से पश्चात्ताप होता है । पश्चात्ताप से बराबरबन्ध होकर
अपक खेपी प्राप्त करता है । अपक खेपी पानेवाला अमन्त
मोहनीय कर्म का नाश करता है ॥६॥

गरइयाए णं ! भते जीवे किं अयायइ ? गरइयाए
अपुरकारं अयायइ, अपुरकारए णं जीवे अप्यसत्थेहिंतो
ओगेहिंतो नियत्तेइ, पसत्थे य पठिबळइ, पसत्थओगपठिबन्ने
य यां अणगारे अयातथाइपळेवे स्वेइ ॥७॥

हे भगवन् ! गृही से जीव क्या फल पाता है ? गृही से आत्म नम्रता पाता है । आत्म नम्रता से अप्रशस्त योगो से निवृत्त होकर प्रशस्त योगो को प्राप्त करता है । प्रशस्त योग पाकर अनन्तर अनन्त धाती पर्यायो का क्षय कर देता है ॥७॥

सामाहण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सामाहणं सावज्ज जोगविरइं जणयइ ॥८॥

हे भगवन् ! सामायिक से जीव क्या पाता है ? सामायिक से सावज्ज योगो को निवृत्ति होती है ॥८॥

चउव्वीसत्थएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चउव्वीसत्थ-
एणं दंसणविसोहिं जणयइ ॥९॥

हे भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव करने से क्या फल होता है ? चतुर्विंशतिस्तव से दर्शन विशुद्धि होती है ॥९॥

वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वदणएण नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोय कम्मं निबंघइ, सोइगं च एणं अपडि-
इयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ ॥१०॥

हे भगवन् ! वन्दना करने से क्या फल पाता है ? वन्दना से नीच गोत्र कर्म का क्षय होकर ऊँच गोत्र कर्म बंधता है । अविच्छिन्न सोमाग्य तथा आजाफल (हुक्मत्) प्राप्त करता है और विश्ववल्लभ होता है ॥१०॥

पडिकमणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिकमणेणं वय-

स्त्रिद्विपि पिण्डे, पिद्वियवयस्त्रिदे पुण जीवे निरुद्धामवे अमवस
 चरित्त अहमु पवययामायासु उवठस अपुहुस सुप्पणिहिण
 विहरइ ॥११॥

हे म ! प्रतिक्रमण करने से जीव का क्या फल
 मिलता है ? प्र से व्रत म हुए छिद्रों को ठँकता है । फिर
 गुड़ व्रतधारों हाकर आत्मवा की राकठा है । आठ प्रवचन
 माता में सावधान होता है । गुड़ चारित्र्य पासता हुआ समाधि
 पूर्वक संयम में बिचरता है ॥११॥

काउस्मज्जेणं मते ! जीवे किं ज्ञायइ ? काउस्मज्जेणं
 सीयवहुप्पअपायच्छित्त विसोइइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे
 निष्पुण्यदिणए ओहरियमरो एव मारवहे पमत्त्यन्काओवगए
 सुइ सुइयां विहरइ ॥१२॥

हे म ! कायात्सम का क्या फल है ? कायोत्समं स भूत
 ओर वस्तमान काल के धर्तिधारों की शुद्धि होती है । इस
 शुद्धि से बोझ रहित-हल्का निश्चिन्त और प्रशस्त ध्यान मूर्त
 होकर सुख पूर्वक बिचरता है ॥१२॥

पक्कस्तायेणं मते ! जीवे किं जणयइ ? पक्कस्तायेणं
 आसवदाराइ निर्मइ, पक्कस्तायेण इच्छानिरोइ अमयइ
 इच्छानिरोई गए य न जीवे सम्पदप्पेसु विणीयवणइ सीरि
 भूए विहरइ ॥१३॥

हे म ! प्रत्याख्यान से जीव क्या पाता है ? प्र० ३

प्रायश्चित्तद्वारा को वन्द कर देता है, इच्छा का निरोध होता है ।
इच्छानिरोध होने से जीव, सभी द्रव्यों में तृष्णा रहित हाकर
शान्ति से विचरता है ॥१३॥

थयथुदमंगलेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? थयथुइ-
मंगलेणं नाणदंसणचरित्तबोहिलाभं जणयइ, नाणदंसण-
चरित्तबोहिलाभसंपन्ने य णं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणो-
ववत्तियं आराहणं आराहेइ ॥१४॥

हे भगवन् ! स्तव-स्तुति-मगस करने से क्या
फल मिलता है ? स्त० से ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य रूप बोधिलाभ
पाता है । ऐसा बोधि-लब्ध जीव, या तो मोक्ष पाता है, या
कल्प विमान में उत्पन्न होकर आराधक होता है ॥१४॥

कालपडिलेइणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
कालपडिलेइणयाए नाणावरणिज्ज कम्मं खवेइ ॥१५॥

हे भ० ! काल की प्रतिलेखना से जीव क्या प्राप्त
करता है ? का० से ज्ञानावरणोप कर्म का क्षय करता है ।

पायच्छित्तकर्णेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पायच्छित्त
करणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ,
सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च
विसोहेइ, आयार च आयारफलं च आराहेइ ॥१६॥

हे भ० ! प्रायश्चित्त करने से क्या फल होता है ?

प्रा० से पाप कम की बिशुद्धि होती है । निर्दोषरूप से व्रत पसते हैं । सम्यक् प्रकार से प्रायश्चित्त करने से ज्ञान दर्शन और चारित्र्य मार्ग तथा इनके फल की बिशुद्धि हाकर सम्यक् धाराबन्ता होती है ॥१८॥

स्वमाश्रयणाय वा भते ! जीवे किं ज्ञस्ययइ ? स्वमाश्रयणाय णं मन्हायणभाव ज्ञस्ययइ, पन्हायणभावमुबगए य सत्त्व पाप्म भूयसीवमचेसु मिचीभावमुप्पाएइ मिचीभावमुबगए यावि जीवे भाविसोहिं क्खऊस निम्मए भवइ ॥१७॥

हे भ० ! क्षमापना से क्या फल मिलता है ? क्षमापना से बिस्र की प्रसन्नता हातो है । फिर प्राणी मात्र से मैत्री भाव करके भाव बिशुद्धि करता हुआ जीव निर्मय हो जाता है ।

सज्ज्हाएण भंत ! जीवे किं ज्ञस्ययइ ? सज्ज्हाएण नाशावरणिजं कम्म खवइ ॥१८॥

हे भ० ! स्वाध्याय का क्या फल है ? स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है ॥१८॥

धायणाए यां भंते ! जीवे किं ज्ञस्ययइ ? धायणाए णं निज्जरे ज्ञस्ययइ, सुपस्स य अणुमज्झाए असासायणाए वइइ, सुपस्स अणुमज्झाए असासायणाए बहूमाणे तिग्घ वम्म अवलवइ, तिग्घवम्म अवलवमाणे महानिज्जरे मदापलवसाये भवइ ॥१९॥

हे म० ! वाचना से किस गुण की प्राप्ति होती है ? वाचना से निर्जरा होती है । अनुवर्तना होने से श्रुत की आशातना नहीं होती । श्रुतकी आशातना नहीं करने से तीर्थ धर्म का अवलम्बन होता है और महान् निर्जरा होकर कर्मों का अन्त हो जाता है ॥१६॥

पडिपुच्छणयाए एं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिपुच्छ-
णयाएणं सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ । कंखामोहणिजं कम्मं
वोच्चिदइ ॥२०॥

हे म० ! प्रतिपृच्छना का क्या फल है ? प्र० से सूत्र अर्थ और दोनों की विशुद्धि होती है और कांक्षामोहनीय कर्म नष्ट हो जाता है ॥२०॥

परियद्वयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? परियद्वयाए णं
वज्जयाइं जणयइ, वज्जवालद्धिं च उप्पाएइ ॥२१॥

हे म० ! पुनरावर्तन करने से क्या लाभ होता है ? पुनरावर्तन से व्यञ्जन लब्धि प्राप्त होती है ॥२१॥

अणुप्पेहाए एं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अणुप्पेहाए णं
आउपवज्जाओ सत्तकम्मपयडीओ धणियबंधणावद्धाओ
सिद्धिलबंधणावद्धाओ पकरेइ, दीढकालद्धिइयाओ हस्सकाल-
द्धिइयाओ पकरेइ, तिब्बाणुमावाओ मंदाणुमावाओ पकरेइ,
बहुपाएमगाओ अप्पएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं

कम्म सिय चवइ, सिय नो चवइ । अमायावयणिअ च
 य कम्म नो सुओ सुओ उवचिणइ अखाइय च य अख
 वयगं दीहमइ चाउरंत संमागकत्तारं सिण्णामव वीइयइ ॥२॥

हे म० ! धनुप्रेक्षा का क्या फल है ? धनुप्रेक्षा से
 प्राय को छोड़कर गण मात कर्मप्रकृति के लड़ बच्चों का
 निषिद्ध करता है । सम्व समय की स्थितिबाल सार्थ कर्मों
 का छोड़ समय की स्थितिबाल बना देता है । ताप रसवासों
 को मन्द रसबाले कर देता है । बहुत प्रदेशोंवासी प्रकृतियां
 का अल्प प्रदेशवासी बना देता है । आयुर्कर्म का वध
 कदाचित् होता है और नहीं भी होता है । अमातावन्तीय कर्म
 बार बार नहीं वधना तथा अनावि अनन्त और दीप मागबाल
 धनुमति लय सवार घटवी का लाभ हो पार कर जाता है ॥

धम्मकक्षाण णं मतु ! जीवे किं जस्यइ ? धम्मकक्षाण
 णं निअरं जस्यइ, धम्मकक्षाण णं पवयणं पमावइ, पवयण
 पमापणं जीवे आगमयस्स मदत्ताण कम्म निवधइ ॥२३॥

हे म० ! धम्मकक्षा कहन से कौनसा फल हाता है ?
 धम्म कक्षा से कर्मों का निवर्ण और प्रवचन की प्रभावना हाती
 है । प्रवचन प्रभावना से जीव भविष्य में न्यून कर्मों का वध
 करता है ॥२३॥

सुयस्स आराहस्ययाणं णं मतु ! जीवे किं जस्यइ ?
 सुयस्स आराहस्ययाणं अमागं खवेइ, न च संकिलिस्सइ ॥

हे भगवन् ! श्रुत की आराधना मे क्या फल होता है ?
श्रुतआराधना से अज्ञान का क्षय होता है । फिर उसे कभी
बलेश नहीं होता ॥२४॥

एगममणसंनिवेमणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
एगममणसंनिवेसणयाए णं चित्तनिरोहं करेइ ॥२५॥

हे भगवन् ! मनकी एकाग्रता से कौनसा गुण होता है ?
मनकी एकाग्रता से चित्त का निरोध होता है ॥२५॥

संजमेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संजमेणं अणण्हयत्तं
जणयइ ॥२६॥

हे भ० ! सयम से क्या लाभ होता है ? सयम मे आस्रवों
का निरोध होता है ॥२६॥

तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? तवेण बोदाणं जणयइ ॥

हे भ० ! तप से क्या गुण होता है ? तप से पूर्व के
बन्धे हुए कर्मों का क्षय होता है ॥२७॥

बोदाणेणं भंते जीवे किं जणयइ ? बोदाणेणं अकिरिय
जणयइ, अकिरियाए भवित्ता तथ्रो पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ
मुच्चइ परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥२८॥

हे भ० ! व्ययदान (कर्मक्षय) से कौनसा गुण होता है ?
व्ययदान से जीव अक्रिय होता है । अक्रिय होने के बाद सिद्ध,
बुद्ध, मुक्त होकर सभी दुखों का अन्त करता है ॥२८॥

सुहृसाएष भवे । जीवे किं अद्ययद् ? सुहृसाएष अणु
स्सुयसं ब्रूययद्, अणुस्सुए स जीवे अणुकपए अनुम्मइ
दिगयसोगे चरित्तमोहणिअ कम्म खवेइ ॥२६॥

हे म० । वैयर्थिक सुखों को शान्त (त्याग) करने से क्या
फल होता है ? उ — निस्पृह हो जाता है । निस्पृही जीव
अनुकम्पा सहित प्रेमिमान तथा शृंगार से रहित होकर शोक
रहित होता है और चारित्र्य मोहनीय कर्म को नष्ट कर देता है ।

अप्यटिबद्धयाए ण भंते ! जीवे किं अद्ययद् ? अप्यटि
बद्धयाए ण निस्संगत्तं ब्रूययद्, निस्संगत्ते जीवे एगे
एगग्गचित्ते दिया य राओ य असज्जमाणे अप्यटिबद्ध यावि
विहरइ ॥२७॥

हे म० । अप्रतिबद्धता से क्या गुण हाता है ? अप्रतिबद्धता
से निःसंगता आती है । निःसंगता से एकाकीपन और चित्त
की एकाग्रता होती है और सदा अनासक्त रहता हुआ सम्बन्ध
रहित हाकर विचरता है ॥३॥

विविचसयसासयाए ण भंते ! जीवे किं अद्ययद् ?
विविचसयसासयाए ण चरित्तगुत्तिं ब्रूययद्, चरित्तगुत्त
य ण जीवे विविचाहारे ददचरित्ते एगंतरए मोक्खभापट्ठि
वसे अट्ठविइकम्मगंठि निअरेइ ॥२८॥

हे म० । विविक्त ध्यानाध्यान-रूपी प्राप्ति रहित स्थान

के सेवन से क्या लाभ होता है ? विवक्त क्षयनाशन से चारित्र्य गुप्ति होती है । चारित्र्य गुप्त जीव, विकृति रहित आहार करने वाला, दृढ चारित्र्यवान् एकान्त सेवी और मोक्ष भाव का पाकर प्राणी कर्मों की गाँठ का तोड़ देता है ॥३१॥

विनियदृणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? विनियदृणयाएणं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुद्धेइ, पुब्बवद्धाण य निजरणयाए पावं नियत्तेइ, तओ पच्छ चाउरंतं संसार-कंतारं वीडययइ ॥३२॥

हे भ० ! विषयों की निवृत्ति से क्या गुण होता है ? विषयों की निवृत्ति से जीव, पाप कर्मों की निवृत्ति करने में तत्पर होता है । पूर्व के बन्धे हुए पाप कर्मों की निर्जरा करता है । फिर चार गति रूप संसार अटवी को पार कर जाता है ।

संभोगपच्चक्खायेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संभोगपच्चक्खायेण आलंबणाइं खवेइ, निरालंबणस्स य आयट्ठि रा जोगा भवन्ति । सण्णां लाभेणं संतुस्सइ, परलामं नो आसा-एइ, नो तक्केइ, नो पीहेइ, नो पत्थेइ, नो अभिलसइ, परस्सं लाभं अणामाएमाणे अतक्केमाणे अपीहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसेमाणे दुच्चं सुहसेज्ज उवसंपजित्ताणं विहरइ ॥३३॥

हे भ० ! संभोग प्रत्याख्यान से क्या लाभ होता है ? संभोग प्रत्याख्यान से परावलम्बन छूट कर स्वालम्बी बन

यम जाता है । निगबसम्पदी जीव की याग प्रकृति धारण
प्रतिपाद्य-याग के लिए ही होती है । यह अपने साम में ही
संगुष्ट रहता है परन्तु साम का आम्नाय नहीं करता नहीं
चाहता परन्तु साम पाने का प्रयत्न भी नहीं करता । इस
प्रकार पर से साम पाने की इच्छा त्याग कर दूसरी मुलधन्या
प्राप्त करके बिचरता है ॥३३॥

उपविष्यकसायेण भवे ! जीवे किं ब्रह्मयद् ! उचिह
पयकसायेण अपलिमयं ब्रह्मयद्, निरुपविष्य न जीवे निरुपवि
उचिहमवतरेण य न संकिलिस्सद् ॥३४॥

हे म० ! उपविष त्याग का क्या फल है ? उपविष त्याग
से स्वाध्याय में निविष्टता आती है । बाद में आकाशा रहित
होकर ब्रह्म रहित हो जाता है ॥३४॥

आहारपयकसायेण भवे ! जीवे किं ब्रह्मयद् ? आहार
पयकसायेण जीविपासं सत्पद्मोर्गं धार्ष्ट्यदद्, जीविपासं स
त्पद्मोर्गे बोर्ष्ट्यदिता जीवे आहारमवतरेण न संकिलिस्सद् ।

हे म० ! आहार के त्याग से क्या गण्य होता है ?
आहार के त्याग से जीवन की आशा नष्ट हो जाती है इससे
आहार के बिना भी उस कष्ट नहीं होता ॥३५॥

कसायपयकसायेण भवे ! जीवे किं ब्रह्मयद् ? कसाय
पयकसायेण वीयरोगमायं ब्रह्मयद्, वीयरोगमायपद्विदये
वि य न जीवे समसुदुक्खे भवे ॥३६॥

हे भ० ! कपायो के त्याग से क्या फल होता है ?
कपायों के त्याग से वीतराग भाव की प्राप्ति होती है । वीत-
रागों के सुख और दुःख दोनों एक समान होते हैं ॥३६॥

जोगपञ्चखाण्डेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? जोग-
पञ्चखाण्डेण अजोगयं जणयइ, अजोगी यं जीवे नवं कम्मं
न वेधइ, पुब्बवट्ठं च निज्जेइ ॥३७॥

हे भ० ! योगों के त्याग का क्या फल है ? योग त्याग
से अयोगीपन प्राप्त होता है । अयोगी जीव, नये कर्मों का बंध
नहीं करता और पूर्ववद्ध कर्मों को नष्ट कर देता है ॥३७॥

सरीरपञ्चखाण्डेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सरीर-
पञ्चखाण्डेण सिद्धाइसयगुणत्तणं निव्वत्तेइ, सिद्धाइसयगुण-
संपन्ने य एं जीवे लोकाभावावमुत्तमं परमसुखी भवइ ॥३८॥

हे भ० ! शरीर के त्याग से क्या गुण होता है ?
शरीर के त्याग से सिद्धों के अतिशय गुणों को प्राप्त करता
है । इन गुणों का पाकर वह लोक के अग्रभाग में पहुँच कर
परम सुखी हो जाता है । ३८॥

सहायपञ्चखाण्डेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? सहाय-
पञ्चखाण्डेण एगीभावं जणयइ एगीभावभूए य एं जीवे
एगगं भावेमाणे अप्पसहे, अप्पभंसे, अप्पकलहे, अप्प-
कमाणे, अप्पतुमत्तुमे, संजमवहुले, संवरवहुले, सामाहिए
यावि भवइ ॥३९॥

हे भ० ! सहायता का त्याग करने से जीव को क्या फल होता है ? सहायता का त्याग से एकरस भाव का प्राप्त होता है । एकाकी भाव वासा जीव अल्प सन्न वासा अल्प मन्द वासा हाकर बहुत ही समय खर समाधि वासा होता है ॥१६॥

मत्तपक्षकसायेषां मते ! जीवे किं ज्ञायम् ? मत्तपक्षकसायेषां अयोगाद् भवमपाद् निर्भमम् ॥४०॥

हे भ० ! भक्त प्रत्यक्ष्यान (बाह्य त्याग) का क्या फल है ? भक्त सकल मर्षों का निरास करता है ॥४०॥

सन्मापपक्षकसायेषां मते ! जीवे किं ज्ञायम् ? सन्मापपक्षकसायेषां अविपद्भिः खण्डम् । अनियद्भिः पदिवसे य अण्णगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खण्डे, तं ब्रह्म-वेपणिर्ज, भाउय, नाम, गोय । तम्भो पण्णा सिन्धु, पुन्धु, सुन्धु, परिनिष्वाय, सम्भुक्खागमत करे ॥४१॥

हे भगवन् ! सन्माप प्रत्याख्यान से क्या गण होता है ? सन्माप प्रत्याख्यान से अनिवृत्तिकरण (धुक्क ध्यान क बोधे भेद को) पाता है फिर बेदनीय आयु नाम और गोत्र इन चार अघातिकर्मों का नाश करता है । इसके बाद सिद्ध बुद्ध और मुक्त होकर सभी पुण्यों का अन्त कर देता है ॥४१॥

पदिरुवयाए नं मते ! जीवे किं ज्ञायम् ? पदिरुवयाए नं साधविम ज्ञायम् । सधुधूए नं जीवे अप्पमत्त पाण्डसिगे पसत्थसिगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिद्धसम्मत्ते सम्भवासभूयजीव

सत्त्वेषु वीरससिञ्जरूवे अप्पडिलेहे जिइंदिए विउलतवसमि-
इममनागए यावि भवइ ॥४२॥

हे भ० । प्रतिरूपता से क्या लाभ होता है ? प्रतिरूपता
मे लघुता आती है और प्रकट तथा प्रशस्त लिंग वाला होकर
सम्यक्त्व का विशुद्ध करता है । सत्त्ववत समितिवत होकर
समस्त प्राणियों का विश्वासी होता है । वह अल्प प्रतिलेखना
वाला, जितेन्द्रिय, विपुल तप तथा समिति करके युक्त होता है ।

वेयावचेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वेयावचेणं
तित्थयरनामगोत्तं कम्मं निबंधइ ॥४३॥

हे भ० । वैयावृत्य करने से जीव को क्या लाभ होता
है ? वैयावृत्य करने से तीर्थस्नान नाम कर्म का बन्ध होता है ।

सव्वगुणसंपयणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
सव्वगुणसंपयणयाए णं अपुणरावित्तिं जणयइ । अपुणरावित्तिं
पत्तए णं जीवे सारीरमाणमाण दुक्खाणं नो भागी भवइ ।

हे भ० । सर्व गुण सम्पन्नता का क्या फल है ? सर्व गुण
सम्पन्नता से पुनरागमन नहीं होता और वह शारीरिक और
मानसिक दुखों से मुक्त हो जाता है ॥४४॥

वीयरगयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वीयर-
गयाए णं नेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वुच्छिदइ,
मणुण्णामणुण्णेषु सदरूवरसफरिसगधेसु सचित्ताचित्तमीस-
एसु चेव विरजइ ॥४५॥

हे म० ! कोतगागता मे किस गुण की प्राप्ति होती है ?
 वो० से स्नेहागन्ध भीर तपना क भ्रमगन्ध को काट देता है।
 फिर प्रिय भवना अप्रिय सब रस गन्ध भीर स्वर्ग तथा
 सचित्त भवित्त भीर मिथ्य द्रव्यों से विरहम हुआ जाता है ।

तृतीया या मते ! जीवे किं अव्ययम् ? तृतीया या
 परीक्षे विषयम् ॥४६॥

हे म० ! ज्ञान करने से जीव का क्या फल मिलता
 है ? ज्ञान से परीक्षित को जीतता है ॥४६॥

चतुर्थीया मते ! जीवे किं अव्ययम् ? चतुर्थीया मते
 अकिञ्चया अव्ययम्, अकिञ्चये य जीव अत्यलोभायां पुरि
 सायां अपत्यगिन्ध्रं भवति ॥४७॥

हे म० ! निर्मोघता से क्या गुण होता है ? निर्मोघता
 से अकिञ्चनता आती है । अकिञ्चन मनुष्य से बन् के मोघा
 लोभ दूर हो जाते हैं ॥४७॥

अज्ञवयाए न मते ! जीवे किं अव्ययम् ? अज्ञवयाए
 यां काठन्धुयय भासुन्धुमय भासुन्धुयय अविर्साययां ब्रह्म
 यम्, अविर्साययसंप्रसायाए न जीव धम्मस्स आराहणं भवति ।

हे म० ! भार्जवता (सरलता) से जीव क्या प्राप्त
 करता है ? भार्जवता से शरीर भावों और भावना से वह
 सरल हो जाता है । वह विमवाद नहीं करता हुआ धर्म का
 आराधक होता है ॥४८॥

मद्वयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मद्वयाए णं
अणुस्सियत्तं जणयइ, अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमद्वसंपन्ने
अइ मयद्वाणाहं निद्ववेइ ॥४६॥

हे भ० ! माद्वता का क्या फल है ? माद्वता से
उत्तुक्ता-वचलता-से रहित होता है । वह कोमलता (मृदुता)
पाकर आठों मद स्थानों को नष्ट कर देता है ॥४६॥

भावसच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? भावसच्चेणं
भाववित्तोहिं जणयइ, भाववित्तोहिं वड्डमाणे जीवे अरहंत-
पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ, अरहंतपन्नत्तस्स
धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोमधम्मस्स आराहए
भवइ ॥४७॥

हे भ० ! भाव-सत्य का क्या गुण है ? भाव सत्य से
भावों की शुद्धि होती है । शुद्ध भाववाला जीव, अरिहन्त प्रणीत
धर्म की आराधना में तत्पर होकर पारलौकिक धर्म का
आराधक होता है । ॥ ४७॥

करणसच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? करणसच्चेणं
करणसत्तिं जणयइ, करणसच्चे वड्डमाणे जीवे जहावाइ
तदाकारी यावि भवइ ॥४८॥

हे भ० ! कारणसत्य से जीव क्या पाता है ? कारणसत्य
से सद्प्रवृत्ति होता है । सद्प्रवृत्ति वाला जीव, जैसा कहता है,
वैसा ही करनेवाला होता है ॥४८॥

ओगसन्धेर्मा मते ! जीवे किं अणयइ ? ओगसन्धेस
जोग विसोइइ ॥५२॥

हे म० ! याग सत्य से क्या फल होता है ? याग सत्य
म यागों की विमूर्छि हानी है ॥५२॥

मणगुत्तयाए ण मते ! जीवे किं अणयइ ? मणगुत्तयाए
ए एगमां अणयइ, एगमाविसेष जीवे मणगुत्ते संवमारप्पए
मणइ ॥५३॥

हे म० ! मणगुत्ति से क्या फल मिलता है ? मतो
गुत्ति से एकाग्रता हाती है । एकाग्र चित्त वाला जीव समय
का आराधक होता है ॥५३॥

वयगुत्तयाए ण मते ! जीवे किं अणयइ ? वयगुत्तयाए
अ निम्बिकारत्त अणयइ, निम्बिकारे अ जीवे वइगुत्ते अन्म
प्पओगसाइजमुत्ते यावि मणइ ॥५४॥

हे म ! वचन गुत्ति का क्या फल है ? वचन गुत्ति से
निम्बिकारिता पाती है । निम्बिकारी जीव वचन गुत्ति होने से
आध्यात्मयोग साधने वाला होता है ॥५४॥

कायगुत्तयाए ए मते ! जीवे किं अणयइ ? कायगुत्त
याए ण संवरं अणयइ, संवरेण कायगुत्ते पुणो पासासवनिरोह
करेइ ॥५५॥

हे म० ! कायगुत्ति से क्या फल होता है ? काय-

गुणों से सवर होता है । सवरवान् जीव, पापास्रवों का निरोध कर लेता है ॥५५॥

मनसमाधारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
मनसमाधारणयाए णं एगमं जणयइ, एगमं जणइत्ता
नाणपज्जे जणयइ, नाणपज्जे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ
मिच्छत्तं च निज्जेरेइ ॥५६॥

हे भ० ! मनसमाधारणा का क्या फल है ? मनसमाधारणा से एकाग्रता और एकाग्रता से ज्ञान की पर्यायें प्रकट होती हैं । इससे सम्यक्त्व की श्रुद्धि और मिथ्यात्व की निर्जरा हाती है ।

वयसमाधारणयाए ण भंते ! जीवे किं जणयइ ? वय-
समाधारणयाएणं वयसाधारण दंसणपज्जे विसोहेइ, वयसाधारण
दंसणपज्जे विमोहिता सुलढबोहियत्तं च निव्वत्तेइ, दुल्लह-
बोहियत्तं निज्जेरेइ ॥५७॥

हे भ० ! वचनसमाधारणा से क्या गुण होता है ?
वचनसमाधारणा में वचन याग्य दर्शन पर्यायों की श्रुद्धि हाती
है । फिर सुलभवाधि भाव प्राप्त कर, बोधि-दुर्लभता की
निर्जरा कर देता है ॥५७॥

कायसमाधारणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? काय-
समाधारणयाए णं चरित्तपज्जे विमोहेइ, चरित्तपज्जे विसो-
हिता अहक्कायचरित्तं विसोहेइ, अहक्कायचरित्तं विसो-

हिता चत्वारि फलिकम्भसु स्वये, तन्नो पञ्च सिद्ध
पुञ्जश्च मुञ्चश्च परिनिष्वायश्च सत्त्वबुक्त्वाणमतः करः ॥५८॥

—कायसनाधारणा से क्या फल होता है ? कादसना-
धारणा से चारित्र्य पर्यायों की सुखि हाता है । इससे यथास्थान
चारित्र्य की विनाशि हाती है । फिर चार भाति क्रमों का भव
हाता है और मित्र बुद्ध मन्त्र होकर सभी पुत्रों का भव
हो जाता है ॥५८॥

नाणसंपन्नया ए मते ! जीवे किं अक्षयः ? नर
संपन्नया ए स जीवे सत्त्वमासाद्दिगम अक्षयः, नासंपन्ने च
जीवे चउरंते संसारकृतार न विणस्सई—“ब्रह्मा छई समुत्त,
पडियावि न विणस्सई । तद्वा जीवे समुत्ते, संसारे न वि
स्सई ।” नासविणयसवचरिचज्जोगे सपाउसई, ससमयपरस
मयविसारए य असंघायविज्जे भवई ॥५९॥

—ज्ञान सम्पन्नता का क्या फल है ? ज्ञान सम्पन्नता से
सभी भावों का बोध हाता है । जिस प्रकार चागे सहित तुरी
गुम नहीं हाती उसी प्रकार ज्ञान सम्पन्न आत्मा का चार बलि
रूप संसार भटवी में विनाश नहीं हाता किन्तु विनय रूप
धीर चारित्र्य योग का प्राप्त करता है और स्व समय पर समय
का विचार होकर प्रासादिक पुत्र हो जाता है ॥५९॥

दस्यसंपन्नया ए मते ! जीवे किं अक्षयः ? दस्य
संपन्नया ए स भवमिच्छत्तत्पय करे परं न विज्जन्त,

परं अविज्ज्ञाएमाणे अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं
संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥६०॥

—दर्शन सम्पन्नता का क्या फल है ? दर्शन सम्पन्नता से
भव भ्रमण का हेतु ऐसे मिथ्यात्व का नाश कर देता है ।
उसका ज्ञान दोषक कभी नहीं बृक्षता । वह उन्कृष्ट ज्ञान दर्शन
में आत्मा को जोड़ता हुआ समभाव युक्त विचरता है ॥६०॥

चरित्तसंपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चरित्त-
संपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ. सेलेसिं पडिगन्ने य
अणगारे चत्तारि कम्मंसे खवेइ, तथो पच्छा सिज्झइ बुज्झइ
मुच्चइ परिनिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥६१॥

—चारित्र सम्पन्नता का क्या फल है ? चारित्रसम्पन्नता से
शैलेशी भाव प्राप्त होता है । शैलेशी भाववाले अनगार, चार
अघातिक कर्म का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर
समस्त दुखों का अन्त कर देते हैं ॥६१॥

सोइदियनिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सोइदिय-
नेग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु सदेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ,
तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वउदं च निज्जेरेइ ॥६२॥

—श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह का क्या फल है ? श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह
से प्रिय और अप्रिय शब्दों में राग द्वेष भाव—विकारी भावों का
निग्रह हो जाता है । उस निमित्त से होने वाले कर्मों का बन्ध
नहीं होता और पूर्ववद्ध कर्मों को निर्जरा होता है ॥६२॥

चर्षिदियनिमाहेण भते ! जीवे किं ज्ञायइ ? चर्षिदियनिमाहेण मणुभामणुन्नेसु रूपसु रागदोमनिमाह ज्ञायइ, तप्पञ्चइय कम्म न बवइ, पुब्बवदं च निज्जेरेइ ॥६३॥

—चक्षुःन्द्रिय के निग्रह से क्या गण होता है ? चक्षुःन्द्रिय के निग्रह से प्रिय और अप्रिय रूपों में राग द्वय नहीं होता और तज्जमित कम भी नहीं बँधत पूब के बँधे हुए कम क्षय हो जाते हैं ॥६३॥

घाणिदियनिमाहेण भते ! जीवे किं ज्ञायइ ? घाणिदियनिमाहेण मणुभामणुन्नेसु रससु रागदोमनिमाह ज्ञायइ, तप्पञ्चइय कम्म न बवइ, पुब्बवदं च निज्जेरेइ ॥६४॥

—घ्राणेन्द्रिय निग्रह का क्या फल है ? घ्रा० नि० से सुगन्ध दुग्ध में रास द्वय नहीं रहता और उसे कम भी नहीं बँधत तथा पहले के बँधे हुए कर्म हाते हैं वे क्षय हो जाते हैं ।

जिह्मिदियनिमाहेण भते ! जीवे किं ज्ञायइ ? जिह्मिदियनिमाहेण मणुभामणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिमाह ज्ञायइ, तप्पञ्चइय च खं कम्म न बवइ, पुब्बवदं च निज्जेरेइ ॥६५॥

—जिह्वेन्द्रिय निग्रह का क्या फल है ? जि० से घञ्ज बुरे रसों में राग द्वय का भाव नहीं होगा न बसे कर्म बँधते हैं और आ पूबवद कर्म होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं ॥६५॥

फासिदियनिमाहेण भते ! जीवे किं ज्ञायइ ? फासिदियनिमाहेण मणुभामणुन्नेसु फाससु रागदोसनिमाह ज्ञाय

यइ, तत्पञ्चडयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जेरेइ ॥६६॥

-स्पर्शेन्द्रिय निग्रह से क्या गुण होता है ? स्पर्शेन्द्रिय निग्रह से इच्छित अनिच्छित स्पर्शों से होनेवाले राग द्वेष का निरोध हो जाता है । निरोध हां जानें से वैसे कर्म नहीं बँधते, और पूर्वबद्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥६६॥

कोहविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कोहविजएणं खंतिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जेरेइ ॥६७॥

-क्रोध के विजय का क्या फल है ? क्रोध से क्षमा गुण की प्राप्ति होती है । क्रोधजन्य कर्मों का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्म क्षय हो जाते हैं ॥६७॥

माणविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? माणविजएणं मद्वं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जेरेइ ॥६८॥

-मान जीतने से क्या लाभ होता है ? मान जीतने से मृदुता आती है । मर्दव गुण सम्पन्न जीव, मान के द्वारा होने वाले कर्मों का बन्ध नहीं करता और बँधे हुए कर्मों को नष्ट कर देता है ॥६८॥

मायाविजएणं भंते जीवे ! किं जणयइ ? मायाविजएणं अज्जवं जणयइ, मायावेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जेरेइ ॥६९॥

—माया विजय का क्या फल है ? माया विजय से सरसता आती है वैसे कम नहीं बचते और पूव कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

लोमविज्रण्यां मते ! जीव किं ज्ञययद् ? लोमविज्रण्यां संतोसं ज्ञययद्, लोमवेयसिञ्ज कम्म न वधयद्, पुण्ययद् च निजरेद् ॥७०॥

—लोम को जीत लेने से क्या लाभ होता है ? लोम को जीत लेने से सन्तोष लाभ होता है । और लाभ से होने वाले नूतन कर्मों का बन्धन न होकर पूव कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

पिञ्जदोममिच्छादमणविज्रणं मंत ! जीव किं ज्ञययद् ? पिञ्जदोममिच्छादमणविज्रण्यां नाशदमणचरित्ताराइययाए अणुपुण्ड्र, अणुविहस्य कम्मस्य कम्मगण्ठिविमोयणयाए तप्पदमयाए बहाणुपुण्ड्रि अट्ठावीसविह सोऽपिञ्ज कम्म उग्घापयद्, पंचविह नाशावरणिञ्ज णवविहं दमणावरणिञ्ज पंचविह अन्तराय एए तिभि कम्मसे सुगद वधयद् तन्नो पण्णा अणुत्तरं अभंसं कसिणं पट्ठिपुण्यां निरावरणं विविमिरं विसुद्ध सोगासोगप्पमाव कंमलवरणा बद्धमणं समुप्पादेद्, जाय समोगी इयद् ताव इरियावहिय कम्म निवधयद्—सुहपरिसं दुसमय छिइय, त जहा—पढमसमण वद्धं विइयममए पेइय तइयममए निजिण्णां, त वद्ध पुट्ट उदीरिय पेइय निजिण्णां, सयात्ते य अकम्म यावि मयद् ॥७१॥

—प्रेम द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय में क्या फल होता है ? प्रेम द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की आराधना करने की तत्परता होती है । फिर आठ प्रकार के कर्मों की गांठ ताड़ने की शुरुआत होती है । उसमें पहले तो मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियों का क्षय होता है, फिर पाँच प्रकार के ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय और पाँच प्रकार के अन्तराय कर्म, इन तीनों का एक साथ ही क्षय होता है । उसके बाद प्रधान, अनन्त, सम्पूर्ण, परिपूर्ण, आवरण रहित, विगुह्य और लोकानोक प्रकाशक, प्रधान केवल-ज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होता है । वे केवली भगवान् जब तक सयोगी होते हैं, तब तक ईर्यापथिकी क्रिया लगती है । जो सुख रूप होकर वा समय की स्थितिवाली होती है । जैसे—प्रथम समय में बन्धती है, दूसरे समय में बेदी जाती है और तीसरे समय में क्षय हो जाती है । इस प्रकार बद्ध, स्पष्ट, उदय और वेदित हाकर क्षय होने पर कर्म से रहित हो जाते हैं ।

अथाऽयं पालङ्गा अतोमुदुचद्वावसेसाए जोगनिरोहं
करेमाणे सुदुमकिरियं अप्पडिवाहं सुक्कम्भाणं भायमाणे
तप्पदमयाए मणजोग निरुमह् मणजोग निरुमित्ता वयजोगं
निरुमह् वयजोगं निरुमित्ता कायजोग निरुमह् कायजोगं
निरुमित्ता आणपाणनिरोहं करेह, आणपाणनिरोहं करित्ता,
ईसिपंचहस्सकखरुच्चारणद्वाए य ए अणगारे सणुच्छिन्नकिरियं
अणियट्टिसुक्कम्भाणं मियायमाणे वेयणिल्लं आउयं नामं

गोच च एए चत्वारि कम्मसं जुगव सत्वेइ ॥७२॥

फिर प्रवक्ष्य रहें हुए आयकर्म का भामते हुए जब अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आय शव रह जाती है तब यागो का निरास करत हुए 'सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपादी' नाम के सूक्ष्मध्यान के तीसरे पाद का ध्यान ध्यात हुए प्रथम मनोभाम का निरास करत हैं। इसके बाद वचन काया और द्वासोऽन्धवास का निरास करत हैं इसके बाद पाँच हुस्वाक्षर के उच्चार करमे जितने समय में वे अनगार समुच्छिन्नप्रतिभ्याप्रनिवृत्ति' नाम के सूक्ष्मध्यान को ध्याते हुए वेदनीय आयु नाम और भाव, इन चार कर्मों को एक साथ धर कर देते हैं ॥७२॥

तमो भोगस्त्रिय तेष कम्माइ सञ्चारिं विप्पसइत्ताहिं विप्पसइत्ता ठन्नुसद्विपत्त अफुसमापगई उहु एगसमएणां अविग्गहेणं तस्य गंता सागारोवठत्ते सिग्गम्ह पुज्जम्ह नाव अत करेइ ॥७३॥

फिर भौतिक तेजस और कार्मेण शरीर को सबका त्यागकर ऋजु चण्डी को प्राप्त होता है और अभ्यास सदा प्रविष्ट एक समय की उच्चगति से सिद्ध स्थान पाकर जाकार ज्ञानोपयाम युक्त सिद्ध बुद्ध होकर समस्त दुःखों का अन्त कर देते हैं ॥७३॥

एए खलु मम्मत्तपरक्कमस्स अज्झपयास्स अहे समखेणं भगवया महावीरणं आपविण पशविण परुविण दसिण निदसिण उवदंसिण ॥७४॥ धि मेमि ॥

इस प्रकार सम्यक्त्वपराक्रम अध्ययन का अर्थ, ध्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रतिपादन किया, प्रज्ञापित निरूपित किया, दिखाया, उपदेश किया। ऐसा मैं कहता हूँ ॥७४॥

॥ - ॥उन्तोसदा अध्ययन समाप्त ॥ - ॥

तवमग्गं तीसइमं अज्झयणं

॥३॥ - ३० - ॥३॥

जहा उ पावगं कम्मं, रागदोमसमज्झियं ।

खवेइ तवसा भिक्खु, तमेगग्गमणो सुण ॥१॥

हे शिष्य ! राग द्वेष से उत्पन्न किये हुए पाप कर्मों को भिक्षु जिम तपस्या से क्षय करते हैं—उसे एकाग्र मन से सुनो ।

पाणिग्रह-मुसावाया, अदत्त-मेहुण-परिग्रहा विरओ ।

राईभोयणाविरओ, जीवो हवइ अणासवो ॥२॥

हिंसा, मृपा, अदत्त, मैथुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन से विरत होने पर जीव अनाश्रवी होता है ॥२॥

पंचसमिओ तिगुत्तो, अकमाओ जिइंदिओ ।

अगारवो य निस्सहो, जीवो हवइ अणासवो ॥३॥

जो जीव पाचसमिति एव तीनगुप्ति से युक्त, कषाय रहित, और जितेन्द्रिय होकर गर्व तथा घृत्य से रहित होता है वह निराश्रवी हो जाता है ॥३॥

एषति तु विवक्षासे, रागद्वेषममस्त्रिय ।

स्ववेद उ ब्रह्म मिच्छु, तमेगन्गमणो सुपा ॥४॥

उपरोक्त गुणा के विपरीत राग द्वेष करके उपाजित किये हुए पाप कर्म के क्षय करने की विधि मुझसे एकाग्र मन से सुना ।

ब्रह्म महातक्षागस्त, सभिरुद्धे बलागमे ।

उस्मिन्वयाए तवपाए, कर्मण सोसपा भवे ॥५॥

एष तु संक्षयस्तावि, पावकम्मनिरामवे ।

मवकोडीसंचिय कम्म, तवसा णिज्जरिजाइ ॥६॥

जिस प्रकार बड़े भारी तालाब में पानी आने के मार्ग को रोक कर उनका बल उन्नीचने तथा सूर्य के ताप से कमजोर सुझाया जाता है उसी प्रकार क्षयमी पुरुष नबोन पाप कर्मों का रोक कर कराडो भवा के उचित कर्मों को तपस्या के द्वारा क्षय कर देते हैं ॥४-५॥

सो तवो दुविहो धुत्तो, धादिरन्मिंतरो तहा ।

धादिरो धम्मिहो धुत्तो, एवमन्मिंतरो तवो ॥७॥

बहु तप बाह्य धीर धाम्यन्तर भेद से दो प्रकार का है बाह्य तप छ प्रकार का है धीर धाम्यन्तर के भी छ भव हैं

अयम्ममूणोयरिया, मिच्छायरिया य रसपरिधाओ ।

कायफिस्सेसो संत्तीणया, य वज्ज्मो तवो होइ ॥८॥

मनसग अन्तोदरा मिज्ञावटी रस परिहारा कायकलेछ धीर संतीमता ये बाह्य तप के भद है ॥८॥

इत्तरिय मरणकाला य, अणसणा दुविहा भवे ।
इत्तरिया सावकंखा, निग्वकंखा उ विडजिया ॥६॥

अनशन के इत्त्वरिक (थोड़े समय का) और मृत्यु पर्यन्त ऐसे दो भेद है । इत्त्वरिक आकाक्षा सहित और मृत्यु पर्यन्त का आकाक्षा रहित है ॥६॥

जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो ।
सेदितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥१०॥
तत्तो य वग्गवग्गो य, पंचमो छद्धओ पडएणतवो ।
मणइच्छियचित्तत्थो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥११॥

इत्त्वरिक तप भी सक्षेप से छ प्रकार का है- १ श्रेणी तप २ प्रतरतप, ३ घनतप, ४ वगंतप, ५ वगंवगंतप और ६ प्रकीर्णतप । इस तरह नाना प्रकार के मनोवाञ्छित फल देने वाला इत्त्वरिकतप हाता है ॥१०-११॥

जा सा अणमणा मरणो, दुविहा सा वियाहिया ।
सवियारमवियाग, कायचिद्धं पई भवे ॥१२॥

मरणकाल पर्यन्त अनशन तप के भी सविचार (कायचेष्टा सहित) और अविचार (कायचेष्टा रहित) ऐसे दो भेद है ॥१२॥

अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया ।
नीहारिमणीहारी, आहारच्छेओ य दोसु वि ॥१३॥

अथवा सपरिकर्म और अपरिकर्म तथा नीहारी और

अमीहारी इस प्रकार यावत्कामिक अनशन के हो भवे हैं। इन दोनों में आहार का सर्वथा त्याग होता है ॥१३॥

ओमोपणं पचद्वा, समासेय विपादिर्य ।

दम्बओ खेचक्रसेणं, मावेयां पञ्चवहि य ॥१४॥

ऊनादरी तप के सहाय से द्रव्य क्षत्र काल भाव और पर्याय य पाच भेद कहे हैं ॥१४॥

ओ जस्म ठ आहारे, ठचो ओम तु ओ करे ।

बहन्नेखेगसिस्थाइ, एव दम्बेख ऊ भवे ॥१५॥

जिसका जितना आहार है नष्टमें से कम से कम एक कबल भी कम भावे वह 'द्रव्य ऊणोदरी' तप होता है ॥१५॥

गामे नगरं तह रापहाणि, निगमे य आगरे पछी ।

खेहे कम्बड-ओसमुह-पट्टण-मडंन-संभाहे ॥१६॥

आममपण विहारे, समिबेसे समापणोसे य ।

थलिसेणात्तपारे, सत्थ सवहुकोट्ट य ॥१७॥

बाडेसु य रत्थासु प, परेसु वा एवमिचियं खेच ।

कप्पइ ठ एवमाई, एव खेचेख ऊ भवे ॥१८॥

ग्राम नगर राजधानी निगम आकर पत्नी कट कबल प्राणमुक्त पत्तन सबाम आभमपद विहार समिबेसा समाज धीय स्थल सत्ता स्कन्धावार सार्य संबल कोट घरों क समूह यमियों और गृहों इत्यादि इषामों में मिथ्याचरी करना कसता है। यह क्षेत्र ऊणोदरी तप हुआ ॥१६-१८॥

पेडा य अद्दपेडा, गोमुत्ति पयंगवीहिया चेव ।

संयुक्ताचट्टाययगतुं, पञ्चागया छट्टा ॥१६॥

पेटिका, अर्धपेटिका, गामूत्रिका, पतंग-विथिका, शाखावर्त्त और लम्बो दूर जाकर फिर आना, ये छ प्रकार भी 'क्षेत्र ऊनोदरो' तप के हैं ॥१६॥

दिवसस्स पोरिसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो ।

एवं चरमाणो खलु, कालोमाणं मुखेयव्वं ॥२०॥

दिन के चार प्रहरों में से किसी अमुक प्रहर में ही भिक्षा लेने के अभिग्रह को 'काल ऊनोदरो' तप कहते हैं ॥२०॥

अइवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाए घासमेसंतो ।

चउभागूणाए वा, एवं कालेण ऊ भवे ॥२१॥

अथवा तीसरे प्रहर के प्रथम भाग, चौथे या पाचवें भाग में भिक्षार्थ जाने की प्रतिज्ञा को 'काल ऊनोदरो तप' कहते हैं ।

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वाऽणलंकिओ वा वि ।

अण्णयरवयत्थो वा, अन्नयरेणां व वत्थेणं ॥२२॥

अण्णेण विसेसेणां, वण्णेणां भावमण्णमुयंते उ ।

एवं चरमाणो खलु, भावोमाणां मुखेयव्वं ॥२३॥

स्त्री अथवा पुरुष, अलंकार सहित या रहित, अमुक वय वाला, अमुक वस्त्र वाला, अमुक वर्ण वाला अथवा अमुक भाव वाले दाता से ही भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा का भावऊनोदरो तप' ०

दम्बे खेचे कासे, मात्रम्भि य आहिया उ अे मावा ।

एएहिं ओमचरओ, पल्लवचरओ सवे मिक्खु ॥२४॥

द्रव्य क्षत्र कास और भाव से चारों प्रकार के नियम सहित वा साधु विचरता है उस 'पयवचर भिक्षु' कहते हैं ।

अट्ठविइ गोथरगं तु, तद्धा सच्चव एमखा ।

अभिमाहा य अे अन्ने, मिक्खापरिपमाहिया ॥२५॥

आठ प्रकार की नाचरी सात प्रकार की एषणा और अन्य धर्मिग्रह को भिक्षाचरी तप' कहते हैं ॥२५॥

स्त्रीग्दहिमप्पिमाई पणीय पाणभोयणं ।

परिवज्जणं रमाणं तु, मस्सिय रसविज्जणं ॥२६॥

दूध दही घृत और पक्वान्न तथा रसमुक्त आहार के त्याग को 'रस परित्याग तप' कहते हैं ॥२६॥

ठाणा वीरामुशाईया, जीवस्स उ सुहावहा ।

उम्मा अहा धरिज्जति, कायक्खिण्णं समाहिय ॥२७॥

बोरासनादि उग्र भासनों द्वारा कायत्पत्ति के भेद को धारण करना कायक्केश तप है ॥२७॥

एगंतमशावाण, इत्थीरसुविज्जिण ।

सयणासनसेवयाया, विविच सयणासणं ॥२८॥

एकान्त—जहाँ कोई जाता जाता नहीं हां और स्त्री पशु करके रहित हो ऐसे स्थान में सयनासन करना विविक्त सयनासन' तप है ॥२८॥

एसो बाहिरंग तवो, समासेषा वियाहिओ ।
अर्विभतरं तवो इत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥२६॥

इस प्रकार बाह्य तप का संक्षेप में वर्णन किया । अब
आभ्यन्तर तप का क्रमशः वर्णन कहेंगा ॥२६॥

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
भाणं च विउस्सग्गो, एसो अर्विभतरो तवो ॥३०॥

प्रायश्चित्त, विनय, वेयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान तथा
कायोत्सर्ग, ये छ भेद आभ्यन्तर तप के हैं ॥३०॥

आलोयणारिहाईयं, पायच्छित्तं तु दसविहं ।
जे भिक्खू गहई सम्म, पायच्छित्तं तमाहियं ॥३१॥

आलोचना आदि दस प्रकार का प्रायश्चित्त है । जिसका
सम्यक् प्रकार से आचरण करनेवाले भिक्षुक को 'प्रायश्चित्त'
तप होता है ॥३१॥

अब्भुट्ठाणां अंजलिकरणां, तहेवामणदायणां ।
गुरुभत्ति भावमुस्सुखा, विणओ एस वियाहिओ ॥३२॥

सडा हाँकर गुरुजनो को सन्मान देना, हाथ जोड़ना,
आसन देना गुरु भक्ति करना और भाव पूर्वक सेवा करना,
इसे विनय तप' कहा है ॥३२॥

आयरियमाईए, वेयावच्चम्मि दमविहे ।
आसेवणा जहाथामं, वेयावच्चं तमाहियं ॥३३॥

आचार्यादि इस की यथा शक्ति बेयाबृत्य करना बेयाबृत्य तप कहाता है ॥३३॥

नायथा पुनश्चा भवे, तदेव परियुज्या ।
अणुपेहा भम्मकहा, सन्मन्त्रो पचहा मवे ॥३४॥

नायथा पुनश्चा परावृत्ता अनुपेक्षा और भर्मकथा ये 'स्वाध्याय' तप के पाँच भेद ह ॥३४॥

अङ्गुराणि बलिता, म्माङ्गा सुसमाहिए ।
धम्मसुक्काह म्माङ्गा, म्मर्णं तं तु बुहा वय ॥३५॥

भार्त और छद्मध्यान को छाड़कर उमाधि सहित धर्म और शुद्धकर्म्यान् करे, उसे बुद्धिमानो ने 'ध्याम तप कहा है ।

सयथासह ठासे वा, जे उ भिक्षुं ण वावरे ।
कायस्स पिउस्सग्गो, छद्दो सो परिकिचिओ ॥३६॥

सोठे बैठते या उठते समय जो भिक्षु काया के व्यापारों को त्याग देता है उसे 'कायोत्सर्ग' तप कहते हैं ।

एवं तव तु बुविह, जे सम्म आपरे सुयी ।
सो सिप्प सच्चसंसारा, पिप्पमुब्बह पंडिओ ॥३७॥

इस प्रकार दोनों तरह के तप का जो मुनि सम्यक् प्रकार से आचरण करते हैं वे पण्डित दीप्त ही संसार के समस्त बन्धनों से छूटजाते, हैं ॥३७॥

—तीसरी अध्यायन समाप्त—

चरणविही एगतीसइमं अज्भयणं

४३ - ३१ - ३३

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं ।

जं चरित्ता वह जीवा, तिन्ना संसारसागरं ॥१॥

जीवों को सुख देनेवाली चाग्नि विधि कहता हूँ,
जिसके आचरण से बहुत से जीव ससार सागर से तिर गये ।

एगओ विरहं कुजा, एगओ य पवत्तणं ।

असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥२॥

असयमरूप एक स्थान से निवृत्ति करके सयमरूप एक
स्थान में प्रवृत्ति करे ॥२॥

रागदोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे ।

जे भिक्खू रुंभइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥३॥

राग और द्वेष ये दो पाप ही पापकर्म का प्रवर्तन
करते हैं । जो भिक्षु इनका सतत निरोध करता है, वह ससार
में परिभ्रमण नहीं करता ॥३॥

दंडाणं गारवाणं च, सज्जाणं च तियं तियं ।

जे भिक्खू चयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥४॥

जो भिक्षु तीन दण्ड, तीन गर्व और तीन शल्य को सदा
के लिए त्याग देता है, वह ससार भ्रमण नहीं करता ॥४॥

दिष्ट्वे य जे उबसमो, तहा तेरिच्छ माणुसे ।

जे मिक्खु सई निषं, से न अण्ण मइले ॥५॥

जो भिक्षु देव मनुष्य और तिर्यञ्च सबकी उपसर्ग को सहन करता है वह संसार में नहीं भटकता ॥५॥

विगहा-कमाय-समाणं, म्हायाणं च दुय तहा ।

जे मिक्खु सई निषं, से न अण्ण मइले ॥६॥

जो मुनि चार दिक्का चार कपाय चार सत्ता और दो ध्यान को त्याग देता है वह संसार में नहीं घमटा ॥६॥

वएसु इदियत्थेसु, समिईसु किरियासु य ।

जे मिक्खु सई निषं, से न अण्ण मइले ॥७॥

पांच व्रतो और पांच समितियों के पावन तथा पांच इन्द्रियों के विषयों के तथा पांच क्रिया के त्याग में जो संपत्ति निश्च परिश्रम करता है वह संसार में नहीं रहता ॥७॥

वेसासु जसु काएसु, अण्ण आहारकारणे ।

जे मिक्खु सई निषं, से न अण्ण मइले ॥८॥

जो लेख्या छ काय और आहार करने के छ कारकों में जो साधु तथा यतनार्थ रहना है वह भग्न भ्रमण नहीं करता ।

पिंडोग्गहपडिमासु, मयट्ठात्थेसु सत्तसु ।

जे मिक्खु सई निषं, से न अण्ण मइले ॥९॥

आहार लेने की सात प्रतिमाओं और सात भय स्थानों

में जो भिक्षु सदैव यत्नवन्त रहता है, वह ससार में नहीं फँसता ।

मएसु वंभगुत्तीसु, भिक्षुधम्मम्मि दसविहे ।

जे भिक्षू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१०॥

आठ मदो के त्याग में, नो ब्रह्मचर्यं गुप्ति तथा दस प्रकार के भिक्षु धर्म के पालन में जो साधु सदा उद्यमी रहता है, वह ससार में नहीं डूबता ॥१०॥

उवासगाणं पडिमासु, भिक्षूणं पडिमासु य ।

जे भिक्षू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥११॥

उपासको को ग्यारह प्रतिमा और भिक्षुओं की बारह प्रतिमाओं में जो भ्रमण सदैव उपयोग रखता है, वह ससार चक्र में नहीं पड़ता ॥११॥

किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य ।

जे भिक्षू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१२॥

तेरह प्रकार के क्रिया स्थानों, चौदह भूतग्रामो और पन्द्रह प्रकार के परमाधामी देवों में जो भिक्षु मदा विवेक रखता है, वह ससार भ्रमण नहीं करता ॥१२॥

गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य ।

जे भिक्षू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१३॥

जो भिक्षु प्रथम सूत्रकृतांग के सोलह अध्ययन और सतरह प्रकार के असयम में यत्न रखता है, वह भव भ्रमण नहीं करता ॥१३॥

वमस्मि नायन्मप्येसु, ठायेसु असमाहिण ।

जे मिक्खु अयई निब्ब, से न अण्णइ मडले ॥१४॥

ब्रह्मचर्य के प्रठारह स्थानों और आताभर्मकथा सूत्र के तृतीस अध्यायनों तथा असमाधि के बीस स्थानों में जो मुनि सदा यतना रत्नता है वह संसार में नहीं रुकता ॥१४॥

एगवीसाए सवले, बावीसाए परीसहे ।

जे मिक्खु अयई निब्ब, से न अण्णइ मडले ॥१५॥

इकबोस सबस बोधों को त्यागने और बाबोस परीपहों को जीतने में जो भिक्षु सदा उपयोग रत्नता है वह संसार....

सवीसाए सपगहे, रुवगहियसु सुरसु य ।

जे मिक्खु अयई निब्ब, से न अण्णइ मडले ॥१६॥

जो मुनि सूत्रकृतांग के तेबीस अध्यायनों में और अधिक रूप वाले चौबीस प्रकार के देवों में सदा उपयोग रत्नता है

पणवीस भावणासु, उइसेसु दसायसा ।

जे मिक्खु अयई निब्ब, से न अण्णइ मडले ॥१७॥

जो साध पण्चीस प्रकार की भावना में और दशाधृत स्तम्भ बुद्धकल्प और व्यनहार के २६ उद्देशों में सदा यतन रत्नता है वह संसार में नहीं दसता ॥१७॥

अणगासुखेहिं प, पगप्पम्मि तइय य ।

जे मिक्खु अयई निब्ब, से न अण्णइ मडले ॥१८॥

जो भिक्षु, अन्तर के मत्तावीस गुणों में श्रीर अट्ठाईस
आचारप्रकल्प में सावधान रहता है, वह ससार में नहीं रहता ।

पात्रसुयप्पसंगेसु, मोहट्ठाणेसु चेव य ।

जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१९॥

जो भिक्षु उनतीस प्रकार के पापश्रुत प्रसंगों में और
मोहनीय के तीस स्थानों में सतर्क रहता है, वह ससार में०

सिद्धाङ्गुणजोगेसु, तेत्तीसाऽसायणासु य ।

जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥२०॥

जो साधु, सिद्धों के इकत्तीस गुणों में, बत्तीस योग
सग्रही में और तेतीस प्रकार की आशान्ताओं में सदा यतना
रखता है, वह ससार परिभ्रमण नहीं करता ॥२०॥

इइ एणसु ठाणेसु, जे भिक्खू जयई सया ।

खिप्पं से सन्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिओ ॥२१॥ त्ति वेमि ।

इन पूर्वोक्त स्थानों में जो पिडित भिक्षु, सदैव यतना
रखता है, वह शीघ्र ही ससार के समस्त बन्धनों को काटकर
मुक्त हो जाता है ॥२१॥

॥- इकत्तीसवा अध्यायन समाप्त -॥



पमायट्टाण वत्तीसहस्रम् अज्झयणा

—६— ३२—६—

अचत्तकालस्स समूतगस्स, सम्बस्स दुक्खस्स ठ ओ पमोक्खो ।
त भासओ मे पडिपुष्पनित्ता, सुखेह एगंतहिंयं हियत्थ ॥१॥

हे मध्य जीवों ! मिथ्यात्व-मोहनीय आदि मूल के
साथ रहे हुए कुछ अनादिकाल से जीव को दुखी कर रहे हैं ।
इन सभी दुखों से सबका मुक्त करके एकान्त हित करनेवाला
कल्याणकारी उपाय बताता हूँ । एकान्त मन से सुनो ॥१॥

नायस्स सम्बस्स पगासत्थाए, अभायमोहस्स विवत्तथाए ।
रागस्स दोसस्स य संलएयां एगंतसोक्खं समुपेह मोक्ख ॥२॥

राग-द्वेष के सर्वथा क्षय एवं अज्ञान और माह के सर्वथा
त्याग से सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश होता है । इससे वह जीव
एकान्त सुखरूप भाव को प्राप्त कर छटा है ॥२॥

तस्सेस ममो गुरु-विद्दसत्ता, विवत्तत्ता वात्तगयास्स दूरा ।
सज्झयएगंतनिसेवणा य, सुतज्जसच्चित्तयया धिई य ॥३॥

जाम जीवों के सम को त्यागकर दूर रहना बूढ़ तथा
गुरुजनों की सेवा करना एकान्त में नीरज के साथ स्वाध्याय
करना और सूत्र धर्म का चिन्तन करना यही मोक्ष का मार्ग है ।

आहारमिच्छे मियमेमधिक्खं, सहायमिच्छे निउणत्तवपुद्धिं ।
निकेपमिच्छे विवेगजोगं, समाहिकामे समये तवस्सी ॥४॥

समाधि के इच्छुक तपस्वी साधु को परिमित शुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिए और निपुणार्थ वृद्धिवाला सहायक लेना चाहिए तथा एकान्त स्थान में रहना ही पसन्द करना चाहिए।

न वा लमिज्ञा निउणं महाय, गुणादियं वा गुणओ समं वा ।
एगो वि पावाहं विवज्जयतो, विहरेज्ज कामेसु अमज्जमाणो ॥५॥

यदि अपने से गुणों में अधिक अथवा समान निपुण (कुशल) सहायक नहीं मिले, तो समस्त पापों का त्याग करके, काम भोगादि में आसक्त न होता हुआ, अकेला ही विचरे ।

जहा य अण्डप्पभवा बलागा, अण्डं बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयंति ॥६॥

जिस प्रकार अण्ड की उत्पत्ति पक्षी से और पक्षी की उत्पत्ति अण्ड से होती है, उसी प्रकार मोह की उत्पत्ति तृष्णा से और तृष्णा की उत्पत्ति मोह से होती है ॥६॥

रागो य दोसो वि य कम्मवीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ।
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई-मरणं वयंति ॥७॥

राग और द्वेष, ये दोनों कर्म के बीज हैं । कर्म, मोह से उत्पन्न होते हैं । कर्म ही जन्म मरण का मूल है और जन्म मरण ही दुःख है ॥७॥

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो-मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाहं ॥

जिसके मोह नहीं है उसके दुःख भी नष्ट हो जाते हैं ।
मोह का नाश करनेवाले के तृष्णा नहीं हाती । जिसने तृष्णा
का नाश कर दिया उसके सोम नहीं हाता और साम का
नाश कर देने पर भक्तिजन हो जाता है ॥८॥

रागं च दोषं च सहेव मोह, उद्धृष्टकामेषु समूलजात ।
जे जे उनाया पठिरत्तियम्मा, ते कित्तास्सामि अहायुपुत्ति ॥९॥

राग द्वय और मोह की जाल की बड़ से उखाड़ कर
केंकने की इच्छावालों का क्या उपाय करने चाहिए यह मैं
अमुष्म से कहता हूँ ॥९॥

रसा पगाम न निसेचियम्मा, पाय रसा दिचिक्का नरायण ।
दिच च कामा सममिद्वति, दुम अहा साउपत्ति व पक्खी ॥

रसों का अधिक माया में सवन नहीं करना चाहिए । क्योंकि
रस मनुष्यों में प्रायः दीप्ति उत्तेजना पैदा करते हैं । जिस
प्रकार स्वादिष्ट फलवाले बृक्ष को पक्षी चुली करते हैं उसी
प्रकार रसों के सेवन से पैदा हुई उत्तेजना और उत्पन्न हुआ
काम साधु को पराजित कर देता है ॥१०॥

अहा इवमी पउरिंपणे बणे, समारुप्पो नोवसम उप्पेइ ।
ण्णिदियग्गी बि पगाममोइस्सो, न भमयारिस्सु हियाय कस्सई ॥

जिस प्रकार बहुत इन्धनवाले वन में मगी तथा
वायु द्वारा प्ररित हुई दावाग्नि जाम्त नहीं होती उसी प्रकार

सरस आहार करनेवाले ब्रह्मचारी की इन्द्रियरूपी अग्नि शान्त नहीं होती ॥११॥

विविक्तसिञ्जासणजंतियाणं, ओमासणाणं दमिइंदियाणं ।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवोसहेहि ॥१२॥

जिस प्रकार उत्तम औषधियों से दूर हुई व्याधि, पुन उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार एकान्त सेवी, अल्पाहारी और इन्द्रियो का दमन करनेवाले को रागरूपी शत्रु नहीं जीत सकता ॥१२॥

जहा चिरालावसहस्स भूले, न मूसगाणं वसही पसत्था ।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्जे, न वंभयारिस्स खमो निवासो ॥

जिस प्रकार विलियों के स्थान के समीप चूहों का रहना अच्छा नहीं है, उसी प्रकार स्त्रियों के स्थान के समीप, ब्रह्मचारियों का रहना हितकर नहीं है ॥१३॥

न रूव-लावण-विलास-हासं, न जंपियं इंगिय पेहियं वा ।
इत्थीण चित्तंसि निवेमइत्ता, दड्ढुं ववस्से समणे तवस्सी ॥

तपस्वी श्रमण, स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, प्रिय-भाषण, सकेत और कटाक्षपूर्वक अवलोकन को अपने मन में स्थान नहीं दे, न वैसे अध्यवसाय ही लावे ॥१४॥

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचित्तणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थीजणस्सारियक्काणजुग्गं, हियं सया वभवण रयाणं ॥

ब्रह्मचर्य व्रत में ज्ञान और आर्य (धर्म) ध्यान के योग्य साधु स्त्रियों का दर्शन उनकी बातें सुनी कीर्तन और चिंतन नहीं करे, इसी में उनका हित है ॥१३॥

काम तु क्षीर्हि विभूमिर्वाहि, न चाद्रया स्तोमदृढ तिगुणा ।
तदा वि एगंतद्विय वि नशा, त्रिविचक्रासो मुनिषां पसत्यो ॥

मन बचन और काया से गुप्त रहनेवाले परम सयमी मुनि का सुन्दर देहमूया से युक्त देहविमर्श भी क्षीय नहीं कर सकती किन्तु उन्हें भी एकान्तवास ही परम हितकारी और प्रशस्त है ॥१४॥

मोक्षामिषस्त्रिस्त उ माद्वस्त, संसार मीरुस्त ठियस्म धम्मे ।
नेयारिषं दुष्परमत्थि स्रोप, बहिरिष्यो बालमणोहराभ्यो ॥

मोक्षामिषायी संसार से दूरनेवाले और धर्म में स्थिर रहने वाले पुरुषों को संसार में और कोई कठिन काम नहीं है जितना कठिन बाल बच्चों के मन को हरन करनेवालों स्त्रियों का त्याग करना है ॥१५॥

एय य संगे समश्कमिषा, सुदुत्तरा नेव गति सेसा ।
ब्रह्म महासागरमुत्तरिषा, नई मवे अबि गंगासमाश्वा ॥१६॥

जिस प्रकार महासागर को तिर जानेवाले के लिये गंगा नदी का तैरना मुगम है उसी प्रकार स्त्री संग के त्यागी महात्मा के लिये अन्य त्याग सरल हो जाते हैं ॥१६॥

कामाणुगिद्विप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ।
जं काइयं भाणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरगो ॥

स्वर्गादि समस्त लोक में जो भी मानसिक, वाचिक और कायिक दुःख हैं, वे सब काम भोगों की अभिलाषा से ही उत्पन्न हुए हैं । वीतराग पुरुष ही इन दुखों का अन्त करते हैं ।

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुञ्जमाणा ।
ते खुद्दए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे । २० ।

जिस प्रकार किंपाक वृक्ष के फल सुन्दर, मीठे और मन भावने होते हैं, पर उन्हें खाने से जीवन का नाश हो जाता है । वसी प्रकार काम भोगों का भी कटु परिणाम होता है ॥ २० ॥

जे इंदियाणां विसया मणुन्ना, न तेसु भावं निसिरे कयाई ।
न यामणुन्नेसु मणं पि कुञ्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी । २१ ।

समाधि चाहनेवाला तपस्वी, इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों में राग और अमनोज्ञ विषयों में द्वेष नहीं करे ॥ २१ ॥

चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउ अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरगो । २२ ।

आँखें, रूप को ग्रहण करती हैं, यदि रूप सुन्दर हो तो राग का कारण होता है और बुरा हो तो द्वेष का हेतु होता है । इन दोनों प्रकार के रूपों में जो समभाव रखते हैं, वे वीतराग हैं ॥ २१ ॥

रूवस्स चक्खु गहयां वयति, चक्खुस्स रूव गहणं वयति ।
रागस्स इठ ममणुअमाहु, दोमस्स हेठ अमणुअमाहु ॥२३॥

रूप का ग्रहण करनेवासी चक्षु इन्द्रिय है और रूप चक्षु इन्द्रिय का ग्रहण हमें योग्य है । प्रिय रूप राग का और अप्रिय रूप द्वेष का कारण है ॥२३॥

रूवेसु सो गिदिसुवेइ तिप्प, अकालिय पावइ सो विण्णसं ।
रागाउर स जइ वा पयग, आलोपलोले समुवेइ मक्खु ॥२४॥

जिस प्रकार दृष्टि के राग में आतुर होकर पतंगा मत्स्य पाता है उसी प्रकार रूप में अत्यन्त आसक्त होकर जब अकाल में ही मत्स्य पाले है ॥२४॥

जे यापि दोसं समुवेइ तिप्प, ठसि वुत्थवे पे उ उवेइ दुक्ख ।
दुईवदोसण सण्ण जत्तु, न किञ्चि रूव अशरउम्हई से ॥२५॥

जो जीव अवशिकर रूप देखकर सवेब द्वेष करता है वह उसी क्षण में दुःख का अनुभव करता है । वह अपने ही वाद से दुःखी होता है । इसमें रूप का कोई दोष नहीं है ॥२५॥

एगंतरप्पे खरंसि रूवे, अतात्तिसे से इम्हई पओसं ।
दुक्खस्स संपील्लमुवेइ पाव्हे, न तिप्पइ वेख मुणी विरागो ।

जो जीव मनोहर रूप में एकान्त राग करता है और अवशिकर रूप में द्वेष करता है वह अज्ञानी दुःख समूह को प्राप्त करता है किन्तु आतरामी मुनि राग द्वेष में लिप्त नहीं होता । इससे वह दुःखी भी नहीं होता ॥२६॥

रूपाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ खेगरूवे ।
चित्तेहिं ते परियावेइ बाले, पीलेइ अत्तइ गुरु किलिङ्गे ॥

रूप की आशा के वश पडा हुआ गृहकर्मी अज्ञानी जीव, उस और स्थावर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, परिताप उत्पन्न करता है तथा पीड़ित करता है ॥२७॥

रूपाणुवाए ण परिगहेण, उप्पायणे रक्खणमन्निओगे ।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्थलाभे ॥

रूप में मूढित जीव, उन पदार्थों के उत्पादन, रक्षण एवं व्यय में और वियोग की चिन्ता में लगा रहता है । उसे सुख कहा है ? वह संभोग काल में अतृप्त ही रहता है ॥२८॥

रूवे अतित्ते अ परिगहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥२९॥

मनोज्ञ रूप के ग्रहण में गूढ़ जीव, अतृप्त ही रहता है । उसकी आमक्ति बढ़ती ही जाती है । फिर वह दूसरे की सुन्दर वस्तु का लोभी होकर अदत्त ग्रहण करता है ॥२९॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रूवे अतित्तस्स परिगहे य ।
मायामुमं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थाऽवि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णा के वश हुआ जीव, चोरी करता है और झूठ तथा कपट की वृद्धि करता हुआ अतृप्त ही रहता है । फिर भी वह तत्त्व से झटकारा नहीं पाता ॥३०॥

मोक्षस्य पञ्चा य पुरतश्चो य, पञ्चोग्रहो य दुर्हि दुरं
एव अदत्ताणि समाययतो, रूप अतितो दुर्हिओ अणिस्मं

बहु दुष्ट जीव भूत मोक्षने के पहले पीछे और :
बासते समय कुम्हो होता है । अदत्त ग्रहण करते हुए भी बहु
में अतप्त और असहाय होकर सर्वत्र दुःखी ही रहता है ॥१॥

रूपाणुरक्षस्त नरस्त एव, कृत्तो सुह होम कयाद् किञ्चि
तरयोपमोग वि क्लिप्तसदुक्त, निम्नार्थ अस्त कयण दुःख

रूप में प्राप्त कृत मनुष्य को पादा भी कुछ नहीं हो
जिस वस्तु की प्राप्ति में उसने दुःख उठाया उसके उपभोग
समय भी बहु दुःख पाता है ॥१२॥

एमेव रूपम्भि गम्भो पम्भोर्त्त, उवेद् दुःखोद् परंपराओ
पदुद्दिष्टो य चिदाई कर्म, स से पुणो होद् दुर्हि विनागे

इसी प्रकार धमनात्र रूप में रूप करनेवाला पीछे
कुम्हों की परम्परा बढ़ा लेता है और दुष्ट वित्त से कर्मों
संपादन कर लेता है । बहु कर्म भोगते समय दुःख उठाता है ।

रूपे विरचो मण्डुओ विसोमो, एण्य दुःखोद् परंपरेण ।
न लिप्यद् मयमन्त्रे वि संयो, असेण वा पुक्खरिखीपत्तासं

रूप से विरक्त हुआ मनुष्य खोद रहित हो जाता ।
जिस प्रकार जल में रहते हुए भी कमल का पत्ता सिप्य न
होता, उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी वह विरक्त हुए
कुम्ह समूह से सिप्य नहीं होता ॥१४॥

सोयस्स सद्दं गहणां वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरगो ॥

शब्द, कान का विषय है । मनोज्ञ शब्द राग और अमनोज्ञ द्वेष का कारण है । जो दोनों प्रकार के शब्दों में समभाव रखता है, वही वीतरागी है ॥३५॥

सद्दस्स सोयं गहणां वयंति, सोयस्स सद्दं गहणां वयंति ।
रागस्स हेउं ममणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ।३६॥

श्रोतृन्द्रिय शब्द का ग्राहक और शब्द श्रोत का ग्राह्य है । प्रिय शब्द राग का और अप्रिय शब्द द्वेष का कारण है ।

सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिब्बं, अकालियं पावइ स विणासं ।
रागाउरे हरिणमिह व्व मुद्धे, सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं ॥

जिस प्रकार शब्द के राग में मृदु तथा मुग्ध बना हुआ मृग सतोषित न होता हुआ मृत्यु पा लेता है, उसी प्रकार शब्दों के विषय में अत्यन्त मूर्छित होने वाला जीव, अकाल में ही नष्ट हो जाता है ॥३७॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिब्बं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्धंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि सद्दं अवरज्जई से ।३८॥

जो अप्रिय शब्द सुनकर तीव्र द्वेष करता है, वह अपने ही किये हुए भयङ्कर दोष से उसी समय दुःख पाता है, किन्तु शब्द किसी को दुःखित नहीं करते ॥३८॥

एगंतरचे छरसि सरे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुखस्स संपीलसुवेइ बाले, न लिप्पई तेस सुणी विरागो ॥

जो प्रजामी जीव मनाहर सब में एकान्त अनुरक्त होता है और प्रिय सब में इय करता है वह दुःख को प्राप्त होता है । किन्तु मोक्षरामी यदि उसमें निप्त नहीं होते । सदाष्टुगांसापुणए य जीवे, जगसरे ईसई जंगरूवे । पितेहिं ते परिपावेइ बाले, पीलेइ अचहु गुरु किलिठे ॥४०॥

सब की भासा क बल हुआ मारोकर्मी जीव प्रजामी होकर सब और स्वावर जीवों की समेक प्रकार से हिंसा करता है । परिताप उत्पन्न करता है और पीड़ा देता है ॥४०॥

सदाष्टुभाएख परिमाइण, उप्पायणे रक्खससभिओगे ।
अण विओगे य कह सुइ से, संमोगकास्ते य अतिघलामे ॥

सब में मुक्ति हुआ जीव मनाहर सबको पदार्थों की प्राप्ति रक्षण एवं व्यय में तथा वियोग की चिंता में लगा रहता है वह सभागकाल में भी अतृप्त ही रहता है फिर उसे सुख कहा है ? ॥४१॥

सरे अतिसे य परिगाइम्मि, सओदसओ न ठवेइ तुट्ठि ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविसे आययई अदर्श ॥४२॥

प्रिय सब के ग्रहण में कुछ भी अतृप्त ही रहता है । उसकी मूर्च्छा बढ़ती जाती है । वह दूसरों की वस्तु पर लसता कर चाली करमें लग जाता है ॥४२॥

तएहामिभूयस्म अदत्तहारिणो, सदे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढं लोभदोमा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णा के वश पडा हुआ वह जीव, चोरी करता है
तथा झूठ और कपट को वृद्धि करता हुआ अतृप्त ही 'रहता'
है, किन्तु दुःख से नहीं छूट सकता ॥४३॥

भोसस्स पंच्छा य पुग्गथओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, सदे अतिचो दुहिओ अणिस्सो ॥

वह झूठ बोलने के पहलू, और पीछे तथा झूठ बोलते
समय दुःख होता है । अदत्त ग्रहण करते हुए भी वह शब्द
में सतोष नहीं पाता तथा सदैव दुःखी रहता है । उसका कोई
सहायक नहीं हाता ॥४४॥

सदाणुत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं दुज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेमदुक्खं, निव्वत्तए जस्स कए ण दुक्खं ॥

शब्द में गृद्ध मनुष्य को कुछ भी सुख नहीं मिलता ।
वह मनोहर शब्द के स्वभोग के समय भी दुःख और क्लेश ही
उत्पन्न करता है ॥४५॥

एमेव सदम्मि गओ पओसं, उवेह दुक्खोह परंपराओ ।
पउट्टचित्तो य चिण्ह कम्मं, जंसे पुणो होइ दुहं विवागे ॥

इसी तरह अप्रिय शब्द में द्वेष करनेवाला जीव भी
दुःख परम्परा बढ़ाता है और दुष्ट चित्त से कर्मों का उपाजन
कर लेता है, जो भोगते समय दुःख दायक होते हैं ॥४६॥

सदे विरक्तो मणुष्यो विसौगो, एष्य दुःखोऽप्यपरिणेत्य ।
न लिप्स्यै भवमन्मे वि सतो, ज्ञेयं वा पुनस्तुतिपलासं ॥

सह से विरक्त हुआ मनुष्य शोक रहित होता है ।
जिस प्रकार धन में रक्ता हुआ कमल का पत्ता मलिन रहता
है उसी प्रकार ससार में रहते हुए भी विरक्त पुरुष मोक्षोन्मुख
के विषय और उससे होनेवाले दुःखों से निमित्त रहता है ॥४७॥

धातुस्त गंधं गहणं वयति, तं रागेहेतुं समशुभमाहु ।
त दोसहेतुं अमशुभमाहु, समो य ओ तेसु स वीयरगो ॥४८॥

गन्ध धान का विषय है सुगन्ध राम और दुर्गन्ध द्वय
का कारण है । जो बीज बीजों प्रकार के गन्ध में समभाव
रहता है वही बीतरागी है ॥४८॥

गंधस्त धानं गहणं वयति, धातुस्त गंधं गहणं वयति ।
रागस्त हेतुं समशुभमाहु, दोषस्त हेतुं अमशुभमाहु ॥४९॥

गन्ध को नासिका ग्रहण करती है और गन्ध नासिका
का ग्रहण है । सुगन्ध राम का कारण है और दुर्गन्ध द्वय का
कारण है ॥४९॥

गंधस्त जो निद्रिगुर्वेद रिम्भं, अकालिय पात्र से विज्ञासं ।
रागादरे ओसहिर्मगिदे, सर्वे विलाभो विव निवृत्तमंतो ॥

जिस प्रकार धीनधि की सुगन्ध में मूर्च्छित हुआ सर्प
बान्सी से बाहर निकल कर मारा जाता है उसी प्रकार गन्ध
में भरपूर आसक्त बीज प्रकार में ही मरु पा जाता है ॥५०॥

जे यावि दोसं मसुवेइ तिब्बं, तंसि कखणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुदंतदोसेण सएण जंतू, न किचि गंधं अवरज्ज्झई से ॥५१॥

जो दुर्गन्ध से तीव्र द्वेष करता है, वह उसी समय दुःख का अनुभव करता है और अपने ही द्वेष से दुःखित होता है। इसमें गंध का कोई दोष नहीं ॥५१॥

एगंतरत्ते रुडरंसि गंधे, अतालसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ वाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥५२॥

जो अजानी, सुगन्ध में सर्वथा आसक्त हो जाता है और दुर्गन्ध से बृणा करता है, वह दुःख पाता है, किन्तु वीतरागी मुनि लिप्त नहीं होता ॥५२॥

गंधाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ गेगरूवे ।
चित्तेहिं ते परितावेइ वाले, पीलेइ अत्तट्टगुरु किलिङ्गे ॥५३॥

सुगन्ध के बशीभूत होकर वाल जीव, अनेक प्रकार से प्रस और स्थावर जीवों की घात करता है, उन्हें दुःख देता है। गंधाणुवाएण परिगहेण, उप्पायसे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कइं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥

सुगन्ध में आसक्त हुआ जीव, सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण, व्यय तथा वियोग की चिन्ता में ही लगा रहता है। वह संभोगकाल में भी अनृप्त रहता है। फिर उसे सुख कहा ? ॥५४॥

गंधे अतिथ य परिग्माहम्मि, सधोमसत्तो न उवइ तुहिं ।
अतुद्धिदोसेय दुही परम्म, लोमाविजे आययई अदत्त ॥५५॥

सुगन्ध के ग्रहण में आज्ञा अनुष्ठान रहता है । उसकी
तृष्णा बढ़ती है । वह कुमरों की वस्तु पर मलपाकर भक्ष
ग्रहण करता है ॥५५॥

तण्हामिभूयस्स अदत्तहारिभो, गंधे अतिथस्स परिग्माह य ।
मायासुसं बहुइ लोमदोमा, तत्थावि दुक्खा न पिमुचई स ॥

तृष्णा से दवा हुआ जीव चारी करता है और मूठ
तथा कपट को पकड़ा बड़ाता हुआ जो अक्षुण्ण ही रहता है ।
बहु कष्टों से मुक्त नहीं हो सकता ॥५६॥

मोमस्स पण्णा य पुरत्थमो य, पओगकाल य दुही वुरंत ।
एव अदत्तायि समाययंतो, गंधे अतिथो दुद्धियो अणिस्सो ॥

बहु मूठ बोलन के पक्षम और पीछे तथा मूठ बालते
समय दुःखा हाता है । भक्ष ग्रहण करते हुए भी वह भग्न में
सन्तोष नहीं पाता हुआ सदा दुःखी ही रहता है ॥५७॥

गंधाणुरत्तस्स नरस्स ण्वं, कत्तो सुइ होअ कपाइ किंथि
तत्थोवमोगे वि फिल्लसुद्धस्स, निम्भचई जस्स कण्ण दुक्ख ॥

गन्ध में आसक्त हुए जीव को कुछ भी मूल्य नहीं होता । वह
मुग्ध के जपमोग के समय भी दुःख एवं कष्ट ही पाता है ।

णमेव गंधम्मि गओ पओसं, ठवइ दुक्खोइपरंपराओ ।
पडुह्मिचो य चिणाइ कम्म, ज स पुणो होइ दुइ विवागे ॥

इसी प्रकार दुर्गन्ध में द्वेष करनेवाला जीव भी दुःख परम्परा बढ़ाता है और दुष्टता से कर्मों का उपार्जन कर लेता है, जो भोगते समय दुःखदायक हातें हैं ॥१६॥

गंधे विरक्तो मणुओ विसोगो, एण्ण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि संतो, जलेख वा पोक्खरिणीपलासं ॥

गन्ध से विरक्त मनुष्य, शाक रहित होता है । जिस प्रकार कमल पत्र, जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार ससार में रहते हुए भी विरक्त पुरुष, घ्राण के विषय और उसके परिणाम में अलिप्त ही रहता है ॥१७॥

जिब्भाए रसं ग्रहणं वयंति, त रागहेउं तु मणुब्बमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुब्बमाहु, समो य जो तेसु स धीयरगो ॥

जीभ, रस को ग्रहण करती है । प्रिय रस, राग का कारण है और अप्रिय रस, द्वेष का हेतु है किंतु जो दोनों प्रकार के रसों में समभाव रखता है, वह धीतराग है ॥१८॥

रसस्म जिब्भं ग्रहणं वयंति, जिब्भाए रसं ग्रहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुब्बमाहु, दोसस्स हेउं अमणुब्बमाहु ॥१९॥

रस को जीभ ग्रहण करती है और रस, जीभ का ग्राह्य है । मनपसन्द रस, राग का कारण है । और मन के प्रतिकूल रस, द्वेष का कारण कहा गया है ॥२०॥

रसेस, जो गिद्विमुवेइ तिम्ब, अकालिय पावइ से विद्यासं ।
रागाठरे बहिस विभिन्नकाय, मध्ये छद्वा आमिसमोग गिद्व ॥

जिस प्रकार मोस लाने क लामस में फँसा हुआ मच्छ,
काँटे में फँस कर मारा जाता है उसी प्रकार रसों में धर्यन्त
गद्व जीव अकाल म मरय का घास बग जाता है ॥६३॥

जे यावि दोस समुवेइ तिम्ब, रुसि बखखे से उ उये दुखख ।
दुखदोसेय सणख वतु, न किंचि रस अवरज्मई से ॥६४॥

रस किसी का दुखो नहीं करते किन्तु जीव स्वयं
अमनाज रसों में डूब करक धपने हो किन्तु हुए अमकर डूब
से दुखी होता है ॥६४॥

एगंतरये रुदरे रसम्मि, अताजिसे स दुखइ पम्भोसं ।
दुखखस्स संपिछमुवेइ बाले न लिप्पई तेय सुणी बिरागो ॥

मनाज रस में धर्यन्त घासवत और अमनाज रस में
एकान्त छेपी बत हुआ बाल जीव दुख से धर्यन्त पीड़ित
होता है । जो बीतराग मनि है न विषयों और दुःखा से धलिप्य
ही रहते है ॥६५॥

रमाणुगासाणुगण य जीवे, चराचर हिंसइ खेगख्ये ।
चित्ताहि से परितावइ बाहे, पीलइ अण्डगुठ किलिहे ॥६६॥

रसा के लामस में डूबा हुआ पजानी जाव अनेक
प्रकार से बस और स्थावक जायों की भात करता है । उन्हें
कई प्रकार से पीटा पहुँचाता है ॥६६॥

रसाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
 वए विओगे य कंहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलामे ॥

रस में आसक्त हुआ अज्ञानी जीव, रसों की प्राप्ति, रक्षण, व्यय तथा नाश की चिन्ता में ही लगा रहता है । वह संभोग काल में भी अतृप्त रहता है । ऐसी दशा में उसे सुख कहाँ से मिले ? ॥६७॥

रसे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
 अतुट्ठिदोसेण दुही परस्म, लोभाविले आययई अदत्त ॥६८॥

रसों से अतृप्त और उनके सचय में असंतुष्ट रहा हुआ लोभी जीव, दूसरों की वस्तु बिना दिये ही ले लेता है ॥६८॥

तण्हामिभूयस्स अदत्तहारिणो, रसे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
 मायामुसं वहुइ लोभदोमा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

अति तृष्णा से घिरा हुआ जीव, चोरी करता है तथा झूठ और कपट की परम्परा बढ़ाता है । फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं होता और दुःख में ही फँसा रहता है ॥६९॥

भोसस्म पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ।
 एवं अदत्ताणि समाययंतो, रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

झूठ बोलने से पहिले, पोंछे और झूठ बोलते समय वह दुःखी होता है । अदत्त लेते हुए भी वह रसों में अतृप्त ही रहता है और नि सहाय होकर दुःख भागता है ॥७०॥

रसेम, जो गिद्धिमुषेइ तिन्ह, अकालियं पावइ स बिशासं ।
रागाठरे षडिस बिभिन्नकाए, मण्ड्ये जहा आमिममोग गिद्ध ॥

जिस प्रकार मांस खाने के लालच में फँसा हुआ मच्छ
काँट में फँस कर मारा जाता है उसी प्रकार रसा में धरयन्त
गए जीव अकाल में मरगु का घास बन जाता है ॥६३॥

जे यावि दोसं समुवइ तिन्ह, एसि कसखे से ठ ठवेइ दुखस ।
दुखसदोसेस सएण जत्, न किंचि रसं अवरज्जई स ॥६४॥

रस किसी को दुखी नहीं करते किन्तु जीव स्वयं
अमनोस रसों में डूब करके अपने ही किये हुए अमकर रूप
से दुखी होता है ॥६४॥

एगंतरवे रुदरे रमम्मि, अतालिसे से दुखई पओसं ।
दुखसस संपिछमुषेइ बाले, न लिप्पई तेस मुली विरागो ॥

मनास रस में धरयन्त घासस्त और अमनास रस में
एकान्त डूबी बना हुआ बास जीव दुःख से धरयन्त पीड़ित
होता है । जो जोतराग माने है वे विषयों और दुःख से प्रलप्य
हो रहते हैं ॥६५॥

रमाणुगासाणुगण य जीव, अराचर हिमइ खेगस्से ।
चिचदि तं परितावइ बाले, पीसइ अचङ्गुरु किलिहे ॥६६॥

रसा के लालच में डूबा हुआ अज्ञानी जीव अनेक
प्रकार से अस और स्वादर आवा की चाल करता है । उन्हें
कई प्रकार से पीडा पहुँचाता है ॥६६॥

फासस्स कायं गहणं वयंति, कायस्स फासं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥७५॥

शरीर, स्पर्श को ग्रहण करता है और स्पर्श, शरीर का ग्राह्य है । सुखद स्पर्श, राग का तथा दुःखद स्पर्श, द्वेष का कारण है ॥७५॥

फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणामं ।
रागाउरे सीयजलावसन्ने, गाहग्गहीए महिसे वरणे ॥७६॥

जो जीव, सुखद स्पर्शों में अति आसक्त होता है, वह जंगल के तालाब के ठंडे पानी में पड़े हुए और मगर द्वारा ग्रसे हुए भैंसे की तरह अकाल में ही मृत्यु पाता है ॥७६॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंति वखणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुइतदोसेण सएण जंतू, न किंचि फासं अवरज्झई से ॥७७॥

स्पर्श किसी को दुःखी नहीं करते, किन्तु जो असुव्वावने स्पर्श से तांत्र द्वेष करता है, वह अपने ही किये हुए, भयकर अपराधों से उसी समय दुःख पाता है ॥७७॥

एगंतरत्ते रुद्धंति फासे, अताल्लिसे से कुणइ पओसं ।

दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

जा अज्ञानी, सुखद स्पर्श में एकान्त आसक्त हो जाता है और दुःखद स्पर्श से द्वेष करता है, वह दुःख को प्राप्त होता है, किन्तु वीतरागी पुरुष तो अलिप्त ही रहते है ॥७८॥

रसाणुरत्तस्म नरस्म एव, कस्यो मुह होम कयाइ किंचि ? ।
तन्मोषमोगे वि किल्लेसदुक्ख, निम्बत्तण जम्म कण स दुक्ख ॥

रमा मे घातक जीव का कुछ भी मुक्त नहीं होता ।
वह रसमाग के ममय भी दुःख और वसिदा ही पाता है ॥७१॥

पमम रमम्मि गमो पमोसं, उवइ दुक्खोइपरंपरामो ।
पदुइचिचो य पिणइ कम्म, ज स पुणो होइ दुइ विवाग ॥

इमो प्रकार पममोस रमो में पुप करनबासा जीव भी
दुःख परम्परा बढ़ाता है पार वसुपित मन न कर्मों का उपार्जन
करके उनके दुःखद कर्म का भागता है ॥७२॥

रसे विरत्तो मणुमो विसोमो, पण्ण दुक्खोइपरंपरण ।
न लिणइ भयमग्गे वि संतो, जलस का पुक्खरिणीपत्तासं ॥

रमा में विरक्त मनुष्य शाक रहित हो जाता है ।
जिस प्रकार कमल पत्र जल में रहते हुए भी मिष्ट नहीं होता
उसा प्रकार ममार में रहते हुए भी विरामी पुरुष रमनमित्र
के विषय और उमर कटु विषाद में घमिष्ट रहता है ॥७३॥

कायस्य फार्म गहणी वपति, त गगइउ सु मणुन्नमाहु ।
त दोमइउ भयणुममाहु, समो य ओ तमुम बीयरामो ॥७४॥

तरीर गार्म का ग्रहण करना है । मुग्ध हवा राग का
घोर दुःख गमय प्रप का कारण है । जो दागों प्रकार के रागों
में सममाव रमने है वे बागराग है ॥७४॥

मोसस्त पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

ऐसे दुष्ट जीव को झूठ बोलने के पूर्व, पश्चात् और झूठ बोलते समय कष्ट होता है । वह चोरी करते हुए भी सदा अतृप्त एवं असहाय होकर दुखी ही रहता है ॥८३॥

फासाणुरत्तस्म नग्गस्म एवं, कत्तो सुहं होअ कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

स्पर्श में आसक्त जीवों को किंचित् भी सुख नहीं होता । जिस वस्तु की प्राप्ति क्लेश एवं दुःख से हुई, उसके भोग के समय भी कष्ट ही मिलता है ॥८४॥

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ।
पदुद्धचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

दुःखद स्पर्श में द्वेष करनेवाला भी इसी प्रकार दुःख की परम्परा बढ़ाता है और मलिन भावना से कर्मों का उपा-
जंन करता है, जो भोगते समय कष्ट दायक होते हैं ॥८५॥

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि संदो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

स्पर्श से विरक्त मनुष्य, शोक से रहित हो जाता है । जिस प्रकार जल में रहते हुए भी कमलपत्र अलिप्त है, उसी प्रकार ससार में रहते हुए भी विरक्त पुरुष अलिप्त रहता है ।

फामाणुगामाणुगए य जीवे, चामरे हिमः तेगरुवे ।
चिचहि तं परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तठुगुरु किलिहे । ७६।

स्पष्टा की धाया में पड़ा हुआ गुरुकर्मों जाव चराचर
जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है उन्हें दुःख देता है ।
फामाणुवाएण परिग्गहेस, उप्पायखे रक्खणसुभिओगे ।
ए विओगे य कइं सुह सं, संमोगक्खले य अतिचलामे ॥

मुझव स्पर्शों में मूर्च्छित हुआ प्राणी उस वस्तुओं की
प्राप्ति रक्षण व्यव एवं ब्रिषाय की चिन्ता में ही ब्रूसा करता
है । भोग के समय भी वह तृप्त नहीं होता फिर उसके मिय
सुख कहाँ ? ॥८॥

फासे अतिच य परिग्गहम्मि, सत्तोपसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोमाबिले आययई अदत्त । ८१।

मुझव स्पर्शों में धनरक्त जीव कभी तृप्त नहीं होता ।
उसकी मूर्च्छा बढ़ती ही रहती है । वह अत्यन्त लोभी होकर
अदत्त ग्रहण करने लग जाता है ॥८१॥

उपहामिभूयस्स अदत्तहारिणो, फासे अतिचस्स परिग्गहे य ।
मायासुत्तं धहुइ लोमदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुचई से ॥

जीव तृप्ता वे बरा होकर चोरी करता हुआ माया-
मया को बढ़ाता रहता है फिर भी उसे तृप्ति नहीं होती ।
वह दुःख से नहीं छूट सकता ॥८२॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पथोगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

ऐसे दुष्ट जीव को झूठ बोलने के पूर्व, पश्चात् और झूठ बोलते समय कष्ट होता है । वह चोरी करते हुए भी सदा अतृप्त एवं असहाय होकर दुखी हो रहता है ॥८३॥

फासाणुरत्तस्म नग्गस्म एवं, कत्तो सुहं होअ कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

स्पर्श में आसक्त जीवों को किंचित् भी सुख नहीं होता । जिस वस्तु की प्राप्ति क्लेश एवं दुःख से हुई, उसके भोग के समय भी कष्ट ही मिलता है ॥८४॥

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोइ परंपराओ ।
पडुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

दुःखद स्पर्श में द्वेष करनेवाला भी इसी प्रकार दुःख की परम्परा बढ़ाता है और मलिन भावना से कर्मों का उपा-
जैन करता है, जो भोगते समय कष्ट दायक होते हैं ॥८५॥

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोइ परंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्जे वि संतो, जल्लेण वा पोक्खरिणीपत्तासं ॥

स्पर्श से विरक्त मनुष्य, शोक से रहित हो जाता है । जिस प्रकार जल में रहते हुए भी कमलपत्र अलिप्त है, उसी प्रकार ससार में रहते हुए भी विरक्त पुरुष अलिप्त रहता है ।

मणस्स भाव गहणं वयति, स रागहेतु तु मणुजमाहु ।
त दोसहेतु अमणुजमाहु, समो य ओ वेसु स वीयरगो ॥

भाव को मन ग्रहण करता है ममाग भाव राग का कारण है और अमनास भाव द्वेष का कारण है । जो समभाव रखता है वही बीतराग है ॥८७॥

भावस्स मणं गहणं वयंति, मणस्स भाव गहणं वयति ।
रागस्स हेतु समणुजमाहु दोसस्स हेतु अमणुजमाहु ॥८८॥

मन भाव का ग्रहण करता है और भाव मन का प्राण है । मनोस भाव राग के और अमनोस द्वेष के कारण है ।

भावेसु ओ गिद्विमुवेइ तिम्भ, अकालिय पावइ स विजास ।
रागाउरे कमणुषेसु गिद्व, करेणुममावहिइ व नगे ॥८९॥

बिना प्रकार रागातुर और काम में गूढ़ हाथी हथिनी को देखकर मार्ग पृष्ठ हाकर दिनष्ट हो जाता है उसी प्रकार जो मनुष्य अगम्य राग भाव रखता है वह अज्ञान में हो मृत्यु प्राप्त कर लेता है ॥८९॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिम्भ, तसि कखे से उ उवेइ दुक्ख ।
दुरंतदोसेय सरख अत्त, न किंभि भाव अवरज्झइ से ॥९०॥

जो महानिकर भावों में डींग द्वेष करता है वह अपने जीव के किय हुए मयकर दोषों से उसी समय दुखी होता है किंतु भाव का निमित्त किसी का दुखी नहीं करता ॥९०॥

एगंतरत्ते सडरंसि भावे, अत्तालिसे से कृणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ चाले, न लिप्पई तेण सुखी विरागो ॥

जा अज्ञानी प्राणी, प्रिय भावों में एकान्त राग करते हैं
और अप्रिय भावों में द्वेष करते हैं, वे कष्ट उठाते हैं, किन्तु
वीतरागी मुनि तो अलिप्त हो रहते हैं ॥६१॥

भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिमइ ऽणोगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ चाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिठ्ठे ॥६२॥

मनोहर भावों के आधीन हुआ भारीकर्मों जीव,
चराचर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, उन्हें दुःख
और क्लेश उत्पन्न करता है ॥६२॥

भावाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कइं सुइं से, संभोगकाले य अतित्ताभे ॥

मनोज्ञ भाव वाली वस्तुओं में आसक्त जीव, उनकी
प्राप्ति रक्षण, व्यय और विनाश की चिन्ता में ही लगा रहता
है, वह सम्भोग के समय भी अतृप्त रहता है, फिर उसे सुख
कहा से मिले ? ॥६३॥

भावे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥६४॥

भावों में अनुरक्त जीव, अतृप्त रहता है, उसकी
आसक्ति बढ़ती रहती है, वह अत्यन्त लोभी होकर अदत्त ग्रहण
करता है ॥६४॥

तपहामिभूपस्त अदक्षारिभ्यो, मावे अतिष्ठस्त परिगृहे य ।
मायासुसं बहुइ सोमदोसा, तस्यावि दुक्खा न विमुचइ से ॥

तृष्णा के अधीन हुआ जीव चारी करता है । वह
माया मृपाबाध का सेवन करता ही रहता है । इतना होते हुए
भी उसकी तृप्ति नहीं होती न वह कष्ट से मुक्त ही होता है ।

मोसस्त पण्णा य पुरत्थमो य, पम्मोग काले य दुही दुरंसे ।
एव अदक्षाणि समापयतो, मावे अतिष्ठो दुहिमो अविस्सो ॥

वह दुष्ट प्राणी झूठ बोसने के पूर्व पश्चात् और झूठ
बोसते समय भी दुःख पाता है । चारी करते हुए भी सदा
अवृत्त एवं असहाय हुआ दुःखी रहता है ॥२१॥

मावापुरत्तस्स नरस्स एव, कत्तो सुइ होअ कपाइ किंवि ।
तत्थोवमोगे वि किंमेसुइत्त, निम्भत्तइ अस्स कएअ दुक्ख ॥

मनाहर भावों में मृत मनुष्य को कुछ भी सुख नहीं
मिलता । जिस वस्तु की प्राप्ति में उसने दुःख पाया उसके
सपनाय के समय भी वह दुःख ही पाता है ॥२७॥

एमेव मावम्मि गमो पम्मोसं, उवेइ दुक्खोइ परंपराओ ।
पदुइ विचो य विवाइ कम्मं, अ से पुओ होइ दुइ विवागे ॥

अमनोज्ञ भावों में डूब करने वाला भी इसी प्रकार
दुःख परम्परा बढाता है और कलुषित हृदय से कर्मों का
उपार्जन करता है जो भोगते समय दुःखदायी होते हैं ॥२८॥

भावे विरक्तो मणुष्यो विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ।
ण लिप्पड भवमज्जे त्रि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

भावो से विरक्त जीव, शोक रहित हो जाता है । वह
जल में अलिप्त रहे हुए कमल पत्र की तरह, ससार में रहते
हुए भी लिप्त नहीं होता ॥६६॥

एवंदियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेऊं मणुयस्स रागिणो
ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं, न वीयरगस्स करेंति किंचि ॥

इन्द्रियो और मन के विषय, रागी पुरुषों के लिए ही
दुःख के कारण होते हैं । ये विषय, वीतरागियों को कुछ भी
दुःख नहीं दे सकते ॥१००॥

न कामभोगा समयं उवेंति, न यावि भोगा विगदं उवेंति ।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगदं उवेइ ॥

काम भोग किसी को भी सतोषित नहीं कर सकते, न
किसी में विकार ही पैदा कर सकते हैं, किन्तु जो विषयो में
राग द्वेष करता है, वही राग द्वेष से विकृत हो जाता है ॥१०१॥

कोहं च माणां च तहेव मायं, लोहं दुगुच्छं अरदं रदं च ।
हासं भयं सोग पुमित्थिवेयं, नपुंसवेयं विविहे य भावे । १०२।
आवज्झई एवमणेगरूवे, एवंविहे कामगुणेसु सत्तो ।
अन्ने य एयप्पभावे विसेसे, कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥

काम गुणों में आसक्त जीव, क्रोध, मान, माया, लोभ,

पूणा राग द्वेष हास्य भय चोक पुरुषवेद स्त्रीवेद और
नपुंसकवेद तथा अनेक प्रकार के मात और अनेक प्रकार के
स्पर्शों को प्राप्त होता है और परिणाम स्वल्प भयकादि दुःखों
का भुगतता है तथा विषयासक्ति से अत्यन्त दान सज्जित
कल्याणमक स्थितिवाला होकर अण्ड का पात्र बन जाता है ।

कप्प न इच्छिन्न सहायस्तिच्छू, पञ्चाणुताबेय उरप्पमावं ।
एव विपारे अमियप्पयारे, आरुत्तई इदियघोरवस्से ॥१०४॥

अपनी सेवा के लिए योग्य सहायक की भी इच्छा नहीं
करे । बीसा देने के बाद पछतावे नहीं तप के प्रमाण की
इच्छा नहीं करे । जो इनके विपरीत व्यवहृत करता है वह
इन्द्रियरूपी आरों के बन्ध होकर अनेक प्रकार के विकारों
को प्राप्त होता है ॥१४

तथो से आयति पभोयत्ताई, निमज्जितं मोहमहयत्तपम्मि ।
सुहेसिन्धो दुक्खविमोपसङ्गा, तप्पन्नं उत्तमण य रागी ॥

फिर उसे विषयादि सेवन करने की लालसा उत्पन्न
होती है और वह मोह सागर में डूब जाता है तथा सुख की
इच्छा और दुःख से बर्णित होने के लिए विषयादि की प्राप्ति
में ही उत्तम करता है ॥१५॥

विरज्जमायस्स य इदियत्ता, सहाइया तावइयप्पगारा ।
न तस्स सम्मे वि मणुभयं वा, निम्बत्तयति अमणुभयं वा ॥

इन्द्रियो के शब्दादि मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञा विषय, विरागी मनुष्य के मन में राग द्वेष उत्पन्न नहीं कर सकते ।

एवं ससंकल्पविकल्पणामुं, संजायई समयमुवद्वियस्स ।
अत्थे य संकल्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तएहा ॥

राग द्वेष और मोह के अध्यवसाय दोष रूप हैं । इस प्रकार की भावना में सावधान हुए सयती का माध्यस्थ भाव की प्राप्ति होती है । वह विषयो में शुभ विचार करके तृष्णा को नष्ट कर देता है ॥१०७॥

स वीयरगो कयसव्वकिच्चो, खवेइ नाणावरणं खणेयां ।
तहेव जं दंसणमावरेइ, जं चंतरायं पकरेइ कम्मं ॥१०८॥

वे वीतरागी, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अन्त-
राय कर्म का क्षय करके कृतकृत्य हो जाते हैं ॥१०८॥

सव्वं तओ जाणइ पासई य, अमोहणे होइ निरंतराए ।
अणासवे भाणसमाहिजुत्ते, आउक्खए भोक्खमुवेइ सुद्धे ॥

वे मोह, अन्तर्गाय और आसक्तो से रहित वीतराग, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाते हैं । वे शुक्लध्यान तथा सुसमाधि सहित होते हैं और आयुष्य के क्षय होने पर परम शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥१०९॥

सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को, जं बाहई सययं जंतुमेयं ।
दीशमयं विप्पमुक्को पमत्थो, तो होइ अचंचतसुही कयत्थो ॥

फिर वह मक्तात्मा समस्त रागों एवं दुःखों से—जो ससारी जीव का महा पीड़ित करता रहते हैं—सबका मक्त होकर कृतकृत्य हो जाती है और प्रशंसनीय होकर सदा के लिए परम सुखी हो जाती है ॥११०॥

अथाऽकाञ्चप्यमवस्तु एसो, सम्बस्तु दुःखस्तु पमोक्त्वममो ।
विपाहिमो अ समुविच सत्ता, कमेण अर्चतसुही भवति ॥
॥१११॥ चि वेमि ॥

अनादिकाल से जीव के साथ सगे हुए समस्त दुःखों से मुक्त होने का भगवान् ने यह मार्ग बताया है जिसे सम्यग् प्रकार से अंगीकार करके जीव अत्यन्त सुखी हो जाता है १११
॥—बत्तीसवां अध्याय समाप्त—॥

कम्मप्पयही तेत्तीसइम अज्झयणां

—॥१११॥—

अहं कम्माइ बोप्पामि, भाणुप्पुमि जइकम ।
नेहि बढो भय भीरो, संसारे परिवहुई ॥१॥

जिन पाठ कर्मों से बन्धा हुआ जीव संसार में परि-
वर्तित होता रहता है उसका स्वरूप मैं अमानुसार कहता हूँ ।
नायस्सावरणिअ, दसयावरयां तदा ।
वेयपित्त तदा मोई, आउकम्मं तदेव य ॥२॥

नामकर्मं च गोयं च, अंतरायं तदेव य ।

एवमेयाहं कस्माहं, अद्वेव उ समासश्चो ॥३॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म, इस प्रकार सक्षेप में आठ कर्म कहे हैं ॥२-३॥

नाष्टावरणं पंचविह, सुयं आमिषिवोहियं ।

ओहिनाणं च तदयं, मण्णनाणं च केवलं ॥४॥

भक्ति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवलज्ञान, इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का है ॥४॥

निद्रा तदेव पयला, निद्रानिद्रा पयलपयला य ।

तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा ॥५॥

निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, और सत्यान-गृद्धि, इस प्रकार निद्रा के पांच प्रकार हैं ॥ ५ ॥

चक्खुमचक्खुओहिस्स, दंससे केवले य आवरणे ।

एवं तु नवविगप्पं, नायव्वं दंसणावरणं ॥६॥

चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण, इस प्रकार नौ भेद दर्शनावरण कर्म के हैं ॥६॥

वेयणीयं पि य दुविहं, सायमसायं च आहियं ।

सायस्स उ बह मेया, एमेव असायस्स वि ॥७॥

फिर वह मक्तात्मा समस्त रागों एवं दुःखों से—जो ससारी जीव का सदा पावित्त करते रहते हैं—सबका मक्ता होकर कृतकृत्य हो जाती है और प्रशान्तमयी होकर सब के लिए परम सुखी हो जाती है ॥११॥

अथाक्षयस्य मयस्स एसो, सम्मस्स दुक्खस्स पमोक्खममो ।
वियाहिमो न सम्भविण सत्ता, कमेय अचंतसुही भवति ॥
॥१११॥ चि वेमि ॥

अनाविकल है जीव के साथ सगुं हुए समस्त दुःखों से मुक्त होने का भवमान् ने यह मार्ग बताया है जिसे सम्यग् प्रकार से अभीकार करके जीव परमन्त सुखी हो जाते हैं १११
॥—बत्तीसवां अध्यायन समाप्त—॥

कम्मप्पयत्थी तेत्तीसइम अज्झयया

—॥३३॥—

अहु कम्माए वोप्पामि, भाणुपुम्भि नइकम ।
येहि बद्धो अय मीरो, ससारे परिवहुई ॥१॥

जिन पाठ कर्मों से बन्धा हुआ जीव ससार में परिवर्तित होता रहता है—उसका स्वरूप मैं क्रमानुसार कहता हूँ ।

नायस्सावरणिज, दसयावरयां तथा ।
वेयणिज तथा मोई, आउकम्मं तद्देव य ॥२॥

नामकर्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य ।

एवमेयाइं कम्माइं, अट्टेव उ समासओ ॥३॥

ज्ञानावरणोय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म, इस प्रकार संक्षेप में आठ कर्म कहे हैं ॥२-३॥

नाणावरणं पंचविह, सुयं आभिणिबोहियं ।

ओहिनाणं च तइयं, मण्णनाणं च केवलं ॥४॥

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवलज्ञान, इस प्रकार ज्ञानावरणोय कर्म पाच प्रकार का है ॥४॥

निदा तहेव पयला, निदानिदा पयलपयला य ।

तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा ॥५॥

निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, और सत्यान्तगूढि, इस प्रकार निद्रा के पाच प्रकार हैं ॥५॥

चक्खुमचक्खूओहिस्स, दंसणे केवले य आवरणे ।

एवं तु नवविगप्पं, नायव्व दंसणावरणं ॥६॥

चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण, इस प्रकार नौ भेद दर्शनावरण कर्म के हैं ॥६॥

वेयणीयं पि य दुविहं, सायमसायं च आहियं ।

सायस्स उ बहू मेया, एमेव असायस्स वि ॥७॥

वेदनीय कर्म के दो भेद—साक्षात्वेदनीय और असाक्षात् वेदनीय इन दोनों के अन्तर भेद बहुत है ॥७॥

मोहयित्वा पि दुर्विहं, दस्ये चरये तथा ।

दस्ये तिविहं धुर्ध, चरये दुर्विहं भवे ॥८॥

मोहनीय कर्म के दो भेद—दर्शन मोहनीय और अरिच मोहनीय फिर दर्शनमोहनीय के तीन और अरिच मोहनीय के दो भेद हैं ॥८॥

सम्पत्तयेव मिच्छार्त्तं, सम्मामिच्छत्तमेव य ।

एयाभो तिमि पयवीभो, मोहयित्वास्स दस्ये ॥९॥

सम्पत्तये मोहनीय मिच्छार्त्त मोहनीय और मिच्छ मोहनीय इस प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियाँ हैं ।

अरिचमोहणं कम्म, दुर्विह तु वियादियं ।

कप्पायमोदणित्तं तु, नोकप्पाय तद्देव य ॥१०॥

कप्पायमोहनीय और नोकप्पायमोहनीय इस प्रकार अरिच मोहनीय के दो प्रकार हैं ॥१०॥

सोत्तसविहमेय्यां, कम्म तु कप्पायस्य ।

सत्तविह नवविहं वा, कम्म च नोकप्पायस्य ॥११॥

कप्पायमोहनीय के सोत्तस प्रकार और नोकप्पाय मोहनीय के सात अथवा नौ प्रकार हैं ॥११॥

नेरह य तिरिक्खाठं, माणुस्साठं तद्देव य ।

देवाठय अठर्यं तु, आउकम्म अठमिह ॥१२॥

नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, यो आयु कर्म के चार प्रकार हैं ॥१२॥

नामकम्मं तु दुविहं, सुहमसुहं च आहियं ।

सुहस्स उ चहू भेया, एमेव असुभस्स वि ॥१३॥

शुभ नाम और अशुभ नाम, इस प्रकार नाम कर्म के दो प्रकार हैं । इन दोनों के अवान्तर भेद अनेक हैं ॥१३॥

गोयं कम्मं तु दुविहं, उच्चं नीयं च आहियं ।

उच्चं अट्ठविहं होह, एवं नीयं पि आहियं ॥१४॥

ऊँच और नीच गोत्र, ये दो प्रकार गोत्र कर्म के हैं । हर एक के आठ आठ भेद हैं ॥१४॥

दाणे लामे य भोगे य, उवमोगे वीरिए तहा ।

पंचविहमंतरायं, समासेण वियाहियं ॥१५॥

अन्तराय कर्म संक्षेप से पांच प्रकार का कहा है, यथा-दानान्तराय, लाभ० भोगा० उपभोगा० और वीर्यान्तराय ।

एयाओ मूलपयडीओ, उत्तराओ य आहिया ।

पएसग्गं खेत्तकाले य, भावं च उत्तरं सुण ॥१६॥

इस प्रकार कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतिया कही गई । अब तुम प्रदेश, क्षेत्र, काल और भाव का स्वरूप सुनो ।

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसग्गमसांतगं ।

गंठियसत्ताईयं, अंतो सिद्धाय आहियं ॥१७॥

वेदनीय कर्म के दो भेद—साक्षादेदनीय और असाक्षादेदनीय इन दोनों के अन्तर्गत भेद बहुत हैं ॥७॥

मोहयिञ्ज पि दुविहं, दसये चरये सदा ।

दसये तिविहं युत्तं, चरये दुविहं भवे ॥८॥

मोहनीय कर्म के दो भेद—दर्शन मोहनीय और चारित्र्य मोहनीय फिर दर्शनमोहनीय के तीन और चारित्र्य मोहनीय के दो भेद हैं ॥८॥

सम्पत्तयेव मिच्छसु, सम्पामिच्छसुमेव य ।

एयाओ तिवि पयडीओ, मोहयिञ्जस्स दसये ॥९॥

सम्पत्तयेव मोहनीय मिच्छासु मोहनीय और मिच्छासु मोहनीय इस प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रवृत्तियाँ हैं ।

चरित्तमोहणं कम्म, दुविहं तु विपादिय ।

कप्पापमोहयिञ्जं तु, नोक्कप्पाय सदेव य ॥१०॥

कप्पापमोहनीय और नोक्कप्पायमोहनीय इस प्रकार चारित्र्य मोहनीय के दो प्रकार हैं ॥१०॥

सोत्तसविहमेण्णां, कम्मं तु कप्पायस्य ।

सप्तविहं नवविहं वा, कम्मं च नोक्कप्पायस्य ॥११॥

कप्पापमोहनीय के सोत्तसप्तविहं प्रकार और नोक्कप्पाप मोहनीय के सात अथवा नौ प्रकार हैं ॥११॥

मेग्गं य तिरिक्खाउं, माणुम्माउं सदेव य ।

द्वौउय चउत्तरं तु, माउकम्मं चउत्तरं ॥१२॥

आयु कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोंपम की है ॥२२॥

उदहीसरिसनामाणं, वीसई कोडिकोडीओ ।
नामगोत्ताणं उक्कोसा, अट्ट मुहुत्ता जहन्निया ॥२३॥

नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त, और उत्कृष्ट बीस कोटाकोटि सागरोंपम की है ॥२३॥

सिद्धाणणांतभागो य, अणुभागा हवन्ति उ ।
सब्बेसु वि पएसगां, सब्बजीवेसु इच्छियं ॥२४॥

सिद्धों के अनन्तवे भाग प्रमाण कर्मों का रस होता है, किन्तु सभी कर्मों के प्रदेश, सब जीवों से अधिक है ॥२४॥

तम्हा एएसिं कम्माणां, अणुभागा वियाणिया ।
एएसिं संवरे वेव, खवणे य जए बुद्धो ॥२५॥ त्ति वेमि

इस प्रकार कर्मों के विषाक को जानकर बुद्धिमान् पुरुष इनका निरोध एवं क्षय करने का प्रयत्न करे ॥२५॥

— तेतीसवा अध्यायन समाप्त —



सब कर्मों के प्रवेश अनन्त हैं जा अनन्त जीवों से
अनन्त गुण और सिद्धों के अनन्तवर्गे भाग में हैं ॥१७॥

सम्बन्धीवाश कम्मसु, संगदं छदिसागय ।

सम्बेसु वि पएसेसु, सम्ब मज्जेसु वदुगं ॥१८॥

सभी जीवों के कर्म अन्तों विद्याओं में स्थित हैं और
सभी विद्याओं से सप्रहित होते हैं । जीव के सभी प्रवेश सभी
प्रकार के कर्मों से बन्धे हुए हैं ॥१८॥

उदहीमरिसनामायां, तीसई कोडिकोडीओ ।

उकोसिया ठिई होइ, अतोमुदुच अइमिया ॥१९॥

आबरणिलस दुर्ण पि, येयसिअ तहव य ।

अवराए य कम्मम्मि, ठिई एसा बियादिया ॥२०॥

आमाबरणोय दर्शनाबरणीय वेदनीय और अन्तराय
इस बार कर्मों की अवस्थ स्थिति अन्तर्मुक्त और उत्कृष्ट
तीस कोडाकोडी सागरापम की होती है ॥१९-२०॥

उदहीमरिसनामायां, सचरिं कोडिकोडीओ ।

मोहणिअस उकोसा, अतोमुदुच अइमिया ॥२१॥

माहनीय कर्म की अवस्थ स्थिति अन्तर्मुक्त और
उत्कृष्ट सितर कोटाकोटी सागरापम की है ॥२१॥

सेसीममागरोवमा, उकोसस बियादिया ।

ठिई उ आउकम्मस, अतोमुदुच अइमिया ॥२२॥

नीलासोगसंकासा, चासपिच्छसमप्पभा ।

वेरुलियनिद्रसंकासा, नीललेसा उ वण्णओ ॥५॥

नील लेश्या का वर्ण—नीले अशोक वृक्ष के समान,
चास पक्षी के पख और स्निग्ध नीलमणि के समान हैं ॥५॥

अयसीपुष्पसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा ।

पारेवयगीवनिभा, काललेसा उ वण्णओ ॥६॥

अलसी के फूल, कोयल के पख और कबूतर की गर्दन
के रंग के समान कापोत लेश्या का रंग होता है ॥६॥

हिंगुलबाउसंकासा, तरुणाहच्चसंनिभा ।

सुयतुंडपईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥७॥

हिंगुल घातु, तरुण सूर्य, तोते की चोच और दीप
शिखा के समान तेजो लेश्या का वर्ण होता है ॥७॥

हरियालमेयसंकासा, हलिदामेयसमप्पभा ।

सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥८॥

हरिताल, हल्दी का टुकड़ा, सण के फूल और असन
के फूल के समान पीले वर्ण की पद्म लेश्या है ॥८॥

संखंकुंदसंकासा, खीरपुरसमप्पभा ।

रययहारसंकासा, सुकलेसा उ वण्णओ ॥९॥

दावल लेश्या का शंख, अरु, मुचकुन्द के फूल, दूध की
धारा के समान तथा चांदी के हार के समान श्वेत रंग होता है ।

लेसा ग्राम चोत्तीसद्वय अज्मयण

सं-१३४-३

लेसज्मयणां पञ्चस्त्वामि, आणुपुञ्चि अहकर्म ।

अणु पि कम्मलेसायां, अणुमाये सुखेह मे ॥१॥

यह मे लेसायां पञ्चस्त्वामि कमानुसार कहता हूँ । तुम
सब लेसायां के अनुभवों को मुझ से सुनो ॥१॥

नामाह पञ्च-रस-गंधकासपरिणामलक्षणां ।

अणुं त्रिं गं घाठ, लेसायां तु सुखेह मे ॥२॥

मे लेसायां के नाम चर्च रस, गन्ध स्पर्श परिणाम
लक्षण स्वान् स्थिति गति और घाट के स्वरूप को कहता
हूँ जो सुनो ॥२॥

किञ्चा नीला य कच्छ य, छेठ पम्हा छेड य ।

सुखलेसा य अणु य, नामाहं तु अहकर्म ॥३॥

छ लेसायां के नाम कमानुसार इस प्रकार हैं-हृण्य
लेसा भील कापोत लेखो पद्म और मुक्क लेसा ॥३॥

जीमूयनिद्रसंकासा, अवतरिद्विगतभिमा ।

खमप्रचनपणनिमा, कियहलेसा ठ वण्यओ ॥४॥

हृण्य लेसा का वर्ण सजस मेघ भेरे के सींग
भरीठा, गाड़ी की काजसी काजस और घास की पुठसी के
समान हैं ॥४॥

नीलासोगसंकासा, चासपिच्छसमप्पभा ।

वेरुलियनिद्धसंकासा, नीललेसा उ वण्णओ ॥५॥

नील लेश्या का वर्ण—नीले अशोक वृक्ष के समान,
चास पक्षी के पख और स्निग्ध नीलमणि के समान है ॥५॥

अयसीपुष्पसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा ।

पारेवयगीवनिभा, काउलेसा उ वण्णओ ॥६॥

अलसी के फूल, कोयल के पख और कबूतर की गर्दन
के रंग के समान कापोत लेश्या का रंग होता है ॥६॥

हिंगुलघाउसंकासा, तरुणाच्चसंनिभा ।

सुयतुंडपर्इवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥७॥

हिंगुल घातु, तरुण सूर्य, तोते की चोंच और दीप
शिला के समान तेजो लेश्या का वर्ण होता है ॥७॥

हरियालमेयसंकासा, हलिदामेयसमप्पभा ।

सणासगकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥८॥

हरिताल, हल्दी का टुकड़ा, सण के फूल और असन
के फूल के समान पीले वर्ण की पद्म लेश्या है ॥८॥

संखंकुंदसंकासा, खीरपुरसमप्पभा ।

रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥९॥

शुक्ल लेश्या का शंख, खट्टू, मुचकुन्द के फूल, दूध की
धारा के समान तथा चांदी के हार के समान श्वेत रंग होता है ।

अह कडुयतुबगरसो, निररसो कडुपरोहिणिरसो वा ।

एषो वि अर्णतगुणो, रसो य क्लिष्टाए नायम्बो ॥१०॥

कडुवा तुम्बा नीम और कटुरोहिणी जैसे कड़वी हाती

है उससे भी अनन्त गुण कट रस—कृष्ण लक्ष्या का होता है ।

अह तिगडुपस्म य रसो, तिक्लो अह इरियपिप्पलीए वा ।

एषो वि अर्णतगुणो, रसो उ नीलाए नायम्बो ॥११॥

मिर्च सोठ और यक्षपीपल के रस, ये भी अनन्त गुण

तीक्ष्ण रस नील लक्ष्या का होता है ॥११॥

अह तरुण्यअबगरसो, तुवरकविट्ठस्स वावि आरिसम्भो ।

एषो वि अर्णतगुणो, रसो उ काऊए नायम्बो ॥१२॥

कच्चे आम के रस तुवर और कच्चे कवित्त के रस

से भी अनन्तगुण मट्टा रस कापोठ लक्ष्या का है ॥१२॥

अह परिशयंबगरसो, पक्कविट्ठस्स वावि आरिसम्भो ।

एषो वि अर्णतगुणो, रसो उ तेऊए नायम्बो ॥१३॥

पके हुए आम और पके हुए कबीट के रस से भी

अनन्त गुण (कटमीठा) रस तेजा लक्ष्या का होता है ॥१३॥

बरवारुणीए व रसो, विरिहाण व भासदाण आरिसम्भो ।

मडुमेरयस्स व रसो, एषो पम्हाए परएणं ॥१४॥

प्रधान मदिरा अनेक प्रकार के आसब मधु और

मेरक नामक मदिरा से भी अनन्तगुण अधिक रस पक्व लक्ष्या का होता है ॥१४॥

खज्जूरमुद्दियरमो, खीररसो खंडसकररसो वा ।

एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥१५॥

खजूर, द्राक्ष, दूध, खाद और शक्कर का जैसा रस होता है, उससे अनन्त गुण मधुर रस, शुक्ल लेश्या का होता है ।

जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स ।

एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥१६॥

मृदक गाय, भरे हुए कुत्ते और भरे हुए सर्प की जैसी गन्ध होती है, उनसे भी अनन्त गुणी दुर्गन्ध, अप्रशस्त लेश्याओं की होती है ॥१६॥

जह सुरहिकुसुमगंधो, गंधवासाण पिस्समाणाणं ।

एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥१७॥

सुगन्धित पुष्पो और धिसे हुए सुगन्धित चन्दनादि पदार्थों की जैसी सुगन्ध होती है, उससे भी अनन्त गुणी सुगन्ध, तीन प्रशस्त लेश्याओं की होती है ॥१७॥

जह करगयस्स फासो, गोजिन्भाए य सागयत्ताणं ।

एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थायां ॥१८॥

जैसा स्पर्श करवत, गाय की जोभ और शकपत्रों का होता है, उससे भी अनन्त गुण अधिक स्पर्श-अप्रशस्त लेश्याओं का है ॥१८॥

जह बूरस्स व फासो, नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं ।

एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥१९॥

भूर नामक ब्रह्मवर्ति गवस्तन धीर सिरीष के पुण्य से भी अनन्तमुक्त कामस स्पर्श नील प्रद्यस्त सेस्याओं का हाता है ।

तिविहो न नवविहो वा, सत्तावीस्रभिहेकसिभो वा ।
दुस्रभो सेयालो वा, सेमाण होइ परिखामो ॥२०॥

छहों सेस्याओं के परिणाम क्रमण तीन भी सत्तावीस्र इयाओ और दोस्रो सत्तावीस्र प्रकार के होते हैं ॥२०॥

पचासव्यवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसु अविरभो य ।
तिन्वारंमपरिषभो, सुहो साहस्सिभो नरो ५० ॥
निर्दमपरिषामो, निस्संसो अजिइदिभो ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्णत्तेसं तु परिषमे ॥२२॥

पाँचों घास्रों में प्रवृत्त तीन गुणित्यों से ^१ अगुत्त, छ काय की हिंसा में रह तीव्र आरम्भ में बर्तनेवाला वृद्ध साहसो निर्दम मृदांस इन्द्रियों को लुपी रक्तने बाभा दुराचारी पुरुष इज्ज सेस्या के परिणाम वाला हाता है २१ २२

इस्सा अमरिस अतहो, अविजमाया अहीरिया य ।
गेही पभोसे य सडे, पमत्ते रसत्तोत्तुए सायगवसए य ॥२३॥
आरंमाभो अविरभो सुहो साहस्सिभो नरो ।
एयजोगसमाउत्तो, नीसत्तेसं तु परिषमे ॥२४॥

ईप्यांशु कदाप्रही अमहिण्णु तव करके रहित अज्ञानी मायाओ, निरसंज विपयी इयी रसभामुप आरामगसम

आरन्धी, अविरत, क्षुद्र और साहसिक मनुष्य के नील लेश्या के परिणाम होते हैं ॥२३-२४॥

बंके बंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए ।

पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए ॥२५॥

उप्फालगदुड्ढवाई य, तेणे यावि य मच्छरी ।

एयजोगसमाउत्तो, काउलेसं तु परिणमे ॥२६॥

बक्र, विषम आचरणवाला, कपटी, धसरल, अपने दोषों को छुपानेवाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, मम-भेदक, दुष्ट वचन बोलनेवाला, चोर, और जलनशील स्वभाववाला, कापोत लेश्या के परिणामवाला होता है ॥२५-२६॥

नीपाविच्ची अचवले, अमाई अकुउहले ।

विणीयविणए दंते, जोगवं उवहाणवं ॥२७॥

पियधम्मे ददधम्मे, अवजभीरु हिएसए ।

एयजोगसमाउत्तो, तेउलेसं तु परिणमे ॥२८॥

नम्र, चपलता रहित, निष्कपट, कुतूहल से रहित, विनीत, इन्द्रियों को बश में रखनेवाला, स्वाध्याय तथा तप आदि करने वाला, प्रियधर्मी, दृढधर्मी, पापभीरु और हितैषी जीव, तेजो लेश्या के परिणामवाला होता है ॥२७-२८॥

पयणुकोहमाणे य, मायालोभे य पयणुए ।

पसंतच्चित्ते दंतप्पा, जोगवं उवहाणवं ॥२९॥

तदा पयशुर्वाहं य, उवसंते जिह्दिष ।

पयजोगसमाठत्तो, पम्भ्लेसं तु परिचम ॥३०॥

जिसमें क्रोध मान, माया, और मोम स्वल्प हैं जो प्रणीत चित्तवाना है जो मन को पक्ष में रखता है जो ज्ञान ध्यान और तप में लगा रहता है जो थोड़ा बासनेवाला सपसाम्त और जितेन्द्रिय होता है उसमें पक्ष सेव्या के परिचाम होते हैं ॥२९-३०॥

अदुरुदाणि बलिष्ठा, घम्मसुकाणि म्हापण ।

पसंतधिचे इंतप्पा, समिण गुणे य गुचिसु ॥३१॥

सरागे धीपरागे वा, उवसंते जिह्दिष ।

पयजोगसमाठत्तो, सुक्खेसं तु परिचमे ॥३२॥

घात और शत्रु ध्यान का त्याग कर जो घम और मुक्त ध्यान का चिन्तन करता है जिसका चित्त ध्यान्त है इन्द्रियों और मन पर जिसका अधिकार है समिति तथा मूर्ति वन्त है जो सराग है पचवा बीतराग है सपसाम्त और जितेन्द्रिय है उसमें शुक्ल सेव्या के परिचाम होते हैं ॥३१-३२॥

असंखिआणीसप्पिसीअ, उस्सप्पिणीण जे समय ।

संसारिया सोगा, सेसाअ इवति अखाइ ॥३३॥

सप्तस्थाठ पचसपिणो और उत्सपिणी के जितने समय होते हैं तथा असंख्यात लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं उतने ही सेव्याओं के त्याग होते हैं ॥३३॥

मुहुत्तद्वं तु जहन्ना, तेत्तीसा सागरा मुहुत्तहिया ।

उकोसा होइ ठिई, नायव्वा किएहलेसाए ॥३४॥

कृष्ण लेख्या की स्थिति कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक तेत्तीस सागरोपम और मुहूर्त अधिक होती है ।

मुहुत्तद्वं तु जहन्ना, दस उदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।

उकोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए ॥३५॥

नील लेख्या की स्थिति, जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम के असख्यातवे भाग सहित दस सागरोपम की है ।

मुहुत्तद्वं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।

उकोसा होइ ठिई, नायव्वा काउलेसाए ॥३६॥

कापात लेख्या की स्थिति, जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन सागरोपम और पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक होती है ॥३६॥

मुहुत्तद्वं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।

उकोसा होइ ठिई, नायव्वा तेउलेसाए ॥३७॥

तेजो लेख्या की स्थिति कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक पल्योपम के असख्यातवे भाग सहित दो सागरोपम की होती है ॥३७॥

मुहुत्तद्वं तु जहन्ना, दस उदही होइ मुहुत्तमब्भहिया ।

उकोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए ॥३८॥

पद्म सेवया की स्थिति अथर्व्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की जाननी चाहिए ॥३८॥

सुहृत्तु तु ब्रह्मा, तेचीस सागरा सुहृत्तुद्विधा ।

उक्तीसा होइ ठिई, नायन्वा सुहृत्तेसाए ॥३९॥

सुहृत्तु सेवया की स्थिति अथर्व्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्त अधिक तैंतीस सागरोपम की होती है ॥३९॥

एसा ललु सेसायां, ओइस ठिई वसिण्या होइ ।

चठसु वि गर्सु एतो, सेसाय ठिई तु बोन्नामि ॥४०॥

इस प्रकार सामान्य रूप से सेवयाओं की स्थिति का
बणन किया । अब मैं पार गति की अपेक्षा से सेवया की
स्थिति का वर्नन करता हूँ ॥४०॥

दसबाससदस्साह, कठए ठिई ब्रह्मभिया होइ ।

तिष्णुदही पलिओरम, असंखभागं च उक्तीसा ॥४१॥

कापात सेवया की अथर्व्य स्थिति दस हजार वर्ष की
और उत्कृष्ट स्थिति पश्योपम के असंख्यातमें माय अधिक तीन
सागरोपम की होती है ॥४१॥

तिष्णुदही पलिओरम, असंखभागो ब्रह्मेव नीसठिई ।

दसठदही पलिओरम, असंखभागं च उक्तीसा ॥४२॥

नीस सेवया की स्थिति अथर्व्य पश्योपम के असंख्यातमें
भाग अधिक तीन सागरोपम और उ० पश्योपम के असंख्यातमें
माय अधिक दस सागरोपम की होती है ॥४२॥

दसउदही पलिओवम, असंखभागं जहन्निया होइ ।

तेत्तीससागराई, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥४३॥

कृष्ण लेश्या की स्थिति ज० पत्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम और उ० तैंतीस सागरोपम की हाती है ॥४३॥

एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वणिणया होइ ।

तेण परं वोच्छामि, तिरियमणुस्साण देवाणं ॥४४॥

इस प्रकार नरक के जीवों की लेश्या स्थिति कही गई । अब तिर्यच मनुष्य और देवों की लेश्या स्थिति का वर्णन करता हूँ ॥४४॥

अंतोमुहुत्तमद्धं, लेसाण ठिई जहिं जहिं जाउ ।

तिरियाण नराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥४५॥

तिर्यच और मनुष्यों में, शुक्ल लेश्या को छोड़कर जहाँ जो लेश्याएँ हैं । उन लेश्याओं की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥४५॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुन्वकोडीओ ।

नवहिं वरिसेहिं ऊणा, नायच्चा सुक्कलेसाए ॥४६॥

शुक्ल लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० नौ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की होती है ॥४६॥

एसा तिरियनराणं, लेसाण ठिई उ वणिणया होइ ।

तेण परं वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाणां ॥४७॥

यह बाणन तिर्यक् और मनुष्य की सेस्याओं का तुभा
प्रब देवों की सेस्याओं की स्थिति कहता हूँ ॥४७॥

इसवाससहस्ता, क्रियहाय ठिई अहमिया होइ ।

पत्तियमसंखिजामो, उकोसो होइ क्रियहाय ॥४८॥

कृष्ण सेस्या की स्थिति अ०-यह हमार बयं की और
उत्कृष्ट पत्न्योपम के असस्यातवे भाग की होती है ॥४८॥

आ क्रियहाय ठिई खलु, उकोसा सा उ समयमम्महिया ।

अहन्नेन नीसाय, पत्तियमसंखि ज उकोसा ॥४९॥

नील सेस्या की अ० स्थिति ती कृष्ण सेस्या की उत्कृष्ट
स्थिति से एक समय अधिक है और उ० स्थिति पत्न्योपम के
असस्यातवे भाग की है ॥४९॥

आ नीसाय ठिई खलु, उकोसा सा उ समयमम्महिया ।

अहन्नेन काठाय, पत्तियमसंखि ज उकोसा ॥५०॥

कापोठ सेस्या की अ० स्थिति नील सेस्या की उ०
स्थिति से एक समय अधिक और उ० पत्न्योपम के असस्यातवे
भाग की होती है ॥५०॥

सेव परं बोच्छामि, तेऊलेसा कहा सुरगणायां ।

मवषवइ-बाधमतर-जोइस-बेमापियायां ज ॥५१॥

प्रब प्रागे भवमपति बाणम्यन्तर, ज्योतिषो और
बैमानिक देवों की ठेवो सेस्या की स्थिति कहता हूँ ॥५१॥

पलिओवमं जहन्ना, उक्कोसा सागराओ दुन्नहिया ।

पलियमसंखेज्जणं, होइ मागेण तेऊए ॥५२॥

तेजो लेख्या की स्थिति ज० एक पल्योपम और उ० पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक दो सागरोपम की (वैमानिक की) होती है ।

दस वाससदस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ ।

दुन्नुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥५३॥

तेजो लेख्या की स्थिति ज० दस हजार वर्ष (भवन-पति और व्यन्तर देवों की अपेक्षा) और उ० पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक दो सागरोपम की होती है ।

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।

जहन्नेणं पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहियाइ उक्कोसा ॥५४॥

जा उत्कृष्ट स्थिति तेजो लेख्या की है उससे एक समय अधिक पद्म लेख्या की जघन्य स्थिति होती है और उ० अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की है ॥५४॥

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा उ समयमब्भहिया ।

जहन्नेणं सुक्काए, तेत्तीस मुहुत्तमब्भहिया ॥५५॥

जा उत्कृष्ट स्थिति पद्म लेख्या की है, उससे एक समय अधिक शुक्ल लेख्या की ज० स्थिति होती है, और शुक्ल लेख्या की स्थिति उ० तैंतीस सागरोपम की होती है ॥५५॥

क्रिया नीला काल, तिन्नि वि एयाओ अइम्मलेसाओ ।
 एयाहि तिहि वि बीओ, दुग्गाइ उववक्काइ ॥५६॥

इष्टम नील और कापोत य तामों अश्वर्म लेखाए हैं।

इनसे बीब दुर्गति में जाता है ॥५६॥

तेऊ पम्हा सुका, तिन्नि वि एयाओ अइम्मलेसाओ ।
 एयाहि तिहि वि बीओ, सुग्गाइ उववक्काइ ॥५७॥

तेओ पण और शुक्ल ये तीन अश्वर्म लेखाए हैं। इनसे

बीब सुगति में उत्पन्न होता है ॥५७॥

सेसाहिं सम्वाहिं, परमे समयम्मि परिषयाहिं तु ।

न हु कस्साइ उववाओ, परेमवे अत्थि बीवस्स ॥५८॥

सभी लक्षणाओं की प्रथम समय की परिणति में किसी

भी बीब की परभाव में उत्पत्ति नहीं होती ॥५८॥

सेसाहिं सम्वाहिं, अरिमे समयम्मि परिषयाहिं तु ।

न हु कस्साइ उववाओ, परेमवे होइ बीवस्स ॥५९॥

सभी लक्षणाओं की अन्तिम समय की परिणति में

किसी भी बीब की परभाव में उत्पत्ति नहीं होती ॥५९॥

अतमुहुत्तम्मि गण, अतमुहुत्तम्मि सेसण्ण येव ।

सेसाहिं परिषयाहिं, बीवा गच्छति परलोप ॥६०॥

लक्षणा की परिणति के बाद अतमुहुत्त के बीतने पर

और अतमुहुत्त होय रहने पर बीब परलोक में जाता है ॥६०॥

तम्हा एयासि लेसाणां, अणुभावे वियाणिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओऽहिद्विए मुणी । त्ति वेमि ।

इसलिए साधु लेख्याओं के अनुभाव-रस को जानकर
अप्रशस्त लेख्याओं को छोड़कर प्रशस्त लेख्या अंगीकार करे ॥६१॥

॥ चौतीसवा अध्ययन समाप्त ॥

पंचतीसइमं अणुगारज्जयणं

— ३५ —

सुखोह मे एंगगमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं ।
जमायरंतो भिक्खु, दुक्खाणतकरे भवे ॥१॥

हे शिष्यो ! सर्वज्ञों द्वारा उपदिष्ट उस मार्ग को
एकाग्र मन से मुझ से सुनो, जिसका आचरण करता हुआ
भिक्षु, सभी प्रकार के दुःखों का अन्त कर देता है ॥१॥

गिहवासं परिचज्ज, पवज्जामस्सिए मुणी ।
इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जंति भाणवा ॥२॥

गृहवास का त्यागकर प्रव्रज्या के आश्रय में रहा हुआ
मुनि, इन संगों को जाने-जिनमें मनुष्य फँसे हुए है ॥२॥

तद्देव हिंसं अलियं, चोअं अब्बंम सेवणं ।
इच्छा कामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए ॥३॥

साधु हिंसा, झूठ, चोरी, मंथून, अप्राप्त की इच्छा
प्रीत लोभ को त्याग देवे ॥३॥

मखोहरं विचपरं, मद्गवूरेण वासिय ।

सकषाड पदुल्लोय, मरुसा वि न पत्थए ॥४॥

जो घर मनाहर हो बिजों से शानित हो माता
बीर पूपादि से वासित हो बस्त्रों से सज्जित तथा किवाड़ों
वाला हो मुनि ऐसे गृह की मन से भी इच्छा नहीं करे ॥४॥

इदियाणि ठ मिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए ।

दुक्कराए निवारेट, कामरागविक्कहुवे ॥५॥

ऐसे काम राग के बड़ाने वाले उपामय में साध के
लिए इन्द्रियों को समय में रक्ता कठिन है ॥५॥

सुसाणे सुमगारे वा, रुक्खमुत्ते व एगघो ।

परिरुक्क परकडे वा, वासं तत्थाभिरोपए ॥६॥

घटएव समशान पुर्य्य गृह वृक्ष के मोने घबरा दूसरों
के लिए बनाय हुए स्थानों में रागद्वेष रहित हाकर निवास
करने की तबि रत्त ॥६॥

फासुपम्मि अण्णावाहे, इत्थीहिं अक्कमिदुदए ।

तत्थ संकप्पए वास, मिक्खु परमसंघए ॥७॥

परम सवमी भूमि ऐसे ही स्थान में ठहरने का संकल्प
करे, जो जीवादि की उत्पत्ति से रहित शुद्ध वाद्यार्थों से
रहित बीर दिव्यों से वंचित हो ॥७॥

न सय गिहाइ इज्जिळा, नव अन्नेहिं कारण ।

गिरुक्कम्मसमारंमे, भूपाणं दिम्पए वदो ॥८॥

न तो स्वयं घर बनावे, न दूसरो से ही बनवावे,
 , क्योंकि गृह निर्माण समारम्भ में अनेक जीवों की हिंसा
 होती है ॥८॥

तसां थावराणं च, सुहुमाणं बादराण य ।
 तम्हा गिहसमारंभं, संजयो परिवज्जए ॥९॥

गृह निर्माण में घस, स्थावर, सूक्ष्म तथा बादर जीवों
 की हिंसा होती है, इसलिए सयमी मुनि, गृह समारम्भ को
 रोक दे ॥९॥

तद्देव भत्तपाणेसु, पयणे पयावणेसु य ।
 पाणभूयदयद्वाए, न पये न पयावए ॥१०॥

इसी प्रकार भोजन पानी का पचन पाचन भी हिंसा
 जनक है । प्राणियों की दया के लिए, न स्वयं भोजन पकावे
 और न दूसरो से ही पकवावे ॥१०॥

जलघन्नानिस्सिया जीवा, पुढवीकट्टनिस्सिया ।
 हम्मंति भत्तपाणेसु, तम्हा मिक्खु न पयावए ॥११॥

भोजन पकाने में जल और घान्य तथा पृथ्वी और
 काष्ठ के आश्रित अनेक जीवों की हिंसा होती है । इसलिये
 भिक्षु, दूसरे से भी नहीं पकवावे ॥११॥

विसप्पे सन्वओधारे, बहुपाणिविणासणे ।
 नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥१२॥

सर्वत्र जिसकी धाराएँ फली हैं और जो बहुतसे प्राणियों का नाश करनेवाली है जिसके समान दूसरा कोई अस्त्र नहीं है। ऐसी अग्नि को प्रवर्जित नहीं करे ॥१२॥

हिरण्यां आपरूढ च, मयसा वि न पत्यए ।
समलोडु कषयो मिस्तु, विरए कयविक्रए ॥१३॥

अथ विक्रय से विरक्त और मिट्टी तथा स्वर्ण का समान समझने वाला साधु, अथ विक्रय की इच्छा भी नहीं करे।

किंनतो कइओ होइ, निक्षिपांतो य बाधिओ ।
कयविक्रयमि वहुतो, मिस्तु न मवइ ठारिसो ॥१४॥

खरीदने वाला चाहक हाता है और बेचने वाला बिक । जो अथ विक्रय करता है वह साधु नहीं हो सकता ।

मिस्तुयप्य न केयम्, मिस्तुया मिस्तुवचिषा ।
कयविक्रयो महादोसो, मिस्तुवत्ती शुदावहा ॥१५॥

मिस्तु को मिटा ही करनी चाहिए किन्तु मूल्य से कोई भी वस्तु नहीं लेनी चाहिए क्योंकि अथ विक्रय में महा दोष रहे है और भिलावृत्ति मुक्त देने वाली है ॥१५॥

समुपार्या उच्छ्वसेसिमा, अशसुत्तमचिदिय ।
सामासाममि संतुह, पिंडवार्य पर सुणी ॥१६॥

मूत्रानुसार सामुदायिक और धनिन्दित घनेक कुत्तों से षोड़ा-षोड़ा चाहकर ग्रहण करे और मिसे या नहीं मिसे तो समुष्ट रहकर भिलावृत्ति का पावन करे ॥१६॥

अलोले न रसे गिद्धे, जिन्मादंते अमुच्छिष्टे ।

न रसद्व्याए भुंजिञ्जा, ज्वरयद्व्याए महामुणी ॥१७॥

जिन्हा का लोलुपी नही हावे । रसो में मृद्व नही वने ।
जिन्हा को बश में रखें । मूर्च्छा रहित होवे । स्वाद के लिए
भोजन नही करे, किन्तु समय निर्वाहके लिए ही भोजन करे ।

अचणं रयणं चैव, वंदणं पूयणं तदा ।

इड्ढीमकारसम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥१८॥

साधु अर्चना, रचना, वन्दना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार
और सम्मान की मन से मो इच्छा नही करे । १८॥

सुकज्झाणं म्मियाएज्जा, अणियारो अकिंचणे ।

वोसद्वकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥१९॥

साधु मृत्यु पर्यन्त अपरिग्रही, निदान रहित और काया
का ममत्व त्यागकर, शुकल ध्यान ध्याता हुआ विचरता रहे ।

निज्जूहिऊण आहारं, कालघम्मे उवड्ढिए ।

चइऊण माणुसं बोन्दि, पहु दुक्खा विमुच्चई ॥२०॥

इस प्रकार सामर्थ्यवान् मुनि, मृत्यु समय आने पर
आहारादि के त्याग पूर्वक, मनुष्य शरीर को छोड़कर सभी
दुखों से मुक्त हो जाता है ॥२०॥

निम्ममे निरहंकारे, वीयरारो अणासवो ।

संपत्तो केवलं नाणं, सासयं परिणिब्बुए ॥२१॥ त्ति वेमि

बहु ममत्व रहित धर्तृकार से मूर्ख, बीतरागी और निरासवी होकर तथा केवलज्ञान पाकर सेवा के लिए सुन्नी हो जाता है ॥२१॥

८॥ पैंतीसवीं अध्याय समाप्त ॥॥

जीवाजीवविभक्ती शाम छत्तीसद्वय अज्मयणा

—ॐ—१५—ॐ—

बीवाजीवविभक्तिं मे, सुखेह एगमया इओ ।

अ जाणिऊन मिस्सू, सम्म अयह संभमे ॥१॥

हे शिष्यों ! तुम जीव और पजीव के वेद को मुझ से सुनो । जिसके जानने से मिथु संवत्स में यत्न करता है ॥१॥

जीवा वेव अजीवा य, एस छोर विपादिण ।

अजीवदेसमागासे, असोए से विपादिण ॥२॥

यह शोक जीव और पजीवमय कहा गया है और जहाँ केवल पजीव का देयरूप आकाश हो है वह असोक कहा है ॥

दम्भओ सेसओ येन, अस्तओ भावओ तहा ।

परुन्खा सेसि भवे, जीवायममीदाय य ॥३॥

जीव और पजीव इन्ध का प्रतिपादन इन्ध होव, काम और भाव इन चार प्रकार से होता है ॥३॥

रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहा भवे ।

अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो य चउव्विहा ॥४॥

अजीव दो प्रकार के हैं—रूपी और अरूपी । अरूपी अजीव दस प्रकार के और रूपी अजीव चार प्रकार के होते हैं ।

धम्मस्त्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए ।

अहम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ॥५॥

आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ।

अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे ॥६॥

धर्मास्तिकाय का १ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का १ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश, आकाशास्तिकाय के १ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश, यो तीनों के ६ और दसवा काल—यो अरूपी अजीव के १० भेद हुए ॥५-६॥

धम्माधम्मे य दो चेव, लोगमित्ता वियाहिया ।

लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ॥७॥

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, लोक प्रमाण कही गई । आकाश, लोक और अलोक में भी है और समय, समय क्षेत्र प्रमाण हैं ॥७॥

धम्माधम्मागासा तिन्नि वि एए अणाइया ।

अपज्जवसिया चेव, सञ्चद्धं तु वियाहिया ॥८॥

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय,

ये तीनों द्रव्य सर्व कासिक और अनादि अमृत कहे हैं ॥८॥

समय वि संतर्पण, एवमेव विद्यादिया ।

आपसे पण्य सार्द्ध, उपलब्धसिध वि य ॥९॥

समय संतति की अपेक्षा अनादि अमृत है और आदेश की अपेक्षा चाविसागृत है ॥९॥

स्वभा य सुखदमा य, उपपत्त्या तद्देव य ।

परमाणुयो य बोधव्या, रूचिणो य अउच्छिदा ॥१०॥

कृपी द्रव्य के स्कन्ध देश प्रवेष्टा और परमाणु—ये चार भेद हैं ॥१०॥

एगदेश पुहुचय, स्वभा य परमाणु य ।

लोएगदेसे लोए य, मय्यव्या से ठ छेचयो ॥

(सुहमा सव्यलोगभि, लोएगदेस य बापरा-पठावर)

एषो कालविमार्ग तु, तेसि युच्छ अउच्छिद ॥११॥

परमाणुओं के परस्पर मिलने से स्कन्ध होता है और भिन्न-भिन्न होने से परमाणु कहाते हैं । बोधपेया स्कन्ध भोक के एक देश में होता है और परमाणु सम्पूर्ण भोक व्यापी होता है । जब काम की दृष्टि से चार भेद कहते हैं (मह गाथा पद् पाद गाथा भी कहमाती हैं) ॥११॥

संतर्पण तप्य सेऽपार्द्ध, अपलब्धसिध वि य ।

ठिइ पद्वय सार्द्धया, उपलब्धसिध वि य ॥१२॥

स्कन्ध और परमाणु, सन्तति की अपेक्षा अनादि
अनन्त तथा स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त है ॥१२॥

असंखकालमुक्तोसं, एकं समयं जहन्नयं ।

अजीवाण य रूचीणां, ठिई एसा वियाहिया ॥१३॥

रूपो अजीव द्रव्य की स्थिति जघन्य एक समय और
उत्कृष्ट अनन्यातकाल की है ॥१३॥

अणान्तकालमुक्तोसं, एकं समयं जहन्नयं ।

अजीवाण य रूचीण, अंतरेयं वियाहियं ॥१४॥

रूपो अजीव द्रव्यो का अन्तर जघन्य एक समय का
और उत्कृष्ट अनन्तकाल का कहा है ॥१४॥

वण्णओ गंधओ चैव, रसओ फामओ तहा ।

संठाणओ य त्रिन्नेओ, परिणामो तेसि पंचहा ॥१५॥

स्कन्ध और परमाणु का स्वभाव, वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श
और संस्थान से पाच प्रकार का है १५॥

वण्णओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकितिया ।

किण्हा नीला य लोहिया, हलिदा सुकिला तहा ॥१६॥

वर्ण परिणति पाच प्रकार की होती है—काला, नीला,
लाल, पीला और श्वेत ॥१६॥

गंधओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया ।

सुन्मिगधपरिणामा, दुन्मिगधा तहेव य ॥१७॥

गन्ध परिणति दो प्रकार की—मुगन्ध परिणति और
दुर्गन्ध परिणति ॥१७॥

रसग्नो परिणया जे उ, पचहा ते पकिचिया ।

तिचकइयकसाया, अविज्ञा महुरा तहा ॥१८॥

पुद्गल की रस परिणति पांच प्रकार की होती है—
छौदन कटु कसेला लट्टा और माठा ॥१८॥

फासग्नो परिणया जे उ, अट्टहा ते पकिचिया ।

ककसुडा मठया बेब, गरुया छडुया तहा ॥१९॥

सीया उण्हा य निद्रा य, तहा लुक्छा य आहिया ।

इय फासपरिणया पय, पुमाला समुदाहिया ॥२०॥

पुद्गलों की स्पर्श परिणति आठ प्रकार की कही है—
यथा—कर्कश कोमल भारी हल्का पीत उष्ण श्लेष्म
और कसा ॥२१-२॥

संठासग्नो परिणया जे उ, पचहा ते पकिचिया ।

परिमंडला य बड्डा य, तसा अउरंसमायया ॥२१॥

सत्त्वान परिणति पांच प्रकार की—परिमण्डल बुत
त्रिकोण चतुष्कोण और लम्बा ॥२१॥

दण्डग्नो जे मये किन्हे, मइय से उ गंधग्नो ।

रसग्नो फासग्नो बेब, मइय संठासग्नो वि य ॥२२॥

जो पुद्गल काले वर्ण का है, उसमें गन्ध, रस, स्पर्श और सन्धान की भजना है ॥२२॥

वर्णश्चो जे भवे नीले, भइए से उ गंधश्चो ।
रसश्चो फासश्चो चेव, भइए संठाणश्चो वि य ॥२३॥

जो नील वर्ण वाले पुद्गल हैं उनमें (पूर्ववत्) ॥२३॥
वर्णश्चो लोहिए जे उ, भइए से उ गंधश्चो ।
रसश्चो फासश्चो चेव, भइए संठाणश्चो वि य ॥२४॥
जो लाल वर्ण के पुद्गल हैं ॥२४॥

वर्णश्चो पीयए जे उ, भइए से उ गंधश्चो ।
रसश्चो फासश्चो चेव, भइए संठाणश्चो वि य ॥२५॥
जो पीत वर्ण के पुद्गल हैं ॥२५॥

वर्णश्चो सुकिले जे उ, भइए से उ गंधश्चो ।
रसश्चो फासश्चो चेव, भइए संठाणश्चो वि य ॥२६॥
जो शुक्ल वर्ण के पुद्गल हैं ॥२६॥

गंधश्चो जे भवे दुन्भी, भइए से उ वर्णश्चो ।
रसश्चो फासश्चो चेव, भइए संठाणश्चो वि य ॥२७॥
जो सुगन्धित पुद्गल है, उनमें वर्ण, रस, स्पर्श और सन्धान की भजना होती है ॥२७॥

गंधश्चो जे भवे दुन्भी, भइए से उ वर्णश्चो ।
रसश्चो फासश्चो चेव, भइए संठाणश्चो वि य ॥२८॥

जो दुगुण वाले द्रव्य है जनमें (पूज्यत्) ॥२८॥

रसभो तिष्ठए जे ठ, मइए से ठ बण्यभो ।

गंधभो फासभो खेव, मइए संठाणभो बि य ॥२९॥

जा तिष्ठ रसवाले पुद्गल हैं जनमें वण मग्ग स्पष्ट
घोर संस्वान की भजना है ॥२९॥

रसभो कइए जे ठ, मइए से ठ बण्यभो ।

गंधभो फासभो खेव, मइए संठाणभो बि य ॥३०॥

जा कटु रसवाले पुद्गल हैं ॥३०॥

रसभो कयाए जे ठ, मइए से ठ बण्यभो ।

गंधभो फासभो खेव, मइए संठाणभो बि य ॥३१॥

जो कयाय रसवाले द्रव्य हैं ॥३१॥

रसभो अबिले जे ठ, मइए से ठ बण्यभो ।

गंधभो फासभो खेव, मइए संठाणभो बि य ॥३२॥

जा धाम्म रस वाले पदार्थ हैं ॥३२॥

रसभो मइए जे ठ, मइए से ठ बण्यभो ।

गंधभो फासभो खेव, मइए संठाणभो बि य ॥३३॥

जो मधुर रसवाले द्रव्य हैं ॥३३॥

फासभो कसखे जे ठ, मइए से ठ बण्यभो ।

गंधभो फासभो खेव, मइए संठाणभो बि य ॥३४॥

जो कठोर स्पर्श वाले पुद्गल है, उनमें गन्ध, रस और
संस्थान की भजना है ॥३४॥

फासओ मडए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३५॥

जो कोमल स्पर्श वाले० ॥३५॥

फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३६॥

जो भारी स्पर्श वाले० ॥३६॥

फासओ लघुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३७॥

जो हल्के स्पर्श वाले० ॥३७॥

फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३८॥

जो जीत स्पर्श वाले० ॥३८॥

फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३९॥

जो उष्ण स्पर्श वाले० ॥३९॥

फासओ निहए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४०॥

जो स्निग्ध स्पर्श वाले० ॥४०॥

फासओ लुक्खण जे ठ, मइए से ठ वण्णओ ।
 गंधओ रसओ जेव, मइए सठाणओ वि य ॥४१॥
 ओ क्ख स्या वासे ॥४१॥

परिमंढलसंठाणे, मइए से ठ वण्णओ ।
 गंधओ रसओ जेव, मइए फासओ वि य ॥४२॥

ओ परिमंढल सस्याम वासे पुव्वगल हे ननमं ननं
 गंध रस ओर स्पष्ट को नजना है ॥४२॥

सठाणओ मवे बहे, मइए से ठ वण्णओ ।
 गंधओ रसओ जेव, मइए फासओ वि य ॥४३॥
 ओ क्खकर सस्याम वासे ॥४३॥

संठाणओ मवे ठसे, मइए से ठ वण्णओ ।
 गंधओ रसओ जेव, मइए फासओ वि य ॥४४॥
 ओ निकोन सस्याम वासे ॥४४॥

संठाणओ जे चठरंसे, मइए से ठ वण्णओ ।
 गंधओ रसओ जेव, मइए फासओ वि य ॥४५॥
 ओ ओरस सस्याम वासे ॥४५॥

ने आययसंठाणे, मइए से ठ वण्णओ ।
 गंधओ रसओ जेव, मइए फासओ वि य ॥४६॥
 ओ नम्मे सस्याम वासे ॥४६॥

एमा अजीवविमत्ती, समासेणं वियाहिया ।

इत्तो जीवविमत्तिं, वुच्छामि अणुपुण्वसो ॥४७॥

इस प्रकार अजीव द्रव्य विभाग का वर्णन संक्षेप से किया, अब जीव विभाग का वर्णन अनुक्रम से करता हूँ ॥४७॥

संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया ।

सिद्धा योगविहा बुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥४८॥

जीव दो प्रकार के हैं-संसार में रहने वाले और सिद्ध । सिद्ध अनेक प्रकार के हैं । उनके भेद मुझ से सुनो ॥४८॥

इत्थीपुरिससिद्धा य, तहेव य नपुंसगा ।

सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य ॥४९॥

स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध, नपुंसकलिंग सिद्ध, सलिंग सिद्ध, अन्नलिंगसिद्ध और गृहलिंग सिद्ध, आदि ॥४९॥

उक्कोसोगाहणाए य, जइन्नमज्झिमाइ य ।

उट्ठुं अहे य तिरियं च, समुदम्मि जलम्मि य ॥५०॥

जषण्य मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना से ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग् लोक से सिद्ध हो सकते हैं । समुद्र और जलाशय से भी सिद्ध हो सकते हैं ॥५०॥

दस य नपुंसणसुं, वीसं इत्थियासु य ।

पुरिसेसु य अट्ठसयं, समणयोगेण सिज्झई ॥५१॥

एक समय में नपुंसकलिंगी दस, स्त्रीलिंगी बीस, पुरुष लिंगी एकसौआठ सिद्ध हो सकते हैं ॥५१॥

चत्वारि य गिहिलिंगे, अश्लिङ्ग दसेष य ।

सलिंगेण अहस्य, समएखेगेण सिग्मर्ह ॥५२॥

एक समय में गृहलिंग में चार अश्लिङ्ग में दस सलिंग में एकसौपाठ सिद्ध हो सकते हैं ॥५२॥

उक्तोसोगाह्याय य, सिग्मन्त शुगब दुषे ।

चत्वारि य अहसाय, अशमन्मद्दुत्तरं सय ॥५३॥

एक समय में जलस्य अशगाहना से चार उत्कृष्ट अश गाहना से दो और मध्यम अशगाहना से एकसौपाठ सिद्ध हो सकते हैं ॥५३॥

चउरुह्लोए य दुषे समुदे, तम्पो रस्ते धीममहे तदेव य ।

सय च अद्दुत्तरं तिरियलोए, समएखेगेण सिग्मर्ह पुव ॥५४॥

एक समय में ऊर्ध्वं साक में चार, समुद्र में से दस मदी आदि असायध में से तीन अशोसाक में से बीस और तिमक साक में से १०८ निश्चय ही सिद्ध होते हैं ॥५४॥

कहिं पडिहया सिद्धा ?, कहिं सिद्धा पडिहिया ?

कहिं पौदिं चत्तायां ?, कत्य गंतूण सिग्मर्ह ? ॥५५॥

प्रश्न—सिद्ध कहाँ जाकर दफ्त हो ? कहाँ ठहरते हैं ? चत्ता का त्याग कहाँ करते हैं और कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ?

अलोण पडिहया सिद्धा, सोगमा य पडिहिया ।

इह पौदिं चत्तायां, कत्य गंतूण सिग्मर्ह ॥५६॥

उत्तर-सिद्ध अलोक की सीमा पर सकते हैं और लोक के अग्रभाग पर ठहरते हैं। यहा-मनुष्य लोक में शरीर छोड़ कर लोकाग्र पर जाकर सिद्ध होते हैं ॥५६॥

बारसहिं जोयणेहिं, सव्वट्ठसुवरिं भवे ।

ईसीपन्भारनामा उ, पुढवी छत्त संठिया ॥५७॥

सर्वाथसिद्ध विमान से बाग्हु योजन ऊपर, छत्र के आकार वाली ईषत्प्राग्भार नामक पृथ्वी है ॥५७॥

पणयालसयसहस्सा, जोयणाणां तु आयया ।

तावदयं चैव चित्थिण्णा, तिगुणो तस्सेव परिरथो ॥५८॥

वह पैंतालीसलाख योजन की लम्बी, इतनी ही चौड़ी और तीन गुने से अधिक परिधि वाली है ॥५८॥

अट्ठजोयणचाहल्ला, सा मज्झमि वियाहिया ।

परिडायंती चरिमंते, मच्छिपत्ताउ तण्णयरी ॥५९॥

वह पृथ्वी, मध्य में आठ योजन जाड़ी है और फिर कमी होते होते अन्त में मक्खी के पख के समान पतली है ।

अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणां ।

उत्ताणगच्छत्तयसंठिया य, भाणिया जिणवरेहिं ॥६०॥

वह ईषत्प्राग्भार पृथ्वी, स्वभाव से ध्वेत, निर्मल और अर्जुन नामक रवेत स्वर्ण जैसी है। उल्टे छत्र के समान उसका आकार है, ऐसा जिनेश्वर ने कहा है ॥६०॥

संस्वककुदसंकासा, पट्टरा निम्मला सुहा ।

सीयाए ओयणे तत्तो, सोयतो उ वियाहिओ ॥६१॥

बहु सिद्धशिला पृथ्वी, दांत एक रत्न और मृचकुन्द के पुष्प के समान परमन्त शक्त निर्मल और सुहाबनी हैं । उसके ऊपर साकान्त कहा है ॥६१॥

ओयस्स उ ओ तरप, फोसो ठवरिमो मवे ।

तस्स कोतस्स लम्माए, सिद्धाणोगाहसा मवे ॥६२॥

उस एक योजन के ऊपर के कोस के छठे भाग में सिद्ध भगवान् रहे हुए हैं ॥६२॥

तरप सिद्धा महामागा, सोगमाम्मि पड्डिया ।

मवप्पबंघउम्मुक्का, सिद्धि बरगइ गया ॥६३॥

सर्वोत्तम सिद्ध स्थान को प्राप्त होने वाले महा भाम्य—
साली जीव इस संसार बन्ध के प्रपञ्च से मुक्त हाकर लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित हुए हैं ॥६३॥

उस्सेहो लम्स ओ होइ, मवम्मि चरिमम्मि य ।

तिमागहीओ तत्तो य, सिद्धाणोगाहसा मवे ॥६४॥

जो अन्नमाहमा अन्तिम परीच की होती है उससे तीसरे भाग में कम अन्नमाहमा सिद्धों की होती है ॥६४॥

एगसेण सार्इया, अपळवसिया वि य ।

पुहुसेण अन्नार्इया, अपळवसिया वि य ॥६५॥

वहा एक मिद्ध की अपेक्षा से सादि अनन्त काल है,
किन्तु समस्त सिद्धों की अपेक्षा अनादि अनन्त काल है ॥६५॥

अरुविणो जीवघणा, शाण्दमणसणिण्या ।
अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स णत्थि उ ॥६६॥

वे सिद्ध भगवान्, घनरूप, ज्ञान और दर्शन के उपयोग
वाले तथा उपमा रहित हैं । वे अतुल सुख को प्राप्त हो गये
हैं, जिनके लिए कोई उपमा नहीं है ॥६६॥

लोगेगदेसे ते सव्वे, णाणदंसणसन्निया ।
संसारपारनित्थिण्णा, सिद्धिं वरगहं गया ॥६७॥

वे सभी सिद्ध भगवान् संसार के उस पार पहुँचकर
ज्ञान दर्शन के उपयोग से सर्वोत्तम सिद्ध गति को प्राप्त होकर
एक देश में ही रहे हुए हैं ॥६७॥

संसारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया ।
तसा य थावरा चेव, थावरा तिचिहा तहिं ॥६८॥

संसारी जीव उस ओर स्थावर ऐसे दो प्रकार के हैं ।
इनमें स्थावर जीव के तीन भेद कहे हैं ॥६८॥

पुढवी आउजीवा य, तहेव य वणस्सई ।
इच्चेण थावरा तिचिहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥६९॥

पृथ्वी, अप और वनस्पति काय, इस प्रकार स्थावर
काय के तीन भेद हैं । अब इनके भेदों को सुनो ॥६९॥

दुविहा पुढवीजीरा य, सुहुमा भापरा तहा ।

पञ्चमपञ्चता, एवमेव दुहा पुणो ॥७०॥

पृष्ठीकाय के दो भेद-मूढम धीर बादर । इनके प्रत्येक के पुन पर्याप्त धीर अपर्याप्त एमे दो भेद हैं ॥७०॥

भापरा जे ठ पञ्चता, दुविहा ते वियाहिया ।

सपहा खरा य बोधव्या, सपहा ससविहा तहिं ॥७१॥

पर्याप्त बादर पृष्ठीकाय धीरों के दो भेद हैं-कोमल धीर कठोर । इनमें से कोमल के साथ भेद है ॥७१॥

फिण्हा नीला य रुहिरा य, हासिहा सुखिला तहा ।

पहुपण्यगमहिपा, खरा छपीसईविहा ॥७२॥

कालो नासी मास पोसी एवेत पाण्ड तथा पनक-मत्तिका । कठार पृष्ठीकाय क द्वासीस प्रकार हैं ॥७२॥

पुढवी य सक्का वालुपा य, उबले सिक्का य खोण्से ।

अय तव ठउप-सीमग-रुण-सुबण्णे य खरे य ॥७३॥

हरियाले हिंणुण, मणोसिक्का सासगंजसपवाले ।

अम्मपडलम्मवालुप, भापरकाए मणिविहावा ॥७४॥

गोमेअए य रुपगं, अंके फखिइ य सोहिअक्खे य ।

मरगय-ममारगळे, सुममोपग इदनीले य ॥७५॥

चदय गेरुय इसगम्मे, पुसए सोगंघिए य बोधव्ये ।

चदप्पइ वेरुल्लिए, अत्तल्लो खरल्लो य ॥७६॥

१ शुद्ध पृथ्वी २ शर्करा ३ बालुका ४ उपल ५ शिला
 ६ लवण ७ खारी मिट्टी ८ लोहा ९ तरुआ १० ताम्बा
 ११ नीसा १२ रूपा १३ सोना १४ वज्र १५ हर्गताल
 १६ हिंगुलु १७ मनसिल १८ सासक १९ अजन २० प्रवाल
 २१ अभ्रक और २२ अभ्रवालुक । मणियों के भेद—
 २३ गोमेदक २४ रुचक २५ अक रत्न २६ स्फटिक एव
 लोहिताक्ष रत्न २७ मरकत और मसारगल्ल २८ भुजमोचक
 २९ इन्द्रनील ३० चन्दन गेरुक हसगर्भ ३१ पुलक ३२ मीग-
 न्धिक ३३ चन्द्रप्रभ ३४ वैडूर्य ३५ जलकान्त और ३६ सूर्य-
 कान्तमणि ॥७३ से ७६॥

एष खरपुटवीए, मेया छत्तीसमाहिया ।

एगविहमशाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥७७॥

ये छत्तीस भेद कठिन पृथ्वीकाय के कहे, किन्तु इन
 दोनों में सूक्ष्मकाय का तो एक ही भेद कहा है ॥७७॥

सुहुमा सञ्जलोगम्मि, लोगदेसे य धायरा ।

इत्तो कालविभागं तु, तेसिं बुच्छं चउव्विहं ॥७८॥

सूक्ष्म पृथ्वीकाय समस्त लोक में व्याप्त है, किन्तु
 वादर तो लोक के देश भाग में ही है । अब इनका काल
 विभाग चार प्रकार से कहता हूँ ॥७८॥

संतहं पप्पणईया, अपज्जवसिया वि य ।

ठिइं पट्टच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥७९॥

पृष्णीकाय सति की अपेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सावि साम्भ ह ॥७६॥

बावीसहस्साह, वासाणुकोसिया भवे ।
आउठिई पुढवीण, अतोमुहुत्त जहमिया ॥८०॥

पृष्णीकाय के बीबों की आयु स्थिति जयम्भ अन्तर्मुहूर्त और उत्पत्ति बावीसहजार वर्ष की ह ॥८०॥

अससकालमुकोस, अतोमुहुत्त जहमय ।
अयठिई पुढवीणा, तं काय तु अयुवयो ॥८१॥

पृष्णीकाय के बीबों की काय स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त त० उसी काय में जन्म मरण करता रहे तो असस्य काल की है ।

अगतकालमुकोस, अतोमुहुत्त जहमय ।
विब्रह्मि सर काय, पुढवीजीवाह अतर ॥८२॥

स्वकाय की अपेक्षा पृष्णीकाय के बीबों का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और त अन्त काल का है ॥८२॥

एएसि वयणयो वेद, गंधयो रसफासयो ।
संठायादेसयो वा वि, विहायाह सहस्ससो ॥८३॥

इन बीबों के वर्ण से गन्ध रस स्पर्श और संस्पर्श से इन्होंने भेद हाते हैं ॥८३॥

बुविहा आउजीवा त, सुदुमायायरा तहा ।
पञ्चमपञ्चवा, एवमेव दुरा पुखो ॥८४॥

अपकाय के जीव, सूक्ष्म और बादर यों दो प्रकार के
हैं, फिर प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद भी है ॥८४॥

बायरा जे उ पञ्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया ।

सुद्धोदण य उस्से, हरतणु महिया हिमे ॥८५॥

बादर अपकाय के पाच प्रकार हैं, -शुद्धोदक, ओस,
तृण के ऊपर आने वाला-हरतनु, घूँघर और बर्फ का पानी ।

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ।

सुहुमा सव्वलोयम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥८६॥

सूक्ष्म अपकाय के जीव, भेद रहित मात्र एक ही प्रकार
के होते हैं और वे समस्त लोक में व्याप्त हैं । बादर अपकाय
लोक के एक हिस्से में स्थित हैं ॥८६॥

संतइं पप्प शाईया, अपञ्जवसिया वि य ।

ठिइं पडुच्च साईया, सपञ्जवसिया वि य ॥८७॥

अपकाय, प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति
की अपेक्षा आदि अन्त सहित हैं ॥८७॥

सत्तेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।

आउठिईं आऊणं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ॥८८॥

अपकाय के जीवों की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त
और ३० सात हजार वर्ष की हैं ॥८८॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।

कायठिईं आऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥८९॥

काय स्थिति—उसी काय में रहने की अपेक्षा बदन्य
अन्तर्मुहूर्त और उ० अस्तम्य काय की होती है ॥८१॥

अर्णतकालमुकोसं, अतोमुहुत वहभयै ।

विप्रदग्मि सप क्कय, धाठजीवाण अतरं ॥८०॥

स्वकाय छाड़कर दूसरी काय में जाने और पुनः अप
काय में आने का समयान्तर उ० अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अन्त
काय का है ॥८॥

एएसिं बण्णओ येव, गंघओ रसक्कसओ ।

संयथादसओ वा वि, विहासप सइस्सओ ॥८१॥

अपकाय के बीजों के वर्ण तथा रस स्पर्श और
संस्पर्श के आवेष्ट से हजारों विधान-प्रकार होते हैं ॥८१॥

दुविहा बण्णसईजीवा, सुहुमा बायरा सहा ।

पज्जत्तमपज्जत्ता, यवमेव दुहा पुओ ॥८२॥

वमस्पति बीज दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बाह्य ।
इन के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो प्रकार होते हैं ॥८२॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ।

साहारबसरीरा य, पचेगा य सहेव य ॥८३॥

पर्याप्त बाह्य वमस्पतिकाय के दो भेद बड़े गये हैं—
साधारण शरीर और प्रत्यक्ष शरीर ॥८३॥

पचेयसरीरा उ, बेगहा ते पकिच्चिया ।

एव्हा गुब्बा य गुम्मा य, सया पल्ली वया सहा ॥८४॥

प्रत्येक शरीर वनस्पति काय के अनेक प्रकार हैं ।

जैसे-वृक्ष, गुच्छे, गुल्म, लता, बेलि और तृण आदि ॥६४॥

बलया पन्वया कुहुणा, जलरुहा ओसही तथा ।

हरियकाया य बोधन्वा, पत्तेगाइ वियाहिया ॥६५॥

बलय, पवंज, कुहण, जलरुह, ओषधि, तृण और हरितकाय इत्यादि भेद प्रत्येक शरीर वनस्पतिकाय के कहे हैं ।

साधारणसरीरा उ, रोगहा ते पकित्तिया ।

आलुए मूलए चेव, सिंगवेरे तहेव य ॥६६॥

साधारण शरीर वनस्पति काय के अनेक भेद कहे हैं, जैसे आलू, मूली, और शृंगवेर-अदरक आदि ॥६६॥

हिरिली सिरिली, सिस्तिरिली जावई केयकंदली ।

पलंडु-लसणकंदे य, कंदली य कुहुव्वए ॥६७॥

लोहिणी हुयथी हुय, कुहगा य तहेव य ।

कण्हे य वज्रकंदे य, कंदे सूरणए तहा ॥६८॥

अस्सकण्णी य बोधन्वा, सीहकण्णी तहेव य ।

मुसुंढी य हलिदा य, रोगहा एवमायओ ॥६९॥

हरिली, सिरिली, सिस्तिरिली, यावतिक, कन्दली, पलांडु, लशुन, कन्दली, कुहुव्वत, लोहिनी, हुताक्षी, हूत, कुहक, कृष्ण, वज्रकन्द, सूरणकन्द, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंढी और हरिद्राकन्द इत्यादि अनेक प्रकार की साधारण शरीर वनस्पति काय होती हैं ॥६७-६९॥

एगविहमयायता, सुदुमा सत्य विपादिया ।

सुदुमा सन्धसोगम्भि, सोगदेसे य बायरा ॥१००॥

सूक्ष्म बनस्पति काय के जीव भेद रहित मात्र एक ही प्रकार के होते हैं और वे समस्त लोक में व्याप्त हैं । बाहर जीव लोक के समूह हिस्से में हैं ॥१००॥

संतद् एव सार्धिया, अपत्तदसिया वि य ।

द्वि पद्म सार्धिया, सपत्तदसिया वि य ॥१०१॥

प्रवाह की अपेक्षा बनस्पतिकाय प्रावि अन्त रहित और स्थिति की अपेक्षा प्रावि अन्त सहित हैं ॥१०१॥

दस येव सहस्राद्, बासाणुकोसिया भवे ।

बलस्सर्धं आउ तु, अतोमुदुच अहमय ॥१०२॥

बनस्पतिकाय के जीवों की प्रायुस्थिति ब० अन्तर्मुहूर्त च० बसहजार वर्ष की होती है ॥१०२॥

अणंतकाशमुकोसं, अतोमुदुच अहमिया ।

अयठिई पद्मगायां, त कार्य तु अमुचमो ॥१०३॥

बनस्पतिकाय के जीवों की कायस्थिति उसी काय में जन्म मरण करते रहने की अपेक्षा ब० अन्तर्मुहूर्त च० अनन्त कास है ॥१०३॥

असंखकालमुकोसं, अतोमुदुच अहमय ।

विजहम्मि सए काय, पयगजीपाण अतरं ॥१०४॥

स्वकाय छोड़कर पुनः उत्पन्न होने का अन्तर जघन्य
अन्तर्मुहूर्त और उ० असख्यात काल का है ॥१०४॥

एएसि वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।

संठाणादेसओ चा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१०५॥

वनस्पतिकाय के जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और
संस्थान के आदेश से हजारों विधान हैं ॥१०५॥

इचेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया ।

इत्तो उ तसे तिविहे, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥१०६॥

इस प्रकार तीन स्यावरकाय का संक्षेप से वर्णन किया,
अब तीन प्रकार के त्रस जीवों का क्रमशः वर्णन करूंगा ।

तेऊ वाऊ य बोधव्वा, उराला य तसा तहा ।

इचेए तसा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१०७॥

तेजसकाय, वायुकाय और प्रधान त्रसकाय, इस तरह
तीन प्रकार के त्रसकाय हैं । इनके भेद धूमसे सुनो ॥१०७॥

दुविहा तेउजीवा उ, सुहुमा चायरा तहा ।

पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेव दुहा पुणो १०८॥

तेजसकाय के जीव, सूक्ष्म और बादर-ऐसे दो प्रकार
के हैं । इनमें भी प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं ।

नायरा जे उ पज्जत्ता, योगहा ते वियाहिया ।

इंगाले मुम्मुरे अगणी, अचिं जाला तहेव य ॥१०९॥

उक्ता विन्ज् य बोधन्वा, योगहा एवमायम्नो ।

एगविहमयायत्ता, सुहुमा ते वियाहिया ११०॥

सुहुमा सम्मलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ।

इत्तो कालविभागं तु, तेसिं बुज्जं अतम्भिह ॥१११॥

पर्याप्त बादर अग्निकाय अनेक प्रकार से कही है। जैसे अगार चिनगारियां अग्नि दीपदिखा मूल रहित अग्नि शिला तल्का और बिद्युत इत्यादि अनेक भेद हैं। इसमें सूक्ष्म तो भेद रहित मात्र एक ही प्रकार की है और समस्त साक में व्याप्त है तथा बादर तेजसकाय साक के किसी हिस्से में होती है। अब इनका काल विभाग चार प्रकार से कहता हू।

संतर्ह पप्प थार्हिया, अपत्तसिया वि य ।

ठिह पडुध मार्हिया, सपत्तसिया वि य ॥११२॥

अग्निकाय के जीव प्रवाह की अपेक्षा मनादि समस्त और स्थिति की अपेक्षा सादिसाम्त है ॥११२॥

तिप्पेव अहोरत्ता, उच्छोसेण वियाहिया ।

आउठिई तळणं, अतोमुहुच जहभिया ॥११३॥

अग्निकाय के जीवों की आयु स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीस दिन रात की हाठी है ॥११३॥

असंखकासमुकोसं, अतोमुहुच जहभिया ।

कायठिह तेउय्यं, व काय तु अमुचम्नो ॥११४॥

कायस्थिति, सततवास रहने पर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० असह्यकाल की होती है ॥११४॥

अणंतकालमुक्तोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।

विजटम्मि सए काए, तेउजीवाण अंतरं ॥११५॥

तेजस्काय कां छोड़कर जीव, पुन उसीमें जन्मे, तो इसमें अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अन्तकाल का होता है ।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।

संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥११६॥

इनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सत्थान के आदेश से हजारों विधान होते हैं ॥११६॥

दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ।

पजत्तमपजत्ता, एवमेम दुहा पुणो ॥११७॥

वायुकाय के जीव, सूक्ष्म और बादर-ऐसे दो प्रकार के होते हैं । इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं ।

बायरा जे उ पजत्ता, पंचहा ते पक्कित्तिया ।

उक्कलिया-मंडलिया धण-गुंजा-सुद्धवाया य ॥११८॥

पर्याप्त बादर वायुकाय के पाच प्रकार हैं १ ठहर-ठहर कर चलने वाली, २ चक्राकार, ३ घनवायु, ४ गुंजने वाली और ५ शुद्ध वायु ॥११८॥

संवट्टणवाया य, शेगहा एवमायओ ।

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥११९॥

तथा संवर्तक वायु इत्यादि अनेक भेद हैं । सूक्ष्म वायु काय में से रहित मात्र एक ही प्रकार की होती है ॥११९॥

सुदुर्मा सम्बसोगम्भि, सोगदेसे य वायरा ।

इतो कासविमार्गं तु, तेसिं पुष्पं चठम्बिह ॥१२०॥

सूक्ष्म वायु, समस्त लोक में है और बाहर वायु लोक के एक देश में है । जब इनके कास विमार्ग का चार प्रकार से वर्णन करेंगे ॥१२०॥

संतर्हं पप्पसाईया, अपज्जवसिया वि य ।

त्थि पइच्च सार्हया, सपज्जवसिया वि य ॥१२१॥

प्रवाहापेक्षा वायुकाय अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादि साम्त है ॥१२१॥

विप्पेव सहस्साह, वासाणुकोसिया भवे ।

आतठिई वाऊर्णा, अतोसुदुत्त बहभिया ॥१२२॥

वायुकाय के बीबों की आयु स्थिति जबन्य अन्तर्मुहूर्त उ० तीन हजार वर्ष की होती है ॥१२२॥

असंसकाससुकोसं, अतोसुदुत्तं बहभिया ।

कायठिई वाऊर्णा, तं कायं तु अपुंसभो ॥१२३॥

वायुकाय के बीबों की काय स्थिति इसी काय में लगातार रहने की अपेक्षा जबन्य अन्तर्मुहूर्त, उ० असंख्य काल की है ॥१२३॥

अणंतकालमुक्तोसं, अंतोमुहुचं जहन्नयं ।

विजटम्मि सए काए, वाऊजीवाण अंतरं ॥१२४॥

वायुकाय को छोड़कर पुन उसी में उत्पन्न होने का
अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० अतन्तकाल का है ॥१२४॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।

संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१२५॥

वायु जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के
आदेश से हजारों विधान होते हैं ॥१२५॥

ओराला तसा जे उ, चउहा ते पकित्तिया ।

बेइंदिया तेइंदिया, चउरो पंचिंदिया चेव ॥१२६॥

बड़े वसकाय जीवों के चार प्रकार कहे हैं,—दो इन्द्रिय,
श्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पचेन्द्रिय ॥१२६॥

बेइंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।

पअत्तमपजत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१२७॥

दो इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद
हैं । इनके उत्तर भेद मूक्त से सुनो ॥१२७॥

किमिणो सोमंगला चेव, अलसा माइवाहया ।

वासीमुहा य सिप्पीया, संछा संखणगा तहा ॥१२८॥

पल्लोयाणुल्लया चेव, तहेव य वराडगा ।

जलूगा जालगा चेव, चंदगा य तहेव य ॥१२९॥

कुमि सुमंगल प्रसन्निया मातृवाहक वासीमस सीप
 शङ्ख धोर लघुशङ्ख आदि । पत्सक अनुपत्सक कपदिका
 बोक बासक धोर चन्दनिया आदि अनेक प्रकार के वा इन्द्रिय
 वाले जीव कहे गये हैं ॥१२८-१२९॥

इह बेईदिया एए, योगहा इवमायओ ।

सोगेगदेसे ते सन्वे, न सन्वत्थ वियादिया ॥१३०॥

ये द्वीन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के हैं और लोक के
 अमुक विभाग में ही रहते हैं सबत्र नहीं ॥११

सुंत्थ पप्पसाईया, अपत्तवसिया वि य ।

ठिइ पट्टव साईया, सपत्तवसिया वि य ॥१३१॥

ये जीव प्रवाह की अपेक्षा से आदि अन्त रहित हैं
 और स्थिति की अपेक्षा से आदि अन्त रहित हैं ॥१३१॥

वासए बारसावेइ उकोसेव वियादिया ।

बेईदियआठठिई, अतोमुहुत्त अइमिया ॥१३२॥

बेइन्द्रिय जीवों की आयुस्थिति व० अन्तर्मुहुत्त और
 उत्कृष्ट बारह वर्ष की है ॥१३२॥

संखेजकालमुकोसं, अतोमुहुत्त अइमिया ।

बेईदियकायठिई, तं काय तु अमुचओ ॥१३३॥

सतत निवास की अपेक्षा बन्द्रिय जीवों की काय
 स्थिति अपम्य अन्तर्मुहुत्त और व सख्यात कास की है ।

अणंतकालमुक्तोसं, अंतोमुद्गुत्तं जहन्नयं ।
बेइन्द्रियजीवाणं, अंतरं च वियाहियं ॥१३४॥

यह शरीर छोड़ कर पुन बेन्द्रिय काय में जन्म लेने का अन्तरकाल ज० अन्तर्मूहूर्तं, उ० अनन्त काल का है ।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सदस्ससो ॥१३५॥

इनके वणं, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा हजारों भेद होते हैं ॥१३५॥

तेइन्द्रिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं मेए सुणेह मे ॥१३६॥

तेइन्द्रिय जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं । अब इनके उत्तर भेद मूझ से सुनो ॥१३६॥

कुंथुपिवीलिउड्ढंसा, उक्कल्लुदेहिया तहा ।
तण्हारा कट्ठहारा य, मालुगा पत्तहारगा ॥१३७॥
कप्पासट्ठिमिंजा य, तिंदुगा तउसमिंजगा ।
सदावरी य गुम्भी य, बोधन्वा इन्दगाइया ॥१३८॥
इन्दगोवगमाइया, खेमहा एवमायओ ।
लोगेगदेसे ते सन्वे, न सन्वत्थ वियाहिया ॥१३९॥

कुन्थू, पिपीलिका, चट्ठा, उपदेहिका, तृणहारक, काष्ठहारक, मालुका, पत्राहारक, कापासिक, अस्थिजात,

तिन्दुक प्रपुष मित्रग सतावरी मूलमी इन्द्रकायिक तथा
इन्द्रगोपक इत्यादि अनेक प्रकार के तेइन्द्रिय जीव ह । ये माक
के एक भाग में ही रहते हैं सर्वत्र नहीं ॥१३७ से १३८॥

संतइ पण्य साईया, अपल्लवसिया वि य ।

ठिं पडुब साईया, सपल्लवसिया वि य ॥१४०॥

तेइन्द्रियकाय प्रबाह की अपेक्षा आदि अन्त रहित जोर
स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त सहित है ॥१४०॥

एगूबपयबहोरचा, ठकोसेय बियाहिया ।

तेइन्द्रियआठठिई, अठोमुहुच अइभिया ॥१४१॥

तेइन्द्रिय जीवों की आयु स्थिति अ० अन्तर्मुहूर्त घोर
उ० अन्तर्वास दिन रात की होती है ॥१४१॥

संखिजकासमुकोसा, अठोमुहुच अइभिया ।

तेइन्द्रियकायठिई, त काय तु अमुषओ ॥१४२॥

सतत निवास की अपेक्षा तेइन्द्रिय जीवों की कायस्थिति
अ० अन्तर्मुहूर्त उ० संख्यात कास की है ॥१४२॥

अयांतकासमुकोसं, अठोमुहुच अइभिय ।

तेइन्द्रियधीवायां, अतरं तु बियाहिय ॥१४३॥

इनके अन्य काय में अन्त लेकर पुन तेइन्द्रिय काय में
उत्पन्न होने का अन्तर अ० अन्तर्मुहूर्त उ० अन्त कास का है ।

एयसि वयणओ येह, गंजओ रसफासओ ।

संठायादेसओ वा वि, बिहायाइ सइस्सओ ॥१४४॥

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और सस्थान के आदेश से तेइन्द्रिय जीवों के हजारों भेद होते हैं ॥१४४॥

चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकितिया ।

पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१४५॥

पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार चार इन्द्रिय वाले जीवों के दो भेद हैं । अब इनके उत्तर भेद सुनो ॥१४५॥

अधिया पोत्तिया चेव, मच्छिया मसगा तहा ।

भमरे कीडपयंगे य, ढिकुणे कुंकुणे तहा ॥१४६॥

कुक्कुडे सिंगरीडी य, नंदावत्ते य विच्छिए ।

डोले भिंगिरीडी य, विरिली अच्छिवेहए ॥१४७॥

अच्छिले माहए अच्छि-विचित्ते चित्तपत्तए ।

उहिंजलिया जलकारी य, नियया तंवगाइया ॥१४८॥

इय चउरिंदिया एए, खेगहा एवमायओ ।

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सन्वे परिकित्तिया ॥१४९॥

अन्धक, पीतक, मक्षिका, मणक, भ्रमर कीट, पतंग, ढिकण, कुकण, कुकुंट, सिंगरीटी, नन्दावर्त विच्छू, डोल, भृंग रीटक, अक्षिवेधक, अक्षिल, मागध, अक्षिरोडक, विचित्र, चित्र-पत्रक, उपविजलका, जलकारी, नोचक और ताम्रक आदि अनेक प्रकार के चार इन्द्रिय वाले जीव कहे हैं । ये सब लोक के एक हिस्से में रहते हैं ॥१४६ से १४९॥

संस्पर्शं पृष्णं सार्द्धा, अपञ्चवसिया वि य ।

ठिङ् पङ्कज सार्द्धा, सपञ्चवसिया वि य ॥१५०॥

प्रवाह की अपेक्षा से जोब आदि अन्त से रहित है
और स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त सहित है ॥१५०॥

स्वपेक्ष य मासा उ, उक्तोत्पेक्ष विद्यादिया ।

चतुरिदियभातठिङ्, अतोमुद्रुच सद्भिनिया १५१॥

चारद्विगुण बाडे जीवों की आयु स्थिति अ० अन्त-
मुहूर्त और उ० स० महीने की कही है ॥१५१॥

संस्पर्शकालमुक्तोत्, अतोमुद्रुच सद्भिनय ।

चतुरिदियकल्पठिङ्, तं कार्यं तु अमुं पञ्चो ॥१५२॥

चतुरेन्द्रिय काय में ही निरन्तर जीव रहे तो जबम्ब
अन्तर्मुहूर्त और उ० स० काय का काल तक रहता है ॥१५२॥

अर्थात्कालमुक्तोत्, अतोमुद्रुच सद्भिनय ।

विद्वद्विन्मि सए काय, अंतरेयं विद्यादियं ॥१५३॥

अन्म काय में उत्पन्न होकर पुनः चतुरेन्द्रिय काय में
जन्म लेने का अन्तर अ० अन्तर्मुहूर्त उ० अर्थात्काल का है ।

एयसिं बन्धुभ्यो वेद, गंधभ्यो रसफासभ्यो ।

संश्रयादेसभ्यो वा वि, विहायाम् सद्भिनयो ॥१५४॥

बर्ष अन्म रस स्पर्श और सस्वादा की अपेक्षा चतु-
रेन्द्रिय जीवों के हजारों भव होते हैं ॥१५४॥

पंचिदिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया ।

गेरइया तिरिक्खा य, मणुया देवा य आहिया ॥१५५॥

पचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के कहे हैं, यथा—नैरयिक,
तिर्यंच, मनुष्य और देव ॥१५५॥

नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तसु भवे ।

रयणाभसकराभा, बालुयाभा य आहिया ॥१५६॥

पंकाभा धूमाभा, तमा तमतमा तहा ।

इइ नेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया * ॥१५७॥

रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पद्मप्रभा,
धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमाप्रभा । इन सात पृथ्वियों
में रहने वाले नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं ॥१५६-१५७॥

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे उ वियाहिया ।

इत्तो कालविभागं तु, तेसिं बुच्छं चउव्विहं ॥१५८॥

ये सभी नारक जीव, लोक के एक विभाग में रहते हैं ।
अब कालकी अपेक्षा इनके चार भेद कहता हूँ ॥१५८॥

* धम्मा घसगा सिला, तहां अज्जणरिट्ठमा ।

मघा माघवई खेव, णारया य वियाहिया ॥१॥

रयणाई गोत्तमो खेव, तहा धम्माइ णाममो ।

इइ नेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ॥२॥

उपरोक्त गायी में नरकों के नाम बताये गये हैं । इन गायकों
की दीपिकाकार ने उद्धृत की है ।

संख्यं पण्य शार्ङ्ग्या, अपञ्चवसिया वि य ।

ठिखं पणुष शार्ङ्ग्या, सपञ्चवसिया वि य ॥१५६॥

प्रवाह की अपेक्षा नारक आदि धन्त रहित हैं और
स्थिति की अपेक्षा आदि धन्त सहित हैं ॥१५६॥

सागरोदममेगं तु, उक्कोसेय वियादिया ।

पढमाइ अइन्नेर्ण, दसबाससहस्रिया ॥१५७॥

पहली नारकी में स्थिति ज दस हजार नव की घोर
उ० एक सागरोदम की है ॥१५७॥

तिययेव सागराऊ, उक्कोसेय वियादिया ।

दुषाए अइन्नेर्ण, एगं तु सागरोदम ॥१५८॥

दूसरी नारक में स्थिति ज एक सागरोदम और उ०
तीस सागरोदम की है ॥१५८॥

सत्तेव सागराऊ, उक्कोसेय वियादिया ।

दुषाए अइन्नेर्ण, तिययेव सागरोदमा १५९॥

तीसरी नारक में आयु स्थिति ज० १ सा० उ० ७ सा० ।

दससागरोदमाऊ, उक्कोसेय वियादिया ।

अउरथीए अइन्नेर्ण, सत्तेव सागरोदमा ॥१६०॥

चौथी नारक में स्थिति ज० ७ सा० उ० १० सा० की ।

सत्तरससागराऊ, उक्कोसेय वियादिया ।

पञ्चमाए अइन्नेर्ण, दस येव सागरोदमा ॥१६१॥

पाचवी नरक में ज० १० सा० उ० १७ सा० की ।

बावीससागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।

छट्टीए जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥१६५॥

छठी नरक में ज० १७ सा० उ० २२ सा० की ।

तेत्तीससागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।

सत्तमाए जहन्नेणं, बावीस सागरोवमा ॥१६६॥

सातवी नरक में ज० २२ उ० ३३ सागरोवम की ।

जा चेव आउठिई, नेरइयाणं वियाहिया ।

सा तेसिं कायठिई, जहन्नुकोसिया भवे ॥१६७॥

नारक जीवो की जितनी आयु स्थिति है, उतनी ही जघन्य उत्कृष्ट काय स्थिति है ॥१६७॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुच्च जहन्नयं ।

विजटम्मि सए काए, नेरइयाणं तु अंतरं ॥१६८॥

नारक जीव, स्वकाय छोडकर पुन नारक हो, तो इसका अन्तर काल ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्तकाल का है ।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।

संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१६९॥

इनके वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा जारों भेद होते हैं ॥१६९॥

पश्चिदियतिरिक्त्वा ठ, इविहा से विपादिया ।

सम्पुष्टिमतिरिक्त्वा ठ, यम्भकतिया तहा ॥१७०॥

पश्चिदिय तिर्यञ्च बीज दो प्रकार के होते हैं—१ सम्पुष्टिम और २ यर्म से उत्पन्न होने वाले ॥१७०॥

इविहा वि से भवे तिविहा, जसयरा यसयरा तहा ।

नहयरा य बोधम्भा, तेसि मेण सुबेह मे ॥१७१॥

इन दोनों प्रकार के तिर्यञ्चपश्चिदियों के तीन भेद हैं—जसचर, यसचर और नमचर । अब इनके भेदों को सुनो ।

मज्झा य कञ्जमा य, गाहा य मगरा तहा ।

सुसुमारा य बोधम्भा, पचहा जसयरा हिया ॥१७२॥

मज्झ, कञ्ज ग्राह मकर, और सुसुमार ये पाँच भेद जसचरों के हैं ॥१७२॥

सोणगदेसे ते सप्पे, न सम्बत्थ विपादिया ।

इत्तो कसलविमार्गं तु, तेसि पुञ्ज चउम्भिइ ॥१७३॥

ये बीज लोक के समक हिस्से में ही हैं—सर्वत्र नहीं । इनका काल विमार्ग चार प्रकार से है ॥१७३॥

संख पप्प सार्द्धया, अपजवसिया वि य ।

ठिं पट्ठ सार्द्धया, सपजवसिया वि य ॥१७४॥

प्रवाह की अपेक्षा जसचर आदि यस्त रहित और स्थिति की अपेक्षा आदि यस्त सहित हैं ॥१७४॥

एगा य पुव्वकोडीओ, उक्कोसेण वियाहिया ।

आउठिई जलयराणां, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१७५॥

जलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियो की आयु स्थिति ज०
अन्तर्मुहूर्त और उ० एक करोड़ पूर्व की है ॥१७५॥

पुव्वकोडीपुहुत्तं तु, उक्कोसेण वियाहिया ।

कायठिई जलयराणां, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१७६॥

जलचरो की कायस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० दो
से लगाकर नीं करोड़ पूर्व तक की होती है ॥१७६॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।

विज्जडम्मि सए काए, जलयराणां तु अंतरं ॥१७७॥

यदि जलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय अन्यत्र जाकर पुनः स्व-
काय में जन्मे, तो इसका अन्तर काल ज० अन्तर्मुहूर्त और उ०
अनन्त काल का होता है ॥१७७॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।

संठाणादेसओ वा वि, विहाण्णइं सहस्ससो ॥१७८॥

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा जलचरों
के हजारों भेद होते हैं ॥१७८॥

चउप्पया य परिसप्पां, दुविहा थलयरा भवे ।

चउप्पया चउन्विहा, ते मे किच्चयओ सुण ॥१७९॥

स्थलचर जीव दो प्रकार के हैं—१ चतुष्पाद और २ परि-
सर्प । चतुष्पाद चार प्रकार के होते हैं । इनके भेदों को सुनो ।

एगसुरा दुसुरा येन, गेडीपय सशप्पया ।
इयमाई गोशमाई, गयमाई सीहमाइखो ॥१८०॥

एक सुर वाले, प्रववादि वा सुर वाले माय भावि
मंडीपय, हाथी भावि और सनक्षपव सिंह भावि, ॥१८०॥

मुओरगपरिमप्पा य, परिसप्पा दुविहा भवे ।
गोहाई अदिमाई य, इक्का खेगहा भवे ॥१८१॥

परिसर्प के दो भेद १ पोह भावि मुबपरिसर्प और
२ सर्पादि, उत्परिसप । इनके अनेक भव हैं ॥१८१॥

ओएगदेसे से सप्पे, न सम्बत्थ वियाहिया ।।
इपो क्खविमाणं तु, तेसि ओप्पं चठम्मिइ ॥१८२॥

ये जीव सोक के देश भाग में ही है सर्वत्र नहीं ।
काल की अपेक्षा इनके आर भव कहता है ॥१८२॥

संतइ एप्पं आईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइ पइय साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१८३॥

प्रवाह की अपेक्षा ये जीव अनादि अनन्त हैं और स्थिति
की अपेक्षा सावि सान्त है ॥१८३॥

पल्लिओबमाइ तिन्नि उ, उओसेण वियाहिया ।
आउठिई यस्तयराणं, अतोमुहुत्तं अहमिया ॥१८४॥

स्वसचरों की आयु स्थिति ज० अतर्मुहुत्त उ० तीन
पस्यापम की है ॥१८४॥

पलिओधमाइं तिन्नि उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
 पुब्बकोडिपुहुत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ।
 कायठिई, थलयराणं, अंतरं तेसिमं भवे ॥१८५॥

स्थलचरो को काय स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीन
 पल्योपम सहित दो से लगाकर नौकरीइ पूर्व तक की कही गई ।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
 विजडम्मि सए काए, थलयराणं तु अंतरं ॥१८६॥

स्थलचरकाय - में पुनः उत्पन्न होने का अन्तर ज०
 अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है ॥१८६॥

चम्मे उ लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया ।
 विययपक्खी य बोधव्वा, पक्खिणो य चउच्चिहा ॥१८७॥

चर्म पक्षी, रोमपक्षी, समुद्र पक्षी और वितत पक्षी,
 इस प्रकार पक्षियों के चार भेद हैं ॥१८७॥

लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।
 इत्तो कालविभागं तु, तेसि वोच्छं चउच्चिहं ॥१८८॥

ये जीव, लोक के एक हिस्से में ही हैं, सर्वत्र नहीं ।
 काल भेद से ये चार प्रकार के कहे गये हैं ॥१८८॥

संतइ पप्प साईया, अपज्जवसिया वि य ।
 ठिई पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१८९॥

प्रवाह की अपेक्षा घनादि घनमय और स्थिति की अपेक्षा सावि सार्थ है ॥१८६॥

पक्षिभोवमस्तु भाग्यो, असंख्यमायामो मये ।

आठठिई सहयराणं, अंतोमुद्रुच ब्रह्मनिपा ॥१८७॥

इन शेषों को प्रायः स्थिति ज० अन्तर्मुद्रुत और उ० पस्योपम के असंख्यात भाग्य प्रमाण है ॥१८७॥

असंख्यमायो पक्षियस्म, ठकोसेई ठ साहिया ।

पुष्पकोटिपुद्रुचं, अंतोमुद्रुच ब्रह्मनिपा ॥१८८॥

कायठिई सहयराणं, अंतरै तेसिम मये ।

अगतकायमुद्रुचं, अंतोमुद्रुच ब्रह्मनिपा ॥१८९॥

शेषर जीवों की कायस्थिति ज० अन्तर्मुद्रुत और उ० पस्योपम के असंख्य भाग्य सहित दो से लगाकर भी पुष्पकोटि की कही गई है । इनका अन्तर काय ज० अन्तर्मुद्रुत और उ० अन्तर्काय का है ॥१८९-१९०॥

एतसि वषट्मो वेद, गंधमो रसकोसमो ।

संख्यादेसमो वा वि, निदायाई सहस्वतो ॥१९१॥

बहु गन्ध रस स्पर्श और सस्यान की अपेक्षा शेषर विषय पक्षियों के हजारों में होते हैं ॥१९१॥

मशुया दुविह मेया उ, ते मे किययमो सुख ।

अम्भुजिमा य मशुया, यम्भुजंतिपा तदा ॥१९२॥

मनुष्य के समूच्छिम और गर्भज, ऐसे दो भेद हैं ।

गन्भवकृतिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया ।

कम्मअकम्मभूमा य, अंतरदीवया तहा ॥१६५॥

गर्भोत्पन्न मनुष्यों के तीन प्रकार हैं-कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तरद्वीपक ॥१६५॥

पण्णरस-तीसविहा, मेया दुअडुवीसई ।

संखा-उ कमसो तेसि, इइ एसा वियाहिया ॥१६६॥

कर्मभूमि के १५, अकर्मभूमि के ३० और अन्तरद्वीप के मनुष्यों के ५६ भेद हैं ॥१६६॥

सम्मच्छिमाण एसेव, भेओ होइ वियाहियो ।

सोगस एगदेसम्मि, ते सव्वेवि वियाहिया ॥१६७॥

गर्भज मनुष्यों के समान समूच्छिम मनुष्यों के भी भेद हैं । ये सभी मनुष्यलोक के एक देश में हैं ॥१६७॥

संतइ-पप्प छाईया, अपंजवसिया वि य ।

ठिंड पडुअ साईया, सपजवसिया वि य ॥१६८॥

मनुष्य, प्रवाहापेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त हैं ॥१६८॥

पलिओवसाई तिमि उ, उकोसेण वियाहिया ।

आउठिई भणुयाणा, अंतोमुहुत्तजइन्निया ॥१६९॥

मनुष्यों की आयुस्थिति ष० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीस
पस्यापम की है ॥१९६॥

पल्लिओरमाई तिन्नि उ, उफोसेख वियाहिया ।

पुंखकोटिपुहुतेण, अतोमुहुच अहन्निया ॥२००॥

मनुष्यों की कायस्थिति ष० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीस
पस्यापम सहित २ से १ घूबेकोटि की है ॥२००॥

कयठिई मणुयण, अतरं वेसिम मवे ।

अणंतकसमुफोसं, अतोमुहुच अहन्नयं ॥२०१॥

मनुष्यों का उसी काय में पुन उत्पन्न होने का अन्तर
ष० अन्तर्मुहूर्त और उ० अन्तर्काल का होता है ॥२०१॥

एएसि बणओ येव, गंधओ रसफासओ ।

संछाणादेसओ वा रि, विहासाइ सहसस्सो ॥२०२॥

बल गंध रस स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा मनुष्यों के
हजारों प्रकार है ॥२०२॥

देवा चउविहा बुचा, ते मे किचयओ सुण ।

मोमिअ पाणमतर, ओइस वेमाणिया तहा ॥२०३॥

देवों के चार भेद हैं—मनपति वाणव्यन्तर, पयोविपी
और वैमानिक ॥२०३॥

दसहा उ मवसपासी, अट्टहा बसचारियो ।

पपरिहा ओइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ॥२०४॥

दस प्रकार के भवनपति, आठ प्रकार के व्यन्तर, पाँच प्रकार के ज्योतिषी और दो प्रकार के वैमानिक देव हैं ।

असुरा नाग सुवर्णा, विज्जू अग्नी य आहिया ।

दीवोदही दिसा वाया, थणिया भवणवासिणो ॥२०५॥

असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्तकुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनित्तकुमार—ये दस प्रकार के भवनपति देव हैं ॥२०५॥

पिसाय भूया जक्खा य, रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा ।

महोरगा य गंधब्बा, थड्ढविहा वाणमंतरा ॥२०६॥

पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व—ये आठ प्रकार 'वाणव्यन्तर' देवों के हैं ॥२०६॥

चंदा सूरु य नक्खत्ता, महा तारागणा तहा ।

ठिया विचारिणो चेव, पंचहा जोइसालया ॥२०७॥

चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारागण—ये पाँच प्रकार के ज्योतिषी देव, मनुष्य लोक में चलते रहते हैं और मनुष्य लोक के बाहर स्थिर हैं ॥२०७॥

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ।

कप्पोवगा य वोधब्बा, कण्णार्इया तहेव य ॥२०८॥

वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं,—१ कल्पोत्पन्न और २ कल्पातीत ॥२०८॥

कप्पोवगा य शारसदा, सोहम्भितासगा तथा ।

सर्पाकुमारमाहिदा, बमलोगा य सतगा ॥२०६॥

महासुका सहस्तरा, आश्रया पाशया तथा ।

आरबा अश्रुया येव, इह कप्पोवगा सुरा ॥२१०॥

कप्पोत्पन्न ब्रह्मानिक देव बारह प्रकार के हैं यथा—
सोमर्मे ईशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म सान्तक महाशुक
सहस्रार आनत प्राणत आरण श्रीर अश्रुत ॥२ ६-२१०॥

कप्पाइया ठ जे देवा, बुविहा ते वियाहिया ।

गेविजाऽणुचरा येव, गेविजा नवहा तहि ॥२११॥

कप्पातीठ देव दो प्रकार के कहे हैं—ईवेयक और
अमुत्तर विमानवासी । ईवेयक के जो प्रकार हैं ॥२११॥

हेट्टिमा हेट्टिमा येव, इट्टिमा मज्झिमा तथा ।

हेट्टिमा उपरिमा येव, मज्झिमा हेट्टिमा तथा ॥२१२॥

मज्झिमा मज्झिमा येव, मज्झिमा उवरिमा तथा ।

उपरिमा हेट्टिमा येव, उवरिमा मज्झिमा तथा ॥२१३॥

उवरिमा उवरिमा येव, इह गोविजगा सुरा ।

१ नीचे की त्रिक के नीचे के देवलोक २ नीचे की
त्रिक के मध्य के देवलोक ३ नीचे की त्रिक के ऊपर के देव
लोक ४ मध्य की त्रिक के नीचे के देवलोक ५ मध्य त्रिक के
मध्य के देवलोक ६ मध्य त्रिक के ऊपर के देवलोक ७ ऊपर

की त्रिक के नीचे के देवलोक ८ ऊपर की त्रिक के मध्य के देवलोक और ९ ऊपर की त्रिक के ऊपर के देवलोक,—ये नौ भेद प्रवेयक देवों के हैं ॥२१२-२१३॥

विजया वैजयंता य, जयंता अपराजिया ॥२१४॥

सर्वदुःखसिद्धिदा चैव, पंचहाणुत्तरा सुरा ।

इह वैमाण्या एए, योगदा एवमायत्रो ॥२१५॥

विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, और सर्वार्थसिद्ध,— ये पांच प्रकार अनुत्तरदिमानवासी देवों के हैं । इस प्रकार वैमानिक देवों के अनेक प्रकार हैं ॥२१४-२१५॥

लोगस्त एगदेसम्मि, ते सब्बे वि वियाहिया ।

इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वोच्चं चउच्चिहं ॥२१६॥

ये सभी देव, लोक के एक भाग में रहते हैं । काल की अपेक्षा इन के चार भेद हैं ॥२१६॥

संतंइ पप्प साईया, अपज्जवसिया वि य ।

ठिं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥२१७॥

प्रवाह की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित और स्थिति की अपेक्षा सादि सपर्यवसित है ॥२१७॥

साहिर्यं सागरं इकं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

भोमेज्जाण जहन्नेणां, दसवाससहस्सिया ॥२१८॥

भवनपतियों की स्थिति ज० दसहजार वर्ष और उ० कुछ अधिक एक सागरोपम की है ॥२१८॥

पक्षिभ्योऽपममेगं तु उक्थोसेष ठिई मवे ।

वंतरायां अहभेभं, दसवाससहस्त्रिया ॥२१६॥

अन्तरों की स्थिति ज० बसहुआर बय उ० एक पक्ष्योपम की है ॥२१६॥

पक्षिभ्योऽपममेगं तु, वाससहस्त्रेय माहिर्य ।

पक्षिभ्योऽपमऽहमागो, जोइसेसु अहभिया ॥२२०॥

ज्योतिषी देवों की स्थिति ज० पक्ष्योपम के आठवें भाग और उ० सात बर्य अधिक एक पक्ष्योपम की है ॥२२०॥

दो चैव सागराः, उक्थोसेष विषादिया ।

सोहम्ममि अहभेयां, एगं च पक्षिभ्योऽपम ॥२२१॥

सोमं देवों की स्थिति ज० एक पक्ष्योपम की और उ० दो सागरोपम की है ॥२२१॥

सागरा साहिया दुन्नि, उक्थोसेष विषादिया ।

ईसाणम्मि अहन्नेयां, साहिय पक्षिभ्योऽपम ॥२२२॥

ईशान देवों की स्थिति ज० एक पक्ष्योपम से कुछ अधिक और उ० दो सागरोपम से अधिक है ॥२२२॥

सागराणि य सत्तव, उक्थोसेष ठिई मवे ।

सर्गकुमारै अहन्नेयां, दुन्नि ऊ सागरोपमा ॥२२३॥

समकुमार देवों की स्थिति ज० दो सागरोपम उ० सात सागरोपम की है ॥२२३॥

साहिया सागरा सत्त, उक्कोसेण ठिई भवे ।

माहिंदम्मि जहन्नेणां, साहिया दोन्ति सागरा ॥२२४॥

माहेन्द्र देवों की स्थिति ज० दो सागरोपम से अधिक
और उ० सात सागरोपम से अधिक है ॥२२४॥

दस चैव सागराहं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

बंभलोए जहन्नेणां, सत्त उ सागरोवमा ॥२२५॥

ब्रह्मलोक के देवों की ज० ७ सा० उ० १० सा० ।

चउदस उ सागराहं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

लंतगम्मि जहन्नेणां, दस उ सागरोवमा ॥२२६॥

लान्तक देवों की ज० १० सा० उ० १४ सा० ।

सत्तरस सागराहं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

महासुक्के जहन्नेणां, चउदस सागरोवमा ॥२२७॥

महाशुक्र देवों की ज० १४ सा० उ० १७ सा० ।

अट्टारस सागराहं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

सहस्रारे जहन्नेणां, सत्तरस सागरोवमा ॥२२८॥

सहस्रार देवों की ज० १७ सा० उ० १८ सा० ।

सागरा अउण्णीसं तुं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

आणयम्मि जहन्नेणां, अट्टारस सागरोवमा ॥२२९॥

आणत देवों की ज० १८ सा० उ० १९ सा० ।

वीसं तु सागराः, उक्तोत्तरेषु तिष्ठे मये ।
पाशपद्मि बहन्नेर्ण, सागरा अठवीसई ॥२३०॥

प्राणत देवों की ज० १६ सा० उ० २० सा० ।

सागरा इक्ष्वीसं तु, उक्तोत्तरेषु तिष्ठे मये ।
आर्यपद्मि बहन्नेर्ण, वीसई सागरोपमा ॥२३१॥

भारण देवों की ज० २० सा० उ० २१ सा० ।

बाबीसं सागराः, उक्तोत्तरेषु तिष्ठे मये ।
अश्वपद्मि बहन्नेर्ण, सागरा इक्ष्वीसई ॥२३२॥

अश्वपद्म देवों की ज० २१ सा० उ० २२ सा० ।

तेबीस सागराः, उक्तोत्तरेषु तिष्ठे मये ।
पद्मपद्मि बहन्नेर्ण, बाबीसं सागरोपमा ॥२३३॥

प्रथम प्रवेयक के देवलोक के देवों की स्थिति ज० २२
सागरोपम की घौर उ० २३ सागरोपम की है ॥२३३॥

अठवीस सागराः, उक्तोत्तरेषु तिष्ठे मये ।
विद्यपद्मि बहन्नेर्ण, तेबीसं सागरोपमा ॥२३४॥

दूसरे प्रवेयक के देवों की ज० २३ उ० २४ सा० ।

पञ्चवीस सागराः, उक्तोत्तरेषु तिष्ठे मये ।
तद्वपद्मि बहन्नेर्ण, अठवीसं सागरोपमा ॥२३५॥

तीसरे प्रवेयक के देवों की ज० २४ उ० २५ सा० की ।

छवीस सागराहं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

चउत्थम्मि जहन्नेणां, सागरा पणवीसइ ॥२३६॥

चौथे ग्रं० के देवो की ज० २५ उ० २६ सा० की ।

सागरा सत्तवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।

पंचमम्मि जहन्नेणां, सागरा उ छवीसई ॥२३७॥

पाचवे ग्रं० के देवो की ज० २६ उ० २७ सा० की ।

सागरा अट्ठवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।

छट्ठम्मि जहन्नेण, सागरा सत्तवीसई ॥२३८॥

छठे ग्रं० के देवो की ज० २७ उ० २८ सागर की ।

सागरा अउणतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।

सत्तमम्मि जहन्नेणां, सागरा अट्ठवीसई ॥२३९॥

सातवे ग्रं० के देवो की ज० २८ उ० २९ सागर की ।

तीसं तु सागराहं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

अट्ठमम्मि जहन्नेणां, सागरा अउणतीसइ ॥२४०॥

आठवे ग्रं० के देवो की ज० २९ उ० ३० सागर की ।

सागरा इक्कतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।

नवमम्मि जहन्नेणां, तीसई सागरोवमा ॥२४१॥

नौवे ग्रं० के देवो की ज० ३० उ० ३१ सागर की ।

तेत्तीस सागराहं, उक्कोसेण ठिई भवे ।

चउसुं पि विजयार्हसु, जहन्ना एकतीसई ॥२४२॥

विष्वादि चार अनुत्तर विमानों की स्थिति अ० ११
उ० ३३ सागरोपम की है ॥२४२॥

अज्रहमणुकोसं, तेत्तीसं सागरोपमा ।
महाविमाससम्बद्धे, ठिई एसा विपाहिया ॥२४३॥

सर्वविशिष्ट महाविमान के देवों की स्थिति अधम्य
और उत्कृष्टता से रहित मात्र तैत्तीस सागरोपम की है ।

आ चैव उ आउठिई, देवायां तु विपाहिया ।
सा तेसिं कायठिई, सहन्नुकोसिया भवे ॥२४४॥

देवों की आ काय स्थिति है वही भव स्थिति है ।

अर्थात्कालमुकोसं, अतोमुदुचं सहभय ।
विमदम्मि सए काय, देवायां दुअ अतरं ॥२४५॥

पुनः देवकाय प्राप्त करने का अन्तर अ० अन्तर्मुदुचं
और उ० अमन्तकास का होता है ॥२४५॥

अर्थात्कालमुकोसं, वासपुदुचं सहभय ।
आशयार्थं देवायां, मेविस्सार्णं तु अतरं २४६॥

आगत आदि देवों का अन्तर काल अ० वो से समा कच
नो वर्य और उ० अमन्तकास का है ॥२४६॥

संखेअ सागरुकोसं, वासपुदुचं सहभयं ।
अनुत्तरायां देवायां, अंतरेयं विपाहिय ॥२४७॥

अनृत्तर विमानवांसी देवो का अन्तरकाल ज० दो से
गनाकर तो वर्ष, ३० सख्यात सागरोपम का होता है ॥२४७॥

एएसि वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।

संठाणादेसओ वावि, विहाणंगं सहस्ससो ॥२४८॥

इन देवों के वर्ण, गंध रस स्पर्श और सस्थान की
अपेक्षा हजारों प्रकार होते हैं ॥२४८॥

संसारस्था य सिद्धा य, इय जीवा वियाहिया ।

रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहावि य ॥२४९॥

इस प्रकार संसारस्थ और सिद्ध जीवों और रूपों तथा
अरूपों ऐसे दो प्रकार के अजीवों का कथन किया गया ।

इय जीवमजीवे य, सोच्चा सद्विहणं य ।

सव्वनयाण अणुमए, रमेज संजमे मुणी ॥२५०॥

मुनि इस प्रकार, जीव और अजीव का स्वरूप सुन कर
तथा सभी नयों के अनुकूल श्रद्धांन करके समय में रमण करे ।

तथो बहूणि वामाणि, सामयणमणुपांलिया ।

इमेष कम्मजोगेण, अप्पाणं संलिहे मुणी ॥२५१॥

फिर बहुत वर्षों तक संयम का पालन करके इस कर्म
के योग से मुनि अपनी आत्मा को कुश करे ॥२५१॥

बारसेव उ वासाई, संलेहुकोसिया भवे ।

संवच्छरं मज्झिमिया, छम्मासाय जहमिया ॥२५२॥

सकलसमा वषट्म्यं च महीने की, मास्यम एक वर्ष की
ओर उत्कृष्ट बारह वर्ष की होता है ॥२५२॥

पठमे वासवउक्कम्मि, विगई निज्जुहणं करे ।

विण्ण वासवउक्कम्मि, विचित्तं तु त्वं चरे ॥२५३॥

प्रथम के चार वर्ष में विमय का त्याग करे और दूसरे
चार वर्षों में विविध प्रकार का तप करे ॥२५३॥

एगंतरमायामं, कहु संवच्छरे दुवे ।

तमो संवच्छरइ तु, नाइविगिहू त्वं चरे ॥२५४॥

आयम्बिल के पारणे से द्वा वर्ष तक एकान्तर तप करे
फिर छ मास तक अति विवट तप नहीं करे ॥२५४॥

तमो संवच्छरइ तु, विगिहू तु तव चरे ।

परिमिय चेव आयाम, तम्मि संवच्छरे करे ॥२५५॥

फिर छ मास तक विवट तप करे और पारणे में
आयम्बिल तप करे ॥२५५॥

कोडीसहियमायामं, कहु संवच्छरे सुणी ।

मासइ-मासिएयां तु, आहारेयां त्वं चरे ॥२५६॥

एक वर्ष काटी सहित तप करे और आयम्बिल से
पारणा करे । फिर मास या अर्धमास तक आहार त्याग कर
तपस्या करे ॥२५६॥

कदप्पमामिओगं च, किम्बिसियं मोहमासुरत्त च ।

एयाओ दुमार्हओ, मरबम्मि विराहिया हुंति ॥२५७॥

कन्दर्प, अभियोग, कित्विष, मोह, और आसुरी भावना, दुर्गति की हेतु है और मृत्यु समय में इन भावनाओं से जीव, विराधक हो जाते हैं ॥२५७॥

मिच्छादंसणरत्ता, सणियाणा हु हिंसगा ।

इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२५८॥

जो जीव मिथ्यादर्शन में रक्त, हिंसक तथा निदान युक्त करणी करने वाले हैं, वे इन भावनाओं में मरकर दुर्लभ बोधि होते हैं ॥२५८॥

सम्मदंसणरत्ता, अणियाणा सुकलेसमोगाढा ।

इय जे मरंति जीवा, तेसिं सुलहा भवे बोही ॥२५९॥

जो जीव, सम्यग्-दर्शन में अनुरक्त, धृति शुक्ल लेख्या वाले और निदान रहित क्रिया करने वाले हैं, वे इस भावना में मरकर परलोक में भुलभ-बोधि होते हैं ॥२५९॥

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।

इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२६०॥

मिथ्यादर्शन में रक्त, निदान युक्त करणी करने वाले और गाढ़ कुण्ठ लेख्यावाले जीव मरकर दुर्लभ-बोधि होते हैं ।

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणां जे करंति भावेण ।

अमला असंकलिद्धा, ते हुंति परिचसंसारी ॥२६१॥

जो श्री जिन वचनों में अनुरक्त होकर जिनवचनानुसार

घाव-युवक प्रनृष्ठान करते हैं वे भिष्यात्वादि मस और वस्त्रों से रहित होकर ससार का परिमित कर देते हैं ॥२६१॥

घासमरणासि बहुसो, अस्त्रममरणासि चैव बहुयाणि ।
मरिश्चि ते पराया, शिष्यवयसं मे न ज्ञानंति ॥२६२॥

जो जीव बिन वस्त्रों को नहीं जानते वे बहुत बार घास मरन और अस्त्रममरन का प्राप्त होते हैं ॥२६२॥

बहुधागमविभाषा, समाहितप्यायगा य शुद्धगाही ।
एणं कारयेणं, अरिहा आसोपयां सोढ ॥२६३॥

जो जीव बहुत से धामों के ज्ञाता, समाधि के उत्पन्न करने वाले और शुद्धगाही हैं वे इन कार्यों से आसोचना सुनने के योग्य होते हैं ॥२६३॥

कदप्य-कुक्कुपाहं तह, सीत-सहाव-इस-विगहाहिं ।
विमहावेति य परं, कदप्य मावयां कुवाह ॥२६४॥

जो कदप्य मुक्तिकारादि होंगी और विषया से दूसरों को विस्मित करते हैं वे कदप्य भावना का प्राचरण करते हैं ।

मताजोगं काठ, भूर्कम्म च जे पठंति ।
साय एस-इतिहेउं, अमिभोगं भावणं कुवाह ॥२६५॥

जो जीव साता एस और मृद्धि के लिये मन्त्र और मूतिकर्म करते हैं वे अमिभोगी भावना करते हैं ॥२६५॥

शाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघसाहूणं ।

माई अवण्णवाई, किन्विसियं भावणं कुणइ ॥२६६॥

ज्ञान, केवलज्ञानी, धर्माचार्य, सघ, और साधुओं की निन्दा करनेवाला, मायावी जीव, कित्त्वपी भावना उत्पन्न करता है ।

अणुचद्धरोसपसरो, तह य निमित्तम्मि होइ पडिसेवी ।

एएहिं कारणेहिं, आसुरियं भावणं कुणइ ॥२६७॥

निरस्तः रोष बढ़ाने वाला और त्रिकाल निमित्त का स्रवण करने वाला, इन कारणों से आसुरी भावना उत्पन्न करता है ।

सत्थग्गइणं विसमक्खणं च, जलणं च जलप्पवेसो य ।

अणायारभंडसेवी, जम्मणमरणाणि बंधंति ॥२६८॥

शस्त्र मारकर, विष-भक्षण कर, अग्नि में जलकर और पानी में डूब कर तथा आचार भ्रष्टता आदि से जो जीव मरता है, वह जन्म-मरण बढ़ाता है ॥२६८॥

इह पाउंकरे बुद्धे, णायए परिणिब्बुए ।

छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धियसम्मए ॥२६९॥ त्ति वेमि॥

। भवसिद्धक शीर्षों के सम्मत ऐसे उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन का प्रकट करके भ० श्री महावीर प्रभु, निर्वाण को प्राप्त हुए ॥२६९॥

* छत्तीसवाँ अध्ययन समाप्त *

❀ श्री उत्तराध्ययनं सूत्रं सम्पूर्णं ❀

वीरशुद्धि



पुष्पिस्तु पां समखा माहवा य, भगारिखो या परतिरियम्म य ।
से केई खेगंठदिय घम्ममाहु, भयेत्तिसं साहु समिक्खयाए ॥१॥

“श्रुमसे भगवन् शास्त्रम नुहस्व मीर धम्ममत्ताबलम्भो
अम पुस्यते है कि इस ससार से तिरामीबाला एकान्त हितकारी
और अनुपम धर्म किसने कहा है ? इस प्रकार श्री बम्बूस्वामीजी
ने धार्य सुमर्म यजधर से पूछा ॥१॥

कह य धार्ण कह इसपां से, सीस कह बायसुयस्स आसी ।
गायासि ण भिक्खु ! अहाठेण, अहासुयं बुद्धि अहा मिसंठ ।२।

उन प० महावीर स्वामी का ज्ञान स्थान कंसा था ?
उनका आधार कंसा था ? हे भगवन् ! आप इस विषय में
यथावत्त्व जानते ह और मुला भी है सा इपा करके फरमाइये ।

खेयमण से इससे महसी, अयांतवायी य अयांतवंसी ।
अससिखो अस्तुपहे ठियस्स, आहादि भम्म य धिई य पेदि ।३।

हे बम्बू ! प० महावीर स्वामी संसारी जीवों के दुःखों
को जानने में कुशल थे । वे महापुरुषों भगवान् भगवत् ज्ञानी
भगवत् धर्मी और महान् ऋषि थे । उनको अर्हन्त ब्रह्मा में सर्वम
पदार्थ भी धार्मों के समान देखनेवाले जानो और उनके बर्ष
तथा संयम की वृद्धता को बिचारो ॥३॥

उड्डं अहेयं तिरियं दिमासु, तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से शिचिणिचेहि समिक्ख पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ।४।

उन केवलज्ञानी भगवान् ने ऊँची, नीची और तिरछी दिशा में जो वस और स्थावर प्राणी हैं, उनको नित्य और अनित्य रूप से जानकर, उनके आधार के लिये धर्मरूपी द्वीप का सम्यग् रूप से प्रतिपादन किया ॥४॥

से सब्बदंसी अभिभूय गाणी, शिरामगंधे धिह्मं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सब्ब-जगंसि विजं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ।५।

वे सर्वदर्शी भगवान् अप्रतिहत केवलज्ञानवाले और निर्दोष चारित्र्यवाले थे । वे परम वीर प्रभु, अपनी आत्मा में स्थिर, परिग्रह से रहित, निर्भय, आयु रहित और समस्त पदार्थों के उत्कृष्ट ज्ञाता थे ॥५॥

से भूदपण्णे अणिए अचारी; ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सरिए वा, वदरोयणिंदे व तमं पगासे ॥६॥

वे महान् बुद्धिमान् प्रभु, अप्रतिबद्ध विहारो, ससार समुद्र से तिरने वाले, परम वीर और अनन्त ज्ञानवान् थे । वे सूर्य एवं वैरोचन अग्नि की तरह अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करके ज्ञान का प्रकाश करनेवाले थे ॥६॥

अणुत्तरं धम्ममिणां जिणाणां, शेया सुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदे व देवाण महाणुमावे, सहस्स शेता दिविणां विसिद्धे ।७।

जिस प्रकार हजारों देवों में इन्द्र रूप में ही और ऐश्वर्य में प्रधान होता है उसी प्रकार कौशिक माओ भ० महावीर स्वामी जिनेश्वरों के धर्म के सर्वोत्तम नेता थे ॥७॥

से पन्नया अन्नस्रयसागरे वा, भद्रोदही वासि अर्थात्पारे ।
अथास्ते वा अकसाह सुके, सके व देवाहिर्द्दे सुईम ॥८॥

जिसका पार नहीं पा सके ऐसे स्वयंपूरक महासमुद्र के सुख एवं अक्षय बल की भांति भयवान् की प्रजा विप्लव और धनन्त थी । व कदापि से रहित कर्मों से मुक्त तथा देवाधिपति सत्त्व की तरह दीप्तिमान् थे ॥८॥

से बीरिणं पद्मिपुष्परीरिण, सुदस्यो वा णगसम्भसेहे ।
सुरास्य वासि मुदागरे से, विरायण वेगगुणोबधेए ॥९॥

जिस प्रकार सब पर्वतों में सुवर्धन पर्वत अष्ट एवं देवों को हर्ष उत्पन्न करनेवाला है उसी प्रकार भगवान् अपने परिपूर्ण सामर्थ्य से सब जीवों में स्पष्ट और सब को हर्ष उत्पन्न करने वाले थे ॥९॥

सय सहस्साण ठ ओपसाण, तिक्कहणे पठगबेअयते ।
से ओपये णवणवति सहस्से, उट्ठुस्सितो हेह सहस्समेगं ॥१०॥

मुमेर पर्वत एक लाख योजन का है । इसके तीन भाग हैं । पाण्डुक बल उसकी छात्रा लय है । वह एक हजार योजन पृथ्वी में नीचे धीरे निगलाने हजार योजन ऊँचा है ॥१०॥

पुढे णमे चिह्णइ भूमिवट्टिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयति ।
से हेमवन्ने बहुणंदणे य, जंसी रहं वेदयंति महिंदा ॥११॥

वह पर्वतराज, भूमि पर स्थित होकर आकाश को
स्पर्श कर रहा है । सूर्य जिसकी प्रदक्षिणा करते हैं । जो सोने
के समान कान्ति वाला है, जिस पर बहुत से (चार) नन्दन
वन हैं, तथा देवेन्द्र वहा आकर रति सुख का अनुभव करते हैं ।

से पव्वए सदमहप्पगासे, विरायई कंचणमडुवन्ने ।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरिवरे से जल्लिए व भोमे ॥१२॥

वह पर्वत, शब्दों से गुंजावमान् हैं । सोने के वर्ण से
सुशोभित हो रहा है । वह सब पर्वतों में श्रेष्ठ होकर पर्वत
मेखलादि के कारण दुर्गम हैं और भूमि पर दीपायमान हो रहा है ।

महीइ मज्झमि ठिए णगिंदे, पन्नापते सूरिय सुद्धलेसे ।
एवं सिरीए उ स भूरिवण्णे, मणोरमे जोयइ अचिमाली ॥१३॥

पृथ्वी के मध्य में रहा हुआ वह पर्वतेन्द्र, सूर्य के जैसा
शुद्ध तेजोवन्त, अनेक प्रकार की लक्ष्मी युक्त और अनेक
रत्नों से सुशोभित होकर सूर्य की तरह दिशाओं को प्रकाशित
करता हुआ लोक में प्रसिद्ध है ॥१३॥

सुदंमणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसणनाणसीले ॥१४॥

जिस प्रकार महान्, सुदर्शन पर्वत का यश कहा गया

जिस प्रकार हवालों देवों में इन्द्र रूप गुण और ऐश्वर्य में प्रधान होता है उसी प्रकार काश्यप गात्री म० महावीर स्वामी विनेश्वरों के धर्म के सर्वोत्तम नेता थे ॥७॥

से पमया अक्खयसागरे वा, महोदही वासि अयांतपारे ।
अयाइसे वा अकसाइ मुके, सके व देवाहिर्बई पुईम ॥८॥

जिसका पार नहीं पा सके ऐसे स्वयंभूरम्भ महासमुद्र के मुड़ एवं प्रलय जल की भांति भगवान् की प्रज्ञा विपुल और अनन्त थी । व कथाओं से रहित कर्मों से मुक्त तथा देवाधिपति वायु की तरह दीप्तिमान् थे ॥८॥

से धीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदसखे वा णगसन्नसेट्ठे ।
सुरासए वासि सुदागरे से, विरायए योगगुणोववेए ॥९॥

जिस प्रकार सब पर्वतों में सुदर्शन पर्वत अष्ट एवं देवों को हर्ष उत्पन्न करनेवाला है उसी प्रकार भगवान् अपने परिपुष्ण सामर्थ्य से सब जीवों में घेष्ठ और सब को हर्ष उत्पन्न करने वाले थे ॥९॥

सय सहस्साय ठ जोपणार्ण, ठिक्कहणे पडगवेवयते ।
से जोपये णवणवति सहस्से, उट्टुस्सितो देट्ट सहस्समेगं ॥१०॥

मुमेर पर्वत एक लाख योजन का है । उसके तीन भाग हैं । पाण्डक बन उसकी ध्वजा रूप है । वह एक हजार योजन पृथ्वी में नीचे और निम्नानन्दे हजार योजन ऊँचा है ॥१०॥

पुढे णमे चिहुइ भूमिवट्टिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयति ।
से हेमवने बहुणंदणे य, जंसी रहं वेदयंति महिदा ॥११॥

वह पर्वतराज, भूमि पर स्थित होकर आकाश को स्पर्श कर रहा है । सूर्य जिसकी प्रदक्षिणा करते हैं । जो सोने के समान कान्ति वाला है, जिस पर बहुत से (चार) नन्दन बने हैं, तथा देवेन्द्र वहां आकर रति सुख का अनुभव करते हैं ।

से पव्वए सदमहप्पयासे, विरायई कंचणमडुवन्ने ।
अणुचरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरिवरे से जलिए व भोमे ॥१२॥

वह पर्वत, शब्दों से गुजायमान है । सोने के वर्ण से सुशोभित हो रहा है । वह सब पर्वतों में श्रेष्ठ होकर पर्वत मेखलादि के कारण दुर्गम है और भूमि पर दीपायमान हो रहा है ।

महीइ मज्झमि ठिए णगिंदे, पन्नापते सूरिय सुद्धलेसे ।
एवं सिरीए उ स भूरिवण्णे, मणोरमे जोयइ अचिमाली ॥१३॥

पृथ्वी के मध्य में रहा हुआ वह पर्वतेन्द्र, सूर्य के जैसा शुद्ध तेजोवन्त, अनेक प्रकार की लक्ष्मी युक्त और अनेक रत्नों से सुशोभित होकर सूर्य की तरह दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ लोक में प्रसिद्ध है ॥१३॥

सुदंमणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसणनाणसीले ॥१४॥

जिस प्रकार महान्, सुदर्शन पर्वत का यश कहा गया

है, उसी प्रकार—इन उपमाओं से अमल ज्ञातपुत्र भी जाति
यथ वर्धन ज्ञान और सीस में सबसे उत्तम थे ॥१४॥

गिरिवरे वा निसहाऽऽययान्, रुमए व सेहू वस्तयायठान् ।
तज्जोवमं स वगमूर्धन्ने, सुयीय मग्गे समुदाहु पन्ने ॥१५॥

जैसे लम्बे पर्वतों में गिरिवर और मास पर्वतों में रुक्म
पर्वत श्रेष्ठ है वैसे ही भ० महावीर भी संसार में प्रभूत प्रजा
वाले हैं । बुद्धिमानों ने उन्हें सभी मुनियों के मध्य में उत्कृष्ट
कहा है ॥१५॥

अणुत्तरं घम्मसुद्धरइत्ता, अणुत्तरं म्मखवरं क्रियाए ।
सुसुक्कसुक्क अपगंइसुक्क, संखिदुएगंतवदातसुक्कं ॥१६॥

अमवान् ने ऐसे ही बर्म का उपदेश किया जो समस्त
धर्मों से श्रेष्ठ है । उन्होंने प्रज्ञान दुस्तध्यान ध्याया जो धर्म्म
सोमं जल फेन दास और चन्द्रमा की तरह स्वच्छ है ॥१६॥

अणुत्तरमां परम महेसी, असेसकम्म स विमोइइत्ता ।
सिद्धिं गते साहमपांत पत्ते, नाखेय सीलेण य वसवेय ॥१७॥

वे महर्षि ज्ञान वर्धन और चारित्र्य से समस्त कर्मों
को छय करके सर्वोच्च लोकाय में स्थित होकर सर्वोत्तम साधि
अमल सिद्धि को प्राप्त हुए ॥१७॥

रुक्खेसु थाए अह सामसी वा, अस्सि रतिं वेदयती सुवभा ।
वयेसु वा नदयमाहु सेहू, नाखेय सीलेण य भूइयपन्न ॥१८॥

जिस प्रकार वृक्षों में शात्मली वृक्ष और वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ समझा जाता है, जिस पर सुवर्णकुमार देव, रति क्रीडा का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार भगवान् ज्ञान और चारित्र्य से श्रेष्ठ तथा अत्यन्त ज्ञानी कहे जाते हैं ॥१८॥

थण्डिपं व सदाय अणुत्तरे उ, चंदो व ताराण महाणुभावे ।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणां अपडिन्नमाहु ॥१९॥

जिस प्रकार शब्दों में मेघ की गर्जना प्रधान है, तारा-गणों में चन्द्रमा मनोहर है और सुगन्धित पदार्थों में चन्दन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त मुनियों में, समस्त वासनाओं से रहित भगवान् श्रेष्ठ थे ॥१९॥

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे, नागेषु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥२०॥

जैसे समुद्रों में स्वयम्भ्रमण, नागकुमारों में धरणेन्द्र और रत्नों में इक्षुरस श्रेष्ठ हैं, वैसे ही तपस्वियों में भगवान् श्रेष्ठ थे ॥२०॥

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मियाणां सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुळे वेणुदेवे, निज्वाणवादी णिह णायपुत्ते ॥

हाथियों में ऐरावत, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षियों में वेणुदेव-गरुड-प्रधान है, उसी प्रकार समस्त निर्वाण (मोक्ष) वादियों में भगवान् महावीर श्रेष्ठ थे ॥२१॥

खोहेसु बाए जइ वीससेरो, पुष्पेसु वा जइ भरविंदमाहु ।
सुखीण सेहे जइ दतवके, इसीण सेहे तइ बद्धमाणे ॥२२॥

योदाओं में चक्रवर्ती पुष्पों में भरविंद कमल और
सत्रियों में इन्तवाक्य-चक्रवर्ती भेष्य है उसी तरह समस्त
भूवियों में भगवान् बद्धमान भेष्य थे ॥२२॥

दाबाण सेहु अमयप्पयाया, सवेसु वा अखवख बयति ।
तवेसु वा उत्तम बमयेरं, सोगुचमे समवे नायपुत्ते ॥२३॥

जिन प्रकार वानो में अमयवान सत्य में निर्बन्ध माया
और लपस्यायो में ब्रह्मचर्य उत्तम कहा जाता है उसी प्रकार
अमल ज्ञातपुत्र प्रथम समस्त लोक में उत्तम थे ॥२३॥

ठिईव सेहु सबसचमा वा, समा सुहम्मा व समाण सेहु ।
निम्वाण सेहु जइ सम्बधम्मा, श चापपुत्ता परमत्थि नाणी ॥

आपु में अनुत्तर विमान के बेश समानों में इन्द्र की
मुखमें समा और सब धर्मों में निर्वाण-माध्य धर्म भेष्य है
किन्तु भगवान् महावीर से उत्तम जानी तो कोई नहीं है ।

पुढोबमे धुसइ विगयगही, न संधिई हुम्बइ आसुपन्ने ।
तरिठं समुर् व महामबोध, अमयकर बीर अणत्तपक्खु ॥

म महावीर पृथ्वी के समान बीर एवं सहजशील
थे उन्होंने सब कर्मों को दूर कर दिया थे । वे द्रव्यादि का
संबन्ध नहीं करते थे । वे अमल जानी समस्त जीवों को अभय
देने वाले हाकर सर्वसारस्व महासमर्थ को तिर गये हैं ॥२४॥

कोहं च माणं च तद्देव मायं, लोभं चउत्थं अज्भक्त्यदोसा ।
एआणि वंता अरहा महेसी, ए कुब्बई पाव ए कारवेह ॥

भगवान् क्रोध, मान, माया और लोभरूप आत्मिक दोषों को त्याग कर अर्हन्त महर्षि हुए । उन्होंने न तो स्वयं पाप किया, न दूसरों से ही पाप करवाया ॥२६॥

किरियाकिरियं वेणइयाणु वायं, अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं ।
से सच्चवायं इति वेयइत्ता, उवट्ठिए संजम दीहरायं ॥२७॥

भगवान् क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद के पक्षों को जानकर तथा समस्त वादों के पक्ष को सम्यक् प्रकार से समझकर जीवन पर्यन्त समय में सावधान रहे ।

से वारिया इत्थि सराइभत्तं, उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ।
लोगं विदिता आरं परं च, सच्चं पभू वारिय सच्चवारं ॥२८॥

भगवान् ने समस्त दुखों को क्षय करने के लिये स्त्री सम्भोग तथा रात्रि भोजन आदि पापों को त्याग दिया और इस लोक तथा परलोक को जानकर सब का त्याग करके घोर तपस्वी हुए ॥२८॥

सोच्चा य धम्मं अरहंतभासियं, समाहियं अट्ठपदोवसुद्धं ।
तं सद्धाणा य जणा अणाऊ, इंदो व देवाहि व आगमिस्संति ॥
॥२९॥ त्ति वेमि ॥

जो मनुष्य, अर्हन्त भगवान् द्वारा कहे हुए मर्थ और

पक्षों से गुड़ ऐसे वर्म को मुनकर सम्यक प्रकार से खदान करत हैं वे आयु और कर्म से रहित होकर सिद्ध होते हैं अथवा इन्द्रादि देव होते हैं और भविष्य में भी होंगे । ऐसा मे कहता हूँ ॥२६॥

॥ वीरस्तुति समाप्त ॥

सिद्धानं बुद्धानं पारगयानं, परंपरगयानं ।
 लोभमा सुषगयानं, नमो सया सुम्नसिद्धान ॥१॥
 जो देवाद्यविदेवो, स देवा पक्षली नर्मसंति ।
 त देवदेवमहिम्न, सिरसा बंदे महावीर ॥२॥
 इक्ष्कोषि नसुक्करो, निशबर वसहस्स वद्धमायस्स ।
 संसार सागराठ, तारेइ नरे व नारि वा ॥३॥

॥ तित्थयरा मे पसीयतु ॥



सं० रक्षक संघ के प्रकाशन—

१. श्री स्र्यगङ्गां स्रत्र मूल पाठ भावार्थ सहित, मू० १) रु०
अप्राप्य
२. श्री दशवैकालिक स्रत्र मूल्य ०-५० "
३. श्री अंतगङ्गादसा " " ०-५० "
४. श्री उत्तराध्ययन स्रत्र मूल और हिन्दी भावार्थ युक्त
मूल्य २-००
५. श्री सुखविषाक " " " ०-२०
६. श्री नन्दी स्रत्र " " " १-००
७. श्री मोक्ष मार्ग " " " ५-००
८. स्त्री प्रधान धर्म " " " ०-२५
९. सामायिक स्रत्र " " " ०-०६
१०. प्रतिक्रमण स्रत्र " " " ०-१७
११. आत्म साधना संग्रह " " १-२५
१२. उववाई स्रत्र छप रहा है ।

—: सम्यग्दर्शन :-

अ भारतीय श्रीसाधुमार्गी जैन सस्कृति रक्षक संघ के मुख-पत्र 'सम्यग्दर्शन' के ग्राहक बने । निग्रंथ सस्कृति के प्रचारक, जैन तत्व ज्ञान के प्रकाशक और विकृति के अवरोधक, इस पत्र को अवश्य पढ़ें । आपके सम्यग्ज्ञान में वृद्धि होगी । आप सस्कार और विकार का भेद जान सकेंगे । वार्षिक मूल्य केवल ६)

